रामायण एवं महाभारत के समान उपाख्यानों का आलोचनात्मक अध्ययन

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध)

अनुसन्धाता

राणाप्रताप सिंह

एम्० ए० (संस्कृत)

निर्देशक

डा० राजेन्द्र मिश्र

रीडर, संस्कृत-विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

संस्कृत-विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

फरवरी १९९७ ई०

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

पृष्ठा संख्या

पुरोवाक्

पुरोवाक्

वैरञ्चिकी सृष्टि जगन्नियन्ता परम विभु की अपूर्व लीला है जो अनादिकाल से अबाध गति से चक्रारपंक्ति के समान चलती चली आ रही है और भविष्यत् में भी इसी प्रकार चलती रहेगी । वह परम विभु जगन्नियन्ता प्रत्येक जीव के कर्मों के अनुसार उसके अनागत भाविकर्म का चारों ओर से संस्कार करता रहता है । यही तथ्य अनुसन्धाता के प्रस्तुत शोध के सम्बन्ध में भी परिलक्षित होता है । सुरभारती के प्रति अनुराग का बीज पूज्य चरण पितामह स्वश्री विक्रमा जीत सिंह के साहचर्य ने उसी समय अनुसन्धाता के भावनापूर्ण हृदय में विरोपित कर दिया जब उसने अपने किशोर मन के साथ मां वाणी के मन्दिर में सर्वप्रथम प्रवेश किया । प्रारम्भ से लेकर स्नातक तक एक विषय के रूप में संस्कृत का अध्ययन करते हुए जब स्नातक की अन्तिम परीक्षा उत्तीर्ण की तो उस समय एम० ए० करने का प्रश्न सहज रूप से उपस्थित हो गया । संस्कारों की बलवत्ता एवं सुरभारती के प्रति सहज अनुराग ने पुनः अपनी ओर अनुसन्धाता के तरुण हृदय को खींच लिया फलस्वरूप महत् तत्व ने संस्कृत विषय में ही एम० ए० करने का अन्तिम रूप से निर्णय ले लिया ।

प्रयाग विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर कक्षा में प्रवेश करते ही अनुसन्धाता को अपने आचार्यों के व्याख्यानों से सतत् प्रेरणा मिलने लगी जिसके फलस्वरूप उसके मनस्तत्व एवं महत्तत्व दोनों एक साथ मिलकर काव्य एवं शास्त्र के अध्ययन में तत्पर हो गये । एम० ए० प्रथम वर्ष की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात काव्य एवं शास्त्र के रस से सुपरिचित रसिक हृदय के समक्ष पुनः वर्ग चयन का प्रश्न आया किन्तु ब्रह्मानन्द सहोदर काव्यानन्द का आस्वादन करने वाला हृदय अपनी सहज प्रवृत्ति के अनुकूल बुद्धितत्व को भी साहित्यवर्ग में ही लेकर बह चला फिर क्या था काव्य एवं शास्त्र के विनोद में पक्ष एवं मास एक-एक करके बीतने लगे और पूरा वर्ष कितनी द्रुतगति से बीत गया, कुछ पता न चल सका । अन्त में वह समय भी आ गया जब अनुसन्धाता ने अपने आपको

विभागाध्यक्ष महोदय के कक्ष में गुरुवर्य डा० आद्याप्रसाद मिश्र के समक्ष मौखिकी परीक्षा के प्रश्नों का उत्तर देने के लिए उपस्थित पाया ।

कालक्रम से अनुकूल परीक्षाफल उपलब्ध होते ही शोध-विषयक मौन लालसा भी मुखर हो उठी । फलस्वरूप प्रयागविश्वविद्यालय प्रयाग में ही डी० फिल् की कक्षा में प्रवेश लेकर गुरुवर्य डा० राजेन्द्र मिश्र के कुशल निर्देशन में अपने शोध-विषयक — रामायण एवं महाभारत के समान उपाख्यानों का आलोचनात्मक अध्ययन - पर कार्य करना भी प्रारम्भ कर दिया । यद्यपि इस शोध काल में अनेक विघ्न एवं बाधायें प्रकृति के नियमानुकूल आती जाती रहीं किन्तु वे अनुसन्धाता के कर्मयोगस्थ संकल्पशील मन को विचलित न कर सकीं । धीरे-धीरे शोध-कार्य ने प्रगति पकड़ी और आज अपने पुरोवाक् के रूप में पूर्णता को भी प्राप्त हो रहा है ।

यद्यपि संस्कृत-साहित्य में उपाख्यानों पर अनेक महत्वपूर्ण कार्य हुए हैं और हो भी रहे हों तथा उन सबका अपना स्थापित महत्व भी है किन्तु रामायण और महाभारत जैसे दो महाप्रबन्धों में समान रूप उपलब्ध उपाख्यानों पर कोई कार्य अभी तक स्पष्टत: प्रकाश में नहीं आया है जबकि इसका भी अपना एक स्थापित महत्व है और विद्वज्जनों के बीच रहरहकर इस विषय पर चर्चा भी होती रही है । ऐसी स्थिति में यह आवश्यक था कि रामायण और महाभारत में समान रूप से उपलब्ध उपाख्यानों पर कोई शोधप्रबन्ध प्रस्तुत किया जाय । इसी अपेक्षित आवश्यकता की पूर्ति को दृष्टि में रखकर प्रयाग विश्वविद्यालय के विद्वान अधिकारियों ने इस विषय (रामायण एवं महाभारत में उपलब्ध समान उपाख्यानों का आलोचनात्मक अध्ययन) पर अनुसन्धाता को शोध-प्रबन्ध लिखने का दायित्व सौंपा जिसका उसने प्रस्तुत रूप में यथाशक्ति निर्वाह करने का पूर्णत: प्रयत्न किया है । यदि इससे उक्त अपेक्षा की कुछ भी पूर्ति हो सकी तो अनुसन्धाता अपना परिश्रम सफल समझेगा ।

अब जहां तक इस अनुसन्धान कार्य में किसी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने का प्रश्न है तो उस विषय में सर्वप्रथम काव्यविद्या अधिष्ठात्री भगवती भारती के युगजीवी वरदपुत्र सर्वतन्त्र, स्वतन्त्र, महामनीषी गुरुवर्य अभिराज डा० राजेन्द्र मिश्र (रीडर, संस्कृत-विभाग प्रयाग विश्वविद्यालय प्रयाग) का हृदय से अतीव ऋणी हूं जिन्होंने समय-समय पर विद्वत्तापूर्ण निर्देशन के द्वारा अनुसन्धाता का न केवल मार्ग दर्शन किया है अपितु वास्तविक अर्थों में अपना सारस्वत अविरल स्नेह पीयूष पिलाकर उसके प्राणों का भी पोषण किया है । जिसका स्मरण कर इस अवसर पर आज वह अनन्त भावनाओं में बिखरा जा रहा है । एतदर्थं उन महाप्राज्ञ पूज्यपाद गुरुवर्य श्रीमरणों में अतीव कृतज्ञता-पूर्वक श्रद्धा भक्ति सहित अपनी सारस्वत प्रणति निवेदित करता हूं क्योंकि इसके अतिरिक्त अनुसन्धाता उन महार्षि के चरणों में और निवेदित ही क्या कर सकता है ।

इसके पश्चात सारस्वती मनीषा के विलक्षण व्यक्तित्व से सम्वलित मानवतावादी दृष्टिकोण के अप्रतिम प्रतिमान डा० शिवनारायण त्रिपाठी (संस्कृत विभाग प्रयाग विश्वविद्यालय प्रयाग) के उस अनुपम वैदुष्यपूर्ण परामर्श का तथा अनिर्वचनीय सारस्वत सहयोग का जिसके बिना प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध कदापि पूर्ण नहीं हो सकता था किन शब्दों में उल्लेख किया जाय । अथ च एतदर्थं उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की जाय क्योंकि केवल कृतज्ञता ज्ञापित करके औपचारिक इतिकर्तव्यता का निर्वाह करना तो किसी सारस्वतेय के अनास्थेय सहयोग का मूल्यांकन करना होगा । फलत: प्रस्तुत शोधप्रबन्ध की पूर्णतारूपी फलागम का समग्र श्रेय उन्हीं अपने अनन्य कल्याण सुहृद के सारस्वत कुरों में सप्रेम अर्पित करता हूं । एतदनन्तर गुरुवर्य डा० हरिशङ्कर त्रिपाठी (रीडर संस्कृत-विभाग प्रयाग विश्वविद्यालय प्रयाग) से जो कुछ स्नेह एवं सहयोग मिला है तदर्थं उन्हें एक विनीत शिष्य के रूप में अपना प्रणाम सुमन अर्पित करता हूं तथा च विभागीय उन समस्त गुरुजनों के प्रति भी सविनय आभारत व्यक्त करता हूं जिन्होंने समय-समय पर अपना सहयोग एवं सत्परामर्श

देने का कष्ट किया है ।

अपने परमश्रद्धेय अग्रज श्रीयुत् समरबहादुर सिंह (प्राचार्य सहकारी डिग्री कालेज मिहरावां जौनपुर) के अनिर्वचनीय स्नेह का उल्लेख किन शब्दों में करूं । वस्तुत: यह उन्हीं की सत्प्रेरणा का फल है जिसके रस से परिपुष्ट होकर मैं यह कार्य करने के लिए तत्पर हो सका हूं । इसके अतिरिक्त सहकारी डिग्री कालेज मिहरावां जौनपुर के डा० राम मोहन सिंह (अंग्रेजी-विभाग), श्री ओमप्रकाश सिंह (भूगोल-विभाग), डा० अशोक कुमार सिंह (मनोविज्ञान-विभाग), श्री राजाराम मिश्र (संस्कृत-विभाग), प्रो० शिवाधार सिंह (भू० पू० अध्यक्ष संस्कृत-विभाग- टी० डी० कालेज, जौनपुर), श्री राघवेन्द्रप्रताप सिंह (रसायन-विभाग टी० डी० कालेज जौनपुर) तथा डा० रमाशङ्कर त्रिपाठी (संस्कृत-विभाग राजकालेज जौनपुर) आदि की सारस्वत प्रेरणाओं एवं सदिच्छाओं के प्रति कृतज्ञतापूर्वक हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करता हूं ।

पूज्यचरण पितरौ (जनक श्रीयुत राजनाथ सिंह तथा जननी श्रीमती रामदुलारी देवी) तथा पितृव्य श्रीयुत विनोद कुमार सिंह और श्री भूपनारायण सिंह के दुग्ध धवल उज्ज्वल स्नेह का मनसा वाचा कर्मणा अतीव ऋणी हूं और आजीवन ऋणी रहूंगा । अथ च आस्थावान् कर्मनिष्ठ व्यक्तित्व के जीवन्त प्रतिमान पितृकल्प परमश्रद्धेय पूज्यपाद श्रीयुत् हृदयनारायण सिंह (भू० पू० प्राचार्य टी० डी० कालेज जौनपुर एवं विधान परिषद सदस्य) के अप्रतिम वात्सल्य को किन शब्दों में व्यक्त किया जाय जिसका सम्बल अनुसन्धाता का जीवन पाथेय बना हुआ है ।

श्री रमाशङ्कर मिश्र, श्री शीतलाशङ्कर मिश्र, श्री इन्दुप्रकाश मिश्र एवं श्री जयन्त मिश्र प्रभृति अनुजों के सहयोग के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करना अपना नैतिक कर्तव्य मानता हूं ।

इसके पश्चात शोध-प्रबन्ध के स्वच्छ सुन्दर एवं आकर्षक टंकण के लिए टंकक श्री श्यामलाल तिवारी को बहुत-बहुत हार्दिक धन्यवाद ।

अन्तत: अपनी धर्मपत्नी सौभाग्यवती श्रीमती सुमन सिंह के सहयोग के प्रति भी शुभाशंसापूर्वक हार्दिक आभार व्यक्त करता हूं । जिनका मेरे सहयोगियों में एक विशिष्ट स्थान है ।

विनयावनत

राणा प्रताप सिंह

(राणाप्रताप सिंह)

प्रथम अध्याय

विषय-प्रवेश

- भारतीय वाङ्‌मय में आख्यान परम्परा का उदय, वैदिक वाङ्‌मय में नाराशंसी आख्यान । दिवोदास, सुदास आदि के सन्दर्भ । दाशराज्ञ युद्ध । पुरूरवा-उर्वशी, यम यमी, आदि गाथा में ।

- उपाख्यान — शब्दार्थ एवं प्रवृत्ति । पाश्चात्य वाङ्‌मय में उपाख्यान (Episode) परम्परा । आख्यानों का विकास ।

- पूर्वरामायणयुगीन उपाख्यान-परम्परा । ब्राह्मण, आरण्यक उपनिषद वेदाङ्‌ग एवं पुराण वाङ्‌मय में उपाख्यान ।

- उपाख्यानों के लेखन का ध्येय दृष्टि एवं महत्त्व ।

-0-

भारतीय वाङ्मय में आख्यानों एवं उपाख्यानों का मूल बीज लक्ष्यालक्षतया वैदिक वाङ्मय से ही उपलब्ध होने लगता है । ऋग्वेद के नाराशंसी आख्यानों दान स्तुतियों तथा दाशराज्ञ युद्ध के प्रसंग में ऐसे अनेक छोटे-बड़े इतिवृत्त मिलते हैं जिनमें आख्यानों एवं उपाख्यानों का बीज किसी न किसी रूप में अन्वेषित किया जा सकता है ।

नाराशंसी आख्यानों एवं दानस्तुतियों के प्रसंग में ऐसे छोटे बड़े अनेक राजाओं से सम्बद्ध इतिवृत्तों की ओर संकेत किया गया है जिनमें तत् तत् राजाओं से सम्बद्ध उपाख्यानों का बीज सरलतापूर्वक देखा जा सकता है ।[1] इस प्रसंग में महान प्रतापी राजा पुरुकुत्स, त्रसदस्यु, त्रिवृष्टि, त्ररुण, त्रैविष्ण ; कुरुश्रवण, उपश्रवस् ; दिवोदास और सुदास देव वात, सौमक साहदेव्य क्रैव्यपाञ्चाल ; नहुष, मशशरि; आयवस, वसु पुरुमीढ, तरन्त, रथवीति, दाल्भ्य, अभ्यावर्ति, मनुषावर्ण्य या सावर्ण्य स्वनैमाव्य, ऋणञ्चय, श्रुतरथ, पाकस्थामा, कुरुङ्ग, चित्र, इन्द्रोत, श्रुतर्वन, प्रतर्दन, आदि अनेक ऋग्वेदकालिक राजाओं का उल्लेख किया गया है और इनके शौर्य दानशीलता आदि का न्यूनाधिक रूप में उल्लासपूर्वक वर्णन किया गया है ।[2] यह भी ध्यातव्य है कि इन राजाओं में दिवोदास और सुदास के शौर्य एवं दानशीलता आदि का वर्णन सर्वातिशायी रूप में उपलब्ध होता है ।

दिवोदास त्रित्सुजातीय महानप्रतापी राजा के रूप में उल्लिखित हैं । सप्तसिन्धु का मध्यभाग दिवोदास के छत्रछाया में पलता था, ऐसा उपलब्ध उल्लेखों से ज्ञात होता है । उपलब्ध प्रमाणों के अनुसार दिवोदास राजा सुदास के पिता या पितामह माने जाते हैं । दिवोदास अतिथियों का प्राणों से भी अधिक

१- सविस्तर द्रष्टव्य - भारतीय अनुशीलन, डा० मणिलाल पटेल, पृष्ठ ३४-४२ ।

२- सविस्तर द्रष्टव्य - वही ।

सत्कार करते थे । इसी कारण इन्हें 'अतिथिग्व'[१] भी कहा गया है । यद्यपि इनके अधिकार में सप्तसिन्धु का मध्य भाग ही था किन्तु फिर भी इनका प्रभाव पूरे सप्तसिन्धु पर निवास करने वाली विभिन्न जातियों पर भी था । तुर्वसु, यदु, पुरु, दुह्यु आदि जातियों के अतिरिक्त पणि, पारावत,[२] वृषय, आदि लोगों के साथ भी दिवोदास का वैर चलता रहता था । फलत: इन लोगों के साथ दिवोदास का अनेक बार युद्ध भी हुआ था । शम्बर को दिवोदास[३] का सबसे प्रसिद्ध शत्रु बताया गया है जिससे उनका अनेक बार युद्ध हुआ था ।

सुदास त्रित्सुजातीय दिवोदास[४] के पुत्र या पौत्र माने जाते हैं । इनका भी राज्य सप्तसिन्धु का मध्य भाग था । किन्तु इनका भी प्रभाव पूरे सप्तसिन्धु प्रदेश पर था । दाशराज्ञ युद्ध के प्रसंग में सुदास के अप्रतिम शौर्य का उल्लासपूर्वक वर्णन मिलता है जिसमें यह बताया गया है कि ऋग्वेद की सबसे प्रसिद्ध सामरिक घटना दाशराज्ञ युद्ध का महान योद्धा एवं विजेता सुदास था । सुदास के विरोध में यदु, तुर्वसु, अनु, द्रुह्यु, पुरु, अलिन्, पक्थ, भलनस, शिव, तथा वृषासिन् इन दस जातियों के राजा युद्ध कर रहे थे ।[५] इसके अतिरिक्त उनके साथ अन्य लोग भी मिले हुए थे । सुदार और इन दसों राजाओं का संग्राम क्षेत्र पुरुष्णी (रावी) नदी का तट बताया जाता है जहाँ सुदास ने अपने विपक्षी सभी राजाओं को वीरतापूर्वक पराजित किया था । इसी प्रसंग में यह भी बताया गया है कि राजा सुदास जब इन विपक्षी दसों राजाओं को पराजित करके लौट रहे थे

१- द्रष्टव्य - वैदिक साहित्य और संस्कृति : बलदेव उपाध्याय, पृ० ४६३

२- सविस्तर द्रष्टव्य - वही

३- सविस्तर द्रष्टव्य - वही

४- सविस्तर द्रष्टव्य - वही

५- द्रष्टव्य - वैदिक साहित्य और संस्कृति - बलदेव उपाध्याय, पृ० ५००-५०१

तो भेद[१] नामक एक अन्य राजा ने भी अज, शिग्रु तथा यक्षु इन तीन जातियों का प्रतिनिधित्व करते हुए सुदास पर पुनः आक्रमण कर दिया । सुदास ने यमुना के तट पर इन्हें भी वीरतापूर्वक पराजित किया । फलस्वरूप दाशराज्ञ युद्ध के इस महान विजय के बाद सुदास का प्रभाव पूरे सप्तसिन्धु प्रदेश पर छा गया और फिर अन्य कोई भी जाति उनके राज्यकाल तक उनसे विरोध करने का साहस न कर सकी । सुदास की इस महान विजय का वर्णन ऋग्वेद के सातवें मण्डल के अनेक सूक्तों में मिलता है ।[२]

नाराशंसी आख्यानों, दानस्तुतियों, दाशराज्ञयुद्ध के अतिरिक्त ऋग्वेद के विभिन्न संवाद-सूक्तों में अनेकों उपाख्यानों का स्वरूप स्पष्टतः देखा जा सकता है । इनमें शुनः शेपोपाख्यान,[३] अगस्त्य और लोपामुद्रा का उपाख्यान[४]; गृत्समद का उपाख्यान[५]; वसिष्ठ और विश्वामित्र का उपाख्यान[६]; सोमावतरण उपाख्यान[७]; त्र्यरुण और वृषजानु का उपाख्यान[८]; अग्नि के जन्म[९] का उपाख्यान; दार्भ्य[१०] रथवीति और श्यावाश्व का उपाख्यान; सुदासोपाख्यान[११]; नहुषोपाख्यान[१२]; अपाला आत्रेयी[१३] और कृशाश्व का उपाख्यान;

१- द्रष्टव्य - ऋग्वेद ७।८३

२- द्रष्टव्य - ऋग्वेद ७।१८, ३३, ८३ आदि ।

३- द्रष्टव्य - ऋग्वेद १। २४-२६,

४- द्रष्टव्य - ऋग्वेद १। १७९,

५- द्रष्टव्य - ऋग्वेद २। १२,

६- द्रष्टव्य - ऋग्वेद ३।५३ ; ७।३३ आदि ;

७- द्रष्टव्य - ऋ० ३। ४३ ;

८- द्रष्टव्य - ऋ० ५। २ ;

९- द्रष्टव्य - ऋ० ५। ११ ;

१०- द्रष्टव्य - ऋ० ५। ३२ ;

११- द्रष्टव्य - ऋ० ७। १८ ;

१२- द्रष्टव्य - ऋ० ७।९५ ;

१३- द्रष्टव्य - ऋ० ८। ९१ ;

नाभानेदिष्ठ[१] का उपाख्यान ; वृषाकपि[२] का उपाख्यान ; पुरुरवा-उर्वशी[३] का उपाख्यान; सरमा-पणि[४] उपाख्यान ; देवापि और[५] शन्तनु का उपाख्यान ; नचिकेतोपाख्यान[६] ; घोषा[७] का उपाख्यान ; सरण्यू[८] उपाख्यान ; मधविद्या के उपदेश का उपाख्यान[९] ; काण्व[१०] शौभरिक का उपाख्यान, त्रितोपाख्यान[११] ; इन्द्रवृत्र[१२] का उपाख्यान ; दीर्घतमा[१३] का उपाख्यान ; आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

इस प्रकार भारतीय वाङ्मय में उपाख्यान परम्परा का उदय ऋग्वैदिक ऋषियों के काव्यमनीषा के साथ-साथ ऋग्वेद से ही हो जाता है किन्तु विशुद्ध साहित्यिक धरातल पर स्पष्ट रूप से उपाख्यानों की योजना वेदों के व्याख्यानभूत ब्राह्मण ग्रन्थों से मिलनी प्रारम्भ होती है । इसके पश्चात आरण्यक,उपनिषद, वेदाङ्ग, पुराण (पुरावृत्त) रामायण, महाभारत आदि विभिन्न सोपानों में इसका क्रमश: विकसित स्वरूप देखने को मिलता है ।

१- द्रष्टव्य - ऋग्वेद १० । ६१, ६२

२- द्रष्टव्य - ऋ० १० । ८६

३- द्रष्टव्य - ऋ० १० । ९५

४- द्रष्टव्य - ऋ० १० । १०८

५- द्रष्टव्य - ऋ० १० । ९८

६- द्रष्टव्य - ऋ० १० । १३५

७- द्रष्टव्य - ऋ० १ । ११७ - ७

८- द्रष्टव्य - ऋ० १० । १७-१,२

९- द्रष्टव्य- ऋ० १ । ११६।१२

१०- द्रष्टव्य - ऋ० ८ । १९। ८ । ८१

११- द्रष्टव्य - ऋ० १ । १०५

१२- द्रष्टव्य - ऋ० २ । १२

१३- द्रष्टव्य - ऋ० १ । १४०- १६४

`उप` और `आ` उपसर्ग पूर्वक `ख्या प्रकथने` धातु से `ल्युट्` (अन) प्रत्यय करने पर `उपाख्यान` शब्द निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है -- सहायक आख्यान अथवा मुख्य आख्यान (वृहद् आख्यान या मूलकथा) के अन्तर्गत आने वाला तदङ्गभूत लघु आख्यान या छोटी कथा । `उपाख्यानक` (उप + या प्रकथने + ल्युट् + पदोकन्) भी इसी की किंचित् परिवर्तित संज्ञा है ।

संस्कृत-साहित्य में `उपाख्यान` शब्द का प्रवृत्ति-निमित्त विषयक जो स्वरूप उपलब्ध होता है, उसके आधार पर यदि इसे परिभाषित करने का प्रयत्न किया जाय तो यह कहा जा सकता है कि जो कथानक आकार में वृहत् या विशाल हो, वह तो `आख्यान` है किन्तु जो कथानक उसकी अपेक्षाकृत स्वल्प एवं तदङ्गभूत हो, वही है `उपाख्यान` । दूसरे शब्दों में किसी महाकाव्य आदि की मूलकथा-वस्तु के विकास तथा उसके घटना-क्रम में मोड़, नवीनता, रोचकता आदि लाने के लिये उसमें यथास्थल जो प्रासङ्गिक इतिवृत्तों की योजना की जाती है ; वे ही उपाख्यान कहलाते हैं । उदाहरणार्थ वाल्मीकिप्रणीत `रामायण` की मूलकथा-वस्तु `राम-कथा` है अतएव वह `आख्यान` है । परन्तु उसके अन्तर्गत प्रासङ्गिक रूप से आने वाले ऋष्यशृङ्ग, गङ्गावतरण, वशिष्ठ-विश्वामित्र, शुनःशेप, अगस्त्य, ययाति आदि के कथानक `उपाख्यान` कहलायेंगे ।

पाश्चात्य वाङ्मय में अंग्रेजी-साहित्य के अन्तर्गत `उपाख्यान` के लिये `इपिसोड` (Episode) शब्द का प्रयोग मिलता है जिसकी मूलतः उत्पत्ति ग्रीक भाषा के `इपिसोडोस` (Epeisodos) से मानी जाती है।[1] इवरिमेन्स इनसाइक्लोपीडिया` (Every man's Encyclo peadia) में

----

1. Episode :
Two meanings may be distinguished : (a) An event or incident within a larger narrative ; a digression (b) a section into which a serialized work is divided.

- A dictionary of literary terms : J.A.cuddon
Andre Deuetsch limited G.R.S. London.

स्पष्टत: बताया गया है कि `इपिसोड` (Episode) को ग्रीकभाषा में `इपिसोडोस` (Epeisodos) कहते हैं जिसका शाब्दिक अर्थ है `प्रवेशोपरान्त` घटनाओं की स्वाभाविक धारा में किसी व्यक्ति विशेष अथवा लोगों के जीवन की वह घटना जो मुख्य धारा में विशेष महत्वपूर्ण नहीं होती, उसे `इपिसोड` (उपाख्यान) कहा गया है। इसी को विषयान्तर भी कहा गया है। अरस्तू ने अपनी रचना `पोयेटिक्स` में इसका स वर्णन किया है। समूहगानों के मध्य की समस्त घटनाएं `इपिसोड` (उपाख्यान) हैं। यह एक नाटकीय विधा है। सैद्धान्तिकरूप से यह सहगान में सहायक रूप में प्रयुक्त हुआ जो तारतम्यता में एक प्रकार का व्यवधान है।

`ए डिक्शनरी आफ लिटरेरी टर्म्स` (A dictionary of Literary terms) में बताया गया है कि किसी वृहत् कथा के अन्तर्गत होने वाली घटना `इपिसोड` (उपाख्यान) है। इसे ही विषयान्तर की संज्ञा से भी अभिहित किया जाता है।[1]

----

1. Episode :- (Greek episodos, after entrance) an incident in the life of an individual or people which is irrelevant to the broad march of events, that is, a deviation or an excrescence. Aristotle explained in his Poetics that the word described in the drama all all that happened between the choric songs. Because they were introduced as a dramatic device at a later date the scenes between the actors were, at least theoretically, subordinate to the performance of the choris, and a rift in its continuity.

   Every man's Encyclopeadia, Vol. IV
   J.M. Dent and Spns Ltd London, Melbourne, Toronto, 1978.

`वेब्सटर्स थर्ड इन्टरनेशनल डिक्शनरी`[1] के अन्तर्गत `उपाख्यान` के सन्दर्भ में निम्नलिखित तथ्य प्रस्तुत किये गये हैं :--

(१) किसी नाटक या साहित्यिक रचना में संक्षिप्त कार्य की इकाई ।

(२) कोई विकसित स्थिति जो कथा से सम्बद्ध होते हुए भी पृथक है ।

(३) रेडियो या टेलीविजन में सीरियल प्रस्तुतीकरण का एक भाग ।

----

1. Episode - Coming in besides, coming in, going in,

1- a, usually brief unite of action in a dramatic or literary work; the part of an incident Greek Tragedy between two choric songs and equivalent to any developed situation in a modern play

b- a developed situation that is integral to but separable from a continuens narrative (as a novel or play) incident.

c- One of a series of loosely connected stories or scenes to resolve themselves into a seenes of a episodes.

d- the part of a radio, television or motion pecture serial presented at one performance.

2x

2- An occurrence or connected series of occurrences and developments which may be viewed .

p. 765

- Webster's Third International Dictionary

Merriam. Webster,

I N C. 1961.

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि पौरस्त्य एवं पाश्चात्य दोनों साहित्यों में उपाख्यान (Episode) का प्राय: एक जैसा ही स्वरूप उपलब्ध होता है जिसके आधार पर निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि किसी महाकाव्य आदि की मूल कथावस्तु के विकास तथा उसके घटनाक्रम में मोड, प्रवाह नवीनता, रोचकता आदि की अभिवृद्धि के लिए उसके अन्तर्गत यथास्थल - जिन प्रासंगिक इतिवृत्तों की संयोजना होती है वे ही उपाख्यान हैं ।

-0-

भारतीय वाङ्‌मय में रामायण काल के पूर्व उपाख्यान परम्परा का उदय यद्यपि ऋग्वेद से ही हो जाता है इसके पूर्व बताया गया है कि उपाख्यान परम्परा की स्पष्ट संयोजना वैदिक संहिता के पश्चात उसके व्याख्यान भूत ब्राह्मण ग्रन्थों से ही प्रामाणिक रूप से मिलनी प्रारम्भ होती है ।

वैदिक संहिताओं के पश्चात ब्राह्मण ग्रन्थों में उपाख्यानों का विकसित रूप उपलब्ध होता है साथ ही कुछ नये उपाख्यानों की भी योजना मिलती है । कारण ब्राह्मण आदि ग्रन्थ तो वेदों के व्याख्यान ग्रन्थ ही हैं । फलत: वैदिक मंत्रों के व्याख्यान एवं याज्ञिक आयोजनों के अवसर पर गूढ़ तत्वों की सरलतम रूप से व्याख्या करने तथा मनोरंजन के उद्देश्य से उपाख्यानों की कल्पना कर लेना स्वाभाविक रहा है । यही कारण है कि विभिन्न ब्राह्मण ग्रन्थों में उपाख्यानों का भरपूर उपयोग किया गया है । केवल शतपथब्राह्मण में ही अनेकों उपाख्यानों का रोचक वर्णन मिलता है । जिनमें शुन: शेपोपाख्यान[1] ; पुरूरवा-उर्वशी[2] उपाख्यान ; दुष्यन्तशकुन्तला[3] उपाख्यान ; जलप्लावन या मत्स्यावतार[4] का उपाख्यान ; वाणी एवं सोम[5] का उपाख्यान ; वसिष्ठ विश्वामित्र[6] का उपाख्यान; माथव विदेघ[7] तथा गौतम राहुगण का उपाख्यान ; प्रजापति[8] के वराह रूप धारण करने का उपाख्यान ; उरुगाय त्रिविक्रम विष्णु[9] का उपाख्यान ; कूर्म का उपाख्यान[10]।

१- द्रष्टव्य - शतपथब्राह्मण

२- द्रष्टव्य -शत० ब्रा०

३- द्रष्टव्य - शत० ब्रा० १०।५।४

४- द्रष्टव्य - शत० ब्रा० १। ८। १

५- द्रष्टव्य - शत० ब्रा०

६- द्रष्टव्य - शत० ब्रा०

७- द्रष्टव्य - शत० ब्रा० ४।१।१०-१७

८- द्रष्टव्य - शत० ब्रा० १४। १।२।११

९- द्रष्टव्य - शत० ब्रा० १। २ । ५ ।१

१०- द्रष्टव्य - शत० ब्रा० ७।५।१।५

च्यवन भार्गव[1] और सुकन्या मानवी का उपाख्यान ; आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त अन्य ब्राह्मण ग्रन्थों में भी उपाख्यानों की चारु योजना मिलती है। उदाहरणार्थ ऐतरेय ब्राह्मण में शुनः शेपोपाख्यान[2]। तैत्तिरीयब्राह्मण में, प्रजापति के वराह रूप[3] धारण करने का उपाख्यान और नचिकेतोपाख्यान[4] सामवेदीयताण्ड्य ब्राह्मण में वत्स मेधातिथि[5] उपाख्यान तथा च्यवन का उपाख्यान[6], जैमिनीय ब्राह्मण में कूर्म का उपाख्यान[7] विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

ब्राह्मण-ग्रन्थों के पश्चात आरण्यक ग्रन्थों के अङ्गभूत उपनिषद ग्रन्थों में उपाख्यानों की स्थान-स्थान पर सुन्दर योजना देखने को मिलती है। गूढ दार्शनिक तत्वों को सरलतम रूप से समझाकर उसे लोक के द्वारा ग्राह्य बनाने के उद्देश्य से ही उपनिषदों में उपाख्यानों की योजना की जाती रही है। छान्दोग्य उपनिषद, वृहदारण्यक उपनिषद, केनोपनिषद, कठोपनिषद, कौषीतक उपनिषद आदि में अनेकों उपाख्यानों के रोचक वर्णन उपलब्ध होते हैं। छान्दोग्य उपनिषद में अनेकों उपाख्यान उपलब्ध होते हैं। जिनमें,उषस्ति-चाक्रायण[8] का उपाख्यान ; शौवसामसम्बन्धी उपाख्यान[9] ; राजा जानश्रुति[10]

१- द्रष्टव्य - शतपथ ब्राह्मण

२- द्रष्टव्य - ऐतरेय ब्रा० सप्तम पंचिका अध्याय ३३

३- द्रष्टव्य - तैत्तिरीय ब्रा० ७।१।५।१

४- द्रष्टव्य - तैत्तिरीय ब्रा० ३।११।८

५- द्रष्टव्य - ताण्ड्य ब्रा० १४। ६।६

६- द्रष्टव्य - ताण्ड्य ब्रा० १४। ६। १०

७- द्रष्टव्य - जैमि० ब्रा० ३। २७२

८- द्रष्टव्य - छान्दो० उप० अध्याय १ खण्ड १०-११

९- द्रष्टव्य - छान्दो० १।१२

१०- द्रष्टव्य - छान्दो० १। २

और रै व का उपाख्यान ; सत्यकाम जाबाल[1] और हरिद्रुमद का उपाख्यान ; सत्यकाम-जाबाल[2] और उपकोशल का उपाख्यान ; प्रवाहण[3] जैबलि तथा श्वेतकेतु आरुणेय का उपाख्यान ; आरुणि[4] और श्वेतकेतु का उपाख्यान ; सनत्कुमार[5] तथा नारद का उपाख्यान ; इन्द्र[6] और विरोचन का उपाख्यान ; आदि प्रसिद्ध हैं । इसके अतिरिक्त वृहदारण्यक उपनिषद में भी अनेकों उपाख्यान प्राप्त होते हैं जिनमें जनक तथा[7] याज्ञवल्क्य का उपाख्यान ; कात्यायनी और मात्रेयी[8] का उपाख्यान ; प्रवाहण[9] जैबलि और श्वेतकेतु आरुणेय का उपाख्यान ; विशेष रूप से उल्लेखनीय है । केनोपनिषद के उपाख्यानों में उमा हैमवती[10] का उपाख्यान और देवताओं[11] की शक्ति परीक्षा का सन्दर्भ विशेष उल्लेखनीय है । कठोपनिषद का नचिकेतोपाख्यान[12] तो अतिविश्रुत ही है । कौषीतक उपनिषद का बालाकि और अजातशत्रु[13] का उपाख्यान भी कुछ कम प्रसिद्ध नहीं कहा जा सकता है ।

उपनिषदों के पश्चात पुराणों में उपाख्यानों की योजना वृहत्तर स्तर पर देखने को मिलती है । पुराणों में पूरवर्ती उपाख्यानों की समुपबृंहिति तो मिलती ही है साथ ही साथ अनेक नये उपाख्यानों की भी उसी उपबृंहणा की परम्परा में अतिरिक्त योजना भी की गई मिलती है । उचित भी है क्योंकि

१- द्रष्टव्य - छान्दो० ४।४।८
२- दष्टव्य - छान्दो० ४।१०।१५
३- द्रष्टव्य - छान्दो० ५।३
४- द्रष्टव्य - छान्दो० अध्याय ६
५- द्रष्टव्य - छान्दो० सप्तम प्रपा
६- द्रष्टव्य - छान्दो० ४।७।१२
७- द्रष्टव्य - वृहदा० अध्याय ३, ४
८- द्रष्टव्य - वृहदा० ३।४।५
९- द्रष्टव्य - वृहदा० अध्याय ६
१०- द्रष्टव्य - केनोपनिषद् तृतीय तथा चतुर्थखण्ड
११- द्रष्टव्य - केनोपनिषद २।
१२- द्रष्टव्य - केनोपनिषद २।२।१३
१३- द्रष्टव्य - कौषीतकि अध्याय ४

वेदों का उपबृंहण तो इतिहास एवं पुराण के माध्यम से ही होता रहा है और करने का परामर्श भी दिया गया है । वस्तुत: विद्वज्जन तो वैदिक संहिताओं एवं उनके व्याख्यानभूत ब्राह्मण ग्रन्थों का अध्ययन कर अपनी परिपक्व मनीषा के बल पर सब कुछ जानकर तुष्ट हो लेते हैं किन्तु उन गम्भीर तत्वों को जन-सामान्य में पलने वाली सुकुमार मनीषा एवं अपरिपक्व चेतना तो उनसे सन्तुष्ट नहीं हो सकती । ऐसी स्थिति में उन्हें मनोरंजनपूर्वक यथार्थ तत्व का बोध कराने के लिए पुराणों में वृहत्तर स्तर पर उपाख्यानों की संयोजना की गई है । यह भी ध्यातव्य है कि पूर्वोक्त अनेक उपाख्यान विभिन्न पुराणों में अपेक्षाकृत कुछ नये एवं विकसित रूप में उपलब्ध होते हैं । उदाहरणार्थ - नचिकेतोपाख्यान[१]; पुरूरवा-उर्वशी-उपाख्यान[२]; सरमायणि उपाख्यान[३]; मत्स्यावतार का उपाख्यान[४]; कूर्मोपाख्यान[५]; प्रजापति के वराह रूप धारण करने का उपाख्यान[६]; उरुगाय त्रिविक्रम विष्णु-सन्दर्भ[७]; शुन: शेपोपाख्यान[८]; आदि विभिन्न पुराणों में न्यूनाधिक परिवर्तित एवं विकसित रूप में मिलते हैं ।

१- द्रष्टव्य - वायुपुराण

२- द्रष्टव्य - भाग० पु० ६।१४ ; विष्णुपु० ४।६ ; हरि० पु० १।२६ ;

३- द्रष्टव्य - वराहपु० १६।१०-३६ ;

४- द्रष्टव्य - भा० पु० १।३।१५ ; ८।२४।११-६१ ; अग्निपु० ४।४६ ;
गरुड़ पु० १।१।४२ ; पद्मपुराण ५।४।७३ ;

५- द्रष्टव्य - भागवतपु० ८। ७ ; कूर्मपु० १। १६। ७७-७८ ; अग्निपु० ४।४६ ;
गरुड़ पु० १। १४२ ; पद्मपु० ५।४ तथा ५। १३
ब्रह्म अ० १८० तथा २१३ ; विष्णु पु० १। ४ ;

६- द्रष्टव्य - भागवतपु० ३। १३। ३५ -३६
विष्णुपु० १। ४। ३२-३६ आदि

७- द्रष्टव्य - वामनपुराण

८- द्रष्टव्य - मार्कण्डेयपु० अध्याय ८ श्लोक संख्या १०७-११८ ;
ब्रह्मपु० अध्याय १०४ ; देवीभागवतपु० ७। १३-२६ ;

भारतीय ऋषियों की नीर-क्षीर विवेचनक्षम प्रतिभा की यह सदैव से मान्यता रही है कि किसी गूढ़ दार्शनिक रहस्य अथवा आध्यात्मिक रहस्य या नैतिक मूल्य को समझाने के लिए कथा अथवा उपाख्यान का आश्रय लेना चाहिए और उसके माध्यम से विवेच्य विषय को सरल सुबोध एवं रोचक बनाकर जनसामान्य तक पहुंचाना चाहिए जिससे जनसामान्य लोग उससे परिचित होकर लाभान्वित हो सकें और अपने ज्ञान की वृद्धि करने के साथ-साथ उसे यथार्थ जीवन के धरातल पर उतार सकें । सम्भवत: इन्हीं कतिपय प्रमुख दृष्टियों से वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण-ग्रन्थों, उपनिषदों, पुराणों आदि में उपाख्यानों की योजना की गई होगी ।

उदाहरणार्थ - पुरुरवा-उर्वशी उपाख्यान को ही ले लें । इस उपाख्यान के दार्शनिक रहस्य को विभिन्न विद्वानों ने अनेक प्रकार से व्याख्यायित करने का प्रयास किया है । कतिपय विद्वानों की धारणा है कि पुरुरवा और उर्वशी क्रमश: सूर्य और उषा के प्राकृतिक स्वरूप का प्रतिनिधित्व करते हैं । इनमें सूर्य स्थानीय पुरुरवा उष: स्थानीय उर्वशी का प्रियतम है और उर्वशी है उसकी प्रेयसी । सूर्य स्थानीय पुरुरवा के सामने आते ही उर्वशी स्थानीय उषा लुप्त हो जाती है । पाश्चात्य विद्वानों ने प्रो० गेल्डनर, राठ, गोल्ड स्टुकर, ग्रिफिथ, आदि की कुछ ऐसी ही मान्यतायें हैं । कतिपय अन्य व्याख्याकारों का मन्तव्य है कि पुरुरवा और उर्वशी क्रमश: वर्षाकालिक सघन मेघ और उसमें रह रहकर कौंध जाने वाली विद्युत के प्रतीक हैं । इस प्रकार मेघ स्थानी पुरुरवा विद्युत स्थानीय उर्वशी नामक अप्सरा (जलस चारिणी) का प्रियतम सिद्ध होता है । इसी सन्दर्भ में यह भी स्पष्ट किया गया है कि पुरुरवा को पुरुरवा शब्द 'कर्ता' इसलिए कहा गया है क्योंकि यह मेघ के रूप में अत्यधिक गर्जन करता है । पुरु - अत्याधिक रा अथ च इसी प्रकार उर्वशी को उर्वशी इसलिए कहा गया है क्योंकि यह घने बादलों में अभिनाभाव रूप से अत्यधिक व्याप्त रहती है । 'उरु- अत्यधिक असी' । बादलों में विद्युत अभिन्न रूप से विद्यमान रहती है । मेघों के गर्जन और विद्युत की कड़क के साथ जब वर्षा होती है तो इससे पृथवी हरी-भरी हो जाती है और प्राणियों को दीर्घायुष प्रदान करने वाले, उन्हें प्राण का आधान करने वाले

अन्न नामक पदार्थ की प्रभूत मात्रा में उत्पत्ति होती है । चूंकि अन्न प्राणियों में प्राण का आधान करके उन्हें दीर्घायुष प्रदान करता है फलत: इसे लक्षणया 'आयु' भी कहा जाता है । इस प्रकार पुरूरवा और उर्वशी के संयोग से आयु नामक पुत्र के उत्पत्ति का रहस्य भी स्पष्ट हो जाता है । यजुर्वेद में उर्वशी का सम्बन्ध स्पष्टत: विद्युत से बताया भी गया है । शतपथ ब्राह्मण में अन्न को स्पष्टत: आयु ही कहा गया है । वर्षाकाल के चार मास तक मेघ और विद्युत का साहचर्य विशेष रूप से रहता है । इसके पश्चात मेघों में विद्युत की कड़क प्राय: कम ही देखने को मिलती है । पुरूरवा को छोड़करके उर्वशी के जाने का रहस्य इसी में स्पष्ट हो जाता है कि वह वर्षाकाल के चार मास तक ही उसके साथ विशेष रूप से रहती है । इस प्रकार पुरूरवा और उर्वशी की आलंकारिक वर्णना का निरगलितार्थ यही सिद्ध होता है कि पुरूवा और उर्वशी क्रमश: मेघ और विद्युत के पर्याय हैं । इन दोनों के सम्बन्ध से वर्षा होती है जिसके फलस्वरूप प्राणियों के आयुवर्धक अन्न की उत्पत्ति होती है । अधिकांश भारतीय विद्वानों की धारणा इसी पक्ष में है ।

इन्द्र-वृत्र सन्दर्भ के सम्बन्ध में भी कुछ ऐसी ही दार्शनिक धारणायें हैं जिन्हें इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है । अधिकांश विद्वानों की मान्यता है कि इस उपाख्यान में इन्द्र सूर्य का प्रतीक है और वृत्र वर्षा काल के सघन मेघ पुंज का । इन्द्र और वृत्र के युद्ध का तात्पर्य सूर्य और मेघ का पारस्परिक संघर्ष है । जिसमें अन्ततोगत्वा सूर्य विजयी होता है और मेघ पराजित होकर नष्ट । यहां वृत्र स्थानीय मेघ के नष्ट होने का तात्पर्य वर्षाकाल के मेघ का वर्षा करके आकाश को सर्वथा निरभ्र कर देना है । इसके फलस्वरूप वर्षा का जल नदियों में आ जाता है और नदियां भरपूर होकर प्रवाहित होने लगती हैं । इस प्रकार इन्द्र के द्वारा वृत्र का वध करके नदियों के प्रवाहित करने का रहस्य भी स्पष्ट हो जाता है ।

ऋग्वेद में आगत उरुगाय त्रिविक्रम विष्णु सन्दर्भ को भी इसी प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है । वस्तुत: इसमें त्रिविक्रम विष्णु सूर्य का प्रतीक है ।

चूंकि सूर्य द्युलोक, अन्तरिक्ष, और भूलोक तीनों लोकों को अपनी किरणों से व्याप्त करता है। इसीलिए उसे त्रिविक्रम अथवा त्रिपात कहा जाता है और विष्णु उसे इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह अपनी किरणों से तीनों लोकों में व्याप्त है। अधिकांश भारतीय व्याख्याकारों की मान्यता प्राय: ऐसी ही है।

अधिकांश उपाख्यानों की योजना देवताओं का मानवीय करण करके मानव लोक से सहर्ष सम्बन्ध स्थापित करने तथा मानव समाज के सामूहिक कल्याण एवं लोकमंगल की अभिवृद्धि के लिए भी की गई प्रतीत होती है। जिनमें मनुष्यों और देवों को परस्पर सम्बद्ध बताया गया है। मनुष्य यज्ञों के द्वारा देवताओं को दिव्य आहुतियां देता है और देवता उनसे तृप्त होकर उनपर मंगल की वृष्टि करते हैं। इन्द्र तथा अश्विन् विषयक उपाख्यान इसके उत्तम उदाहरण हैं। इन्द्र यजमान के द्वारा दिये गये सोम रस का पानकर जब प्रसन्न होते हैं तो उन पर वे अपनी कृपा की वृष्टि करते हैं और अनावृष्टि आदि को दूर कर उन्हें वर्षा प्रदान करते हैं। अश्विनीकुमार भी जब यजमान की स्तुतियों से सन्तुष्ट होते हैं तो उन्हें असाध्य रोगों से मुक्तकर दीर्घायुष सौभाग्य एवं मंगल प्रदान करते हैं।

कतिपय उपाख्यानों की योजना विभिन्न धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना करने के उद्देश्य से की गई प्रतीत होती है। उदाहरणार्थ - श्यावाश्व उपाख्यान के माध्यम से इस सामाजिक मूल्य की स्थापना करने का प्रयत्न किया गया है कि सच्चे प्रणय की सिद्धि के लिए की गई उपासना एवं तपस्या उसके प्रणयी को अभिप्राप्त प्रदान कर सकती है। इसके साथ ही इस उपाख्यान के माध्यम से इस तथ्य का प्रतिपादन किया गया-सा प्रतीत होता है कि साधन सम्पन्न होते हुए भी किसी मूर्ख की अपेक्षा निरक्षीर विवेकी कर्तव्य-निष्ठ विद्वान, वैभव सम्पन्न न होते हुए भी सर्वथा पूज्य एवं वरेण्य होता है। इसी प्रकार अपाला आत्रेयी एवं घोषा का उपाख्यान भारतीय नारी की चारित्रिक उदात्तता और तेजोरूपता का उदाहरण प्रस्तुत करता है। दध्यङ आथर्वण का उपाख्यान राष्ट्र मंगल के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करके जहां

एक ओर हमें क्षुद्र स्वार्थों से ऊपर उठने का उपदेश देता है वहीं दूसरी ओर यह भी उपदेश देता है कि रहस्यात्मक विद्या का उपदेश किसी अधिकारी सुयोग्य शिष्य को ही देना चाहिए ।

कतिपय उपाख्यानों की योजना मनुष्य को चारित्रिक त्रुटियों से बचकर नैतिक दृष्टि से उसे ऊपर उठने के लिए की गई प्रतीत होती है । उदाहरणार्थ दीर्घतमा के उपाख्यान में आये हुए बृहस्पति का चरित्र इसका स्पष्ट निदर्शन है जिसने दीर्घतमा के गर्भस्थ रहते हुए उसकी मां ममता के साथ स्वैरविहार किया था और विरोध करने पर उसने दीर्घतमा को आजन्म अन्धा होने का शाप भी दे दिया था ।

इसके अतिरिक्त मूल तथ्य में नीरसता का निराश करके सरसता लाने के लिए अरुचि को दूर करके रोचकता की अभिवृद्धि करने के लिए शान्त एवं क्लान्त मानव मन एवं मस्तिष्क का मनोरंजन करने के साथ-साथ मानवीय ज्ञान की परम्परा को विकसित एवं समृद्ध बनाने के लिए सामान्य रूप से उपाख्यानों की योजना का स्वारस्य स्वत: सिद्ध है । वैदिक संहिताओं में उपाख्यानों की योजना से ऋग्वैदिक स्तोता का हृदय अपनी परिचित दृश्य एवं उदाहरणों से व्यावहारिक धरातल पर आकर अधिक रमता है । साथ ही संहिताओं की स्थितियां उपाख्यानों के विषय को पाकर अभिराम रूप धारण कर लेती है । ब्राह्मण ग्रन्थों के विधि एवं अर्थवाद के विस्तृत विन्यास से थका हुआ उद्विग्न पाठक उपाख्यानों के रोचक वर्णन से अपने हृदय को शीतल बनाता है । साथ ही साथ वैदिक संहिताओं में प्रतिपादित गूढ़ रहस्यों की मीमांसा भी कर देता है । उपनिषदों का दार्शनिक ऋषि उपाख्यानों के माध्यम से अनाख्येय गूढ़तम दार्शनिक रहस्यों को उपाख्यानों के माध्यम से सरलतम बनाकर जनसामान्य के लिए ग्राहय एवं आचरणीय बनाकर तुष्ट हो लेता है । पुराणकार भी उपाख्यानों के माध्यम से अपने अभीष्ट कथ्य एवं उनमें प्रतिपाद्य गूढ़ रहस्यों को उपाख्यानों के माध्यम से उपबृंहित करके जन-सामान्य के द्वारा ग्राहय बनाने में अपनी इतिकर्तव्यता मान लेते हैं । परवर्ती रामायण महाभारत प्रभृति महाप्रबन्धों में उपाख्यानों की योजना का उद्देश्य

उपर्युक्त वर्णित उद्देश्यों के अतिरिक्त उसके मूलकथानक को सरस, रोचक, पेशल, हृद्य, आदि बनाकर विस्तार देने में भी रही है । भारतीय वाङ्मय में उपाख्यानों के लेखन के यही कतिपय उद्देश्य रहे हैं । और इसी दृष्टि से उपाख्यानों का अपना एक स्थापित महत्व भी रहा है ।

-0-

द्वितीय अध्याय

रामायण एवं महाभारत में समान उपाख्यान -

(क) रामोपाख्यान

(ख) ऋष्यशृङ्गोपाख्यान

(ग) गङ्गावतरण-सन्दर्भ

(घ) वसिष्ठ-विश्वामित्र-सन्दर्भ

(च) शुनःशेपोपाख्यान

(छ) परशुरामोपाख्यान

(ज) अगस्त्योपाख्यान

(झ) पुरुरवा-उर्वशी-सन्दर्भ

(ट) ययात्युपाख्यान

o मूल कथा के विकास में उपाख्यानों का योगदान ।

(क) रामोपाख्यान

करुणानिधि आदिकवि ब्रह्मर्षि बाल्मीकि द्वारा प्रणीत रामायण के अन्तर्गत रामकथा का प्रस्तार बालकांड आदि आठ कांडों में ६४५ सर्गों में तथा लगभग २४ हजार श्लोकों में किया गया है ।

बालकाण्ड के अन्तर्गत रामकथा के मुख्य घटक के रूप में मर्यादापुरुषोत्तम महाराघवराम आदि के जन्म, उनके महान पराक्रम, उनकी सर्वानुकूलता, लोकप्रियता, क्षमा, सौम्यभाव तथा शक्तिशीलता का वर्णन करने के अनन्तर विश्वामित्र के साथ धर्मधुरीण राम का जाना, नाना प्रकार की लीलाएं करना, मिथिला में जाकर धनुष तोड़ना, भगवती सीता उर्मिला आदि के साथ राम, लक्ष्मण आदि का विवाह राम-परशुरामसंवाद, राम का वैष्णव धनुष को चढ़ाकर अमोघ वाण के द्वारा परशुराम के तप: प्राप्त पुण्य-लोकों का नाश करना, परशुराम का महेन्द्रपर्वत को लौट जाना, राजादशरथ का पुत्रों और वधुओं के साथ अयोध्या में प्रवेश, शत्रुघ्न सहित भरत का मामा के यहां जाना, महाराघवराम के व्यवहार से सब का सन्तुष्ट होना तथा सीता और मर्यादापुरुषोत्तम राम का पारस्परिक प्रेम चारु रूप में निरूपित है ।[१]

अयोध्याकाण्ड में राम का अभिषेक, कैकेयी की दुष्टता, राम के राज्याभिषेक में विघ्न, उनका वनवास, दशरथ का शोकविलाप एवं परलोकगमन, प्रजा का विषाद, निषादराज गुह के साथ राम का वार्तालाप, सुमन्त का अयोध्या लौटना, राम आदि का गंगापार जाना, भरद्वाजमुनि का दर्शन करना, भरतमुनि की आज्ञा लेकर चित्रकूट जाना, वहां की नैसर्गिक शोभा का अवलोकन करना, चित्रकूट में पर्णकुटीर बनाना, वहां निवास करना, भरत का श्रीराम से मिलने के लिए वहां जाना, उन्हें अयोध्या लौट चलने के लिए

१- सविस्तर द्रष्टव्य वा० रा०, वा० का०

प्रसन्न करना, राम द्वारा पिता को जला जलिदान, भरत द्वारा अयोध्या के राजसिंहासन पर श्रीरामचन्द्र की पादुकाओं का अभिषेक एवं स्थापन नन्दिग्राम में भरत का निवास, श्रीराम आदि का अत्रि मुनि के आश्रम पर जाकर उनके द्वारा सत्कृत होना तथा अनुसूया द्वारा सीता का सत्कार, सीता अनुसूया संवाद, अनुसूया का सीता को प्रेमोपहार द्वारा तथा अनुसूया के पूछने पर सीता का उन्हें अपने स्वयंवर की कथा सुनाना, अनुसूया की आज्ञा से सीता का उनके द्वारा प्रदत्त वस्त्राभूषणों को धारण करके श्रीराम के पास आना तथा राम आदि का रात्रि में आश्रम पर रहकर प्रात बेला में अन्यत्र जाने के लिए ऋषियों से विदा लेना आदि रामकथा के मुख्य घटक हैं।[१]

अरण्यकाण्ड में श्रीराम का दण्डकारण्य में गमन, उनके द्वारा विराध का वध, शरमंग मुनि का दर्शन, सुतीक्ष्ण के साथ समागम, अगस्त्य का दर्शन उनके द्वारा अगस्त्य के दिये हुए वैष्णव धनुष का ग्रहण, शूर्पणखा का संवाद, श्रीराम की आज्ञा से लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा का विरूपीकरण, खरदूषण और शिरा का वध, शूर्पणखा के उत्तेजित करने से रावण का राम से बदला लेने के लिए उद्यत होना, राम द्वारा मारीच का वध, रावण द्वारा आर्या-सीता का हरण, सीता के लिए महाराघव का विलाप, रावण द्वारा गृध्रराज जटायु का वध, श्रीराम और लक्ष्मण की कबन्ध से भेंट, उनके द्वारा पम्पा सरोवर का अवलोकन, श्रीराम का शबरी से मिलता, और उसके दिये हुए फलमूल को ग्रहण करना आदि राम कथा के मुख्य अवस्थान हैं।

किष्किन्धाकाण्ड के अन्तर्गत राम का सीता के लिए प्रलाप, पम्पासरोवर के निकट वायुनन्दन हनुमान से भेंट, श्रीराम और लक्ष्मण का हनुमान के साथ ऋष्यमूकपर्वत पर जाना, वहां सुग्रीव से भेंट करना, उन्हें अपने

१- सविस्तर द्रष्टव्य - वा० रा०, अयोध्याकाण्ड

२- सविस्तर द्रष्टव्य - वा० रा०, अरण्यका०

पौरुष में विश्वास दिलाना और उनसे मैत्री स्थापित करना, वालि सुग्रीव युद्ध, श्रीराम द्वारा वालिविनाश, सुग्रीव को राज्यसमर्पण, तारा का अपने पति वालि के लिए विलाप करना, शरत्काल में सीता का अन्वेषण कराने के लिए सुग्रीव की प्रतिज्ञा, श्रीराम का वर्षाऋतु में माल्यवान पर्वत से प्रस्रवण नामक शिखर पर निवास करना, राम का सुग्रीव के प्रति क्रोध प्रदर्शन, सुग्रीव द्वारा सीता के अन्वेषण के लिए वानर सेना का संगठन, सुग्रीव का सम्पूर्ण दिशाओं में वानरों को भेजना और उन्हें पृथ्वी के द्वीप समुद्र आदि विभागों का परिचय देना, श्रीराम का सीता के विश्वास के लिए पवनपुत्र को अपनी अंगूठी देना, वानरों का स्वयंप्रभा गुफा का दर्शन करना, उनका प्राण त्याग के लिए अनशन ; सम्पाति से उनकी भेंट और वातचीत, सम्पाति का पंखयुक्त होकर वानरों को उत्साहित करके उड़ जाना और वानरों का वहां से दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान, समुद्र की विशालता देखकर विषादमग्न वानरों को आश्वासन देते हुए अंगद का उनसे पृथक्-पृथक् समुद्र लंघन के लिए उनकी शक्ति पूछना, तदनुकूल वानरवीरों के द्वारा अपनी-अपनी शक्ति का परिचय देना, जाम्बवान और अंगद का वार्तालाप तथा जाम्बवान का महाबली हनुमान को प्रेरित करने के लिए उनके पास जाना और समुद्र लंघन के लिए उन्हें उत्साहित करना, हनुमान का समुद्र लांघने के लिए आत्मोत्साह व्यक्त करना, और विवेकपूर्वक छलांग मारने के लिए महेन्द्रपर्वत पर चढ़ना आदि रामकथा के मुख्य विन्दु हैं।[1]

सुन्दरकाण्ड में समुद्र लंघन के लिए हनुमान का महेन्द्र पर्वत पर चढ़ना, समुद्र को लांघना, समुद्र के कथनानुसार ऊपर उठे हुए मैनाक का दर्शन करना, राक्षसी को डांटना, हनुमान द्वारा सिंहिका का दर्शन एवं निधन ; लंका के आधारभूत त्रिकूट पर्वत का दर्शन, रात्रि के समय लंका में

१- सविस्तर द्रष्टव्य - वा० रा०, किष्किन्धाकाण्ड

प्रवेश, एकलता के कारण अपने कर्तव्य के विषय में स्वयं विचार करना, रावण के मद्यपान स्थान में जाना, उनके अन्त:पुर की स्त्रियों को देखना, रावण का दर्शन करना, पुष्पक विमान का निरीक्षण करना, अशोकवाटिका में जाना और सीता का दर्शन करना, पहचान के लिए सीता को राम की मुद्रांकित अंगूठी देना और उनसे वार्तालाप करना, राक्षसों द्वारा सीता को भयभीत करना, त्रिजटा को राम के लिए शुभसूचक स्वप्न का दर्शन, सीता का हनुमान को अपनी चूड़ामणि उतारकर देना, हनुमान का अशोक वाटिका के वृक्षों को नष्ट करना, राक्षसियों का पलायन होना, रावण के सेवकों का क हनुमान द्वारा संहार, वायुनन्दन का बन्दी होकर रावण की सभा में जाना, उनके द्वारा गर्जन और लंकादाह तथा पुन: समुद्र का लंघन, वानरों का मधुवन में आकर मधुपान करना, हनुमान का राम को आश्वासन देना और सीता के द्वारा प्रदत्त चूड़ामणि को अर्पित करना तथा सीता का समाचार सुनाना, चूड़ामणि को देखकर और सीता का समाचार पाकर राम का उनके लिए विलाप करना आदि रामकथा के मुख्य सोपान है।[१]

युद्धकाण्ड के अन्तर्गत ससैन्य सुग्रीव के साथ महाराघव राम की लंकायात्रा के समय समुद्र से भेंट, नल का समुद्र पर विशाल सेतु बांधना, उसी सेतु के द्वारा वानरसेना का समुद्र के पार जाना, लंका पर चारों ओर से घेरा डालना, विभीषण के साथ राम की मित्रता का होना, विभीषण का राम को रावण के वध का उपाय बतलाना, कुम्भकर्ण का निधन, मेघनाद का वध, रावण का विनाश, सीता की पुन: प्राप्ति, लंका का विभीषण का राज्याभिषेक श्रीराम द्वारा पुष्पक विमान का अवलोकन, उसके द्वारा दलबल सहित उनका अयोध्या के लिए प्रस्थान राम का भरद्वाज मुनि से मिलन, हनुमान को दूत बनाकर भरत के पास भेजना, हनुमान का निषादराज गुह तथा भरत को

१- सविस्तर द्रष्टव्य - वा० रा०, सुन्दरकाण्ड

महाप्रभु राम के आगमन की सूचना देना और प्रसन्न हुए भरत का उन्हें उपहार देने की घोषणा करना, हनुमान का भरत को वनवास सम्बन्धी समस्त वृत्तान्तों को सुनाना, अयोध्या में राम के स्वागत की तैयारी, भरत के साथ सब का राम का अभिनन्दन करने के लिए नन्दिग्राम में पहुंचना, राम का आगमन, भरत आदि से उनका मिलाप तथा पुष्पक विमान को कुबेर के पास पुन: भेजना भरत का राम को राज्य लौटाना, राम की नगर यात्रा, राज्याभिषेक, वानरों की विदाई आदि रामकथा के मुख्य घटक हैं[१]।

उत्तरकाण्ड में राम का सभासदों के साथ राज्यसभा में बैठना, राम के द्वारा जनक, युधाजित्, तथा अन्य नरपतियों की विदाई, राजाओं का राम के लिए भेंट देना, राम का वह सब कुछ भेंट लेकर अपने मित्रों, वानरों, रीछों आदि को वितरित कर देना तथा उनकी विदाई करना, कुबेर के भेजे हुए पुष्पक विमान का आना और राम से पूजित एवं अनुग्रहीत होकर अदृश्य हो जाना भरत के द्वारा रामराज्य के विलक्षण प्रभाव का वर्णन, अशोक वनिका में आर्य राम और आर्यासीता का विहार, गर्भिणी सीता का तपोवन देखने की इच्छा प्रकट करना और राम का इसके लिए सहर्ष स्वीकृति देना, भद्र का पुरवासियों के मुख से सीता के विषय में सुने हुए अपवाद से राम को अवगत कराना, राम द्वारा सीता का निर्वासन, मुनिकुमारों से समाचार पाकर बाल्मीकि का सीता के पास आकर उन्हें सान्त्वना देना और अपने आश्रम में ले जाना, लक्ष्मण और सुमन्त्र का वार्तालाप, अयोध्या के राजभवन में पहुंचकर लक्ष्मण का दु:खी राम से मिलना एवं उन्हें सान्त्वना देना, राम के दरबार में च्यवन आदि ऋषियों का आगमन, तथा लवणासुर के अत्याचार का राम से निवेदन, शत्रुघ्न द्वारा लवणासुर का वध, राम द्वारा राज्य की पूर्ण रूप से देखभाल, राम के द्वारा शम्बूक का वध, राम के आदेश से अश्वमेध यज्ञ की तैयारी,

---

१- सविस्तर द्रष्टव्य - वा० रा०, युद्धकाण्ड

राम के अश्वमेघ यज्ञ में बाल्मीकि का लवकुश के साथ आना और रामायण गान, राम द्वारा सीता से उनकी शुद्धता प्रमाणित करने के लिए शपथ कराने का विचार, बाल्मीकि द्वारा सीता के पवित्रता का समर्थन, सीता का शपथ ग्रहण और रसातल में प्रवेश, सीता के लिए राम का परिताप, ब्रह्मा का उन्हें समझाना और उत्तरकाण्ड का अवशिष्ट अंश सुनने के लिए प्रेरित करना, भरत का गन्धर्वों पर आक्रमण और उनका संहार करके वहां दो नगर बसाकर अपने दोनों पुत्रों को सौंपना और अपना अयोध्या लौट आना, राम के आज्ञानुसार भरत और लक्ष्मण द्वारा अंगद और चन्द्रकेतु की कारुपथ, देश के विभिन्न राज्यों पर नियुक्ति, राम के यहां काल का आगमन और एक कठोर शर्त के साथ उनका वार्तालाप के लिए उद्यत होना, काल का राम को ब्रह्मा का सन्देश सुनाना और राम का उसे स्वीकार करना, लव और कुश का राज्याभिषेक, राम का भाइयों सुग्रीव आदि वानरों तथा रीछों के साथ परमधाम जाने का निश्चय और विभीषण हनुमान जाम्बवान, मयन्द आदि को भूतल पर रहने का आदेश देना। भाइयों सहित राम का विष्णु स्वरूप में प्रवेश आदि रामकथा के मुख्य बिन्दु हैं।[१]

महाभारत के वनपर्व के अन्तर्गत रामोपाख्यानपर्व में रामकथा बीस अध्यायों (२७३-२९२) में उपलब्ध होती है। इसके प्रथम दो (२७३-४) अध्यायों में युधिष्ठिर का "अस्ति नूनं मया कश्चिदल्पभाग्यतरोनरः"[२] - कहकर मारकन्डेय मुनि से प्रश्न करना, रामादि का जन्म तथा कुबेर की उत्पत्ति और उन्हें ऐश्वर्य की प्राप्ति का वर्णन है। २७५ वें अध्याय में रावण कुंभकर्ण, विभीषण खर और शूर्पणखा की उत्पत्ति, तपस्या और वरप्राप्ति तथा कुबेर का रावण को शाप देना निरूपित है। २७६ वें अध्याय में देवताओं का ब्रह्मा

१- सविस्तर द्रष्टव्य - वा० रा०, उत्तरकाण्ड

२- सविस्तर द्रष्टव्य - महाभारत, वनपर्व, रामोपाख्यानपर्व, २७५ अध्याय

के पास जाकर रावण के अत्याचार से त्राण पाने के लिए प्रार्थना करना तथा ब्रह्मा की आज्ञा से देवताओं का रीछ एवं वानर की योनि में उत्पन्न होना एवं दुन्दुभि गन्धर्वी का मन्थरा बनकर आना वर्णित है।[1] २७७ वें अध्याय में राम के राज्याभिषेक की तैयारी, रामवनगमन, भरत की चित्रकूट यात्रा, राम के द्वारा खरदूषण राक्षसों का विनाश, तथा रावण का मारीच के पास जाना विवेचित है।[2] २७८ वें अध्याय में मारीच का वध तथा सीता का हरण,[3] २७९ वें अध्याय में रावण द्वारा जटायु का वध, राम द्वारा जटायु का अन्त्येष्टि संस्कार, कबन्ध का बध तथा उसके दिव्य स्वरूप से वार्तालाप वर्णित है।[4] २८० वें अध्याय के अन्तर्गत राम और सुग्रीव की मैत्री वालि और सुग्रीव का युद्ध, राम के द्वारा बालि का वध तथा लंका की अशोकवाटिका में राक्षसियों द्वारा डरायी हुई सीता को त्रिजटा का आश्वासन निरूपित है।[5] २८१ वें अध्याय में रावण और सीता का संवाद[6] तथा २८२ वें अध्याय के अन्तर्गत राम का सुग्रीव पर कोप, सुग्रीव का सीता के अन्वेषण के लिए वानरों को भेजना एवं हनुमान का लौटकर अपने लंकायात्रा का वृत्तान्त राम से निवेदित करना विवेचित है।[7] २८३ वें अध्याय में वानर सेना का संगठन, सेतु का निर्माण, विभीषण का अभिषेक और लंका की सीमा में सेना का प्रवेश तथा अंगद का रावण के पास दूत बनाकर भेजना वर्णित है।[8] २८४ वे अध्याय के अन्तर्गत अंगद का रावण के पास जाकर राम का सन्देश सुनाकर लौटना

१- सविस्तर द्रष्टव्य - महाभारत, वनपर्व,रामोपाख्यानपर्व, २७६ अध्याय

२- सविस्तर द्रष्टव्य- महा० वन०, रामोपा०, २७७ अध्याय

३- सविस्तर द्रष्टव्य - महा०, वन०, रामोपा०, २७८ अध्याय

४- सविस्तर द्रष्टव्य - महा०,वनपर्व, रामोपा०, २७९ अध्याय

५- सविस्तर द्रष्टव्य - महा०,.वनपर्व, रामोपा०, २८० अध्याय

६- सविस्तर द्रष्टव्य - महा०, वनपर्व, रामोपाख्यान, २८१ अध्याय

७- सविस्तर द्रष्टव्य - वही, २८२ अध्याय

८- सविस्तर द्रष्टव्य - वही, २८३ अध्याय

तथा राक्षसों और वानरों के घोर संग्राम का निरूपण किया गया है।[1] २८५ वें अध्याय में राम और रावण की सेनाओं का द्वन्द युद्ध तथा २८६ वें अध्याय के अन्तर्गत प्रहस्त और धूम्राक्ष के वध[2] के दुखी रावण का कुम्भकर्ण को जगाना और उसे युद्ध में भेजना वर्णित है,[3] २८७ वें अध्याय में कुम्भकर्ण वज्रवेग और प्रमाथी का वध तथा[4] २८८ वें अध्याय के अन्तर्गत इन्द्रजित् (मेघनाद) का मायामय युद्ध एवं श्रीराम और लक्ष्मण की मूर्च्छा का वर्णन किया गया है[5]। २८९ वें अध्याय में राम और लक्ष्मण का सचेत होकर कुबेर के भेजे हुए अभिमन्त्रित जल से प्रमुख वानरों सहित अपने नेत्र को धोना, लक्ष्मण द्वारा इन्द्रजित् का वध एवं सीता को मारने के लिए उद्यत हुए रावण का अविन्ध्य के द्वारा निवारण करना निरूपित है।[6] २९० वें अध्याय के अन्तर्गत राम और रावण का तुमुल युद्ध तथा रावण का वध[7] और २९१ वें अध्याय में राम का सीता के प्रति सन्देह, देवताओं द्वारा सीता की शुद्धि का समर्थन, राम का दलबल सहित लंका से प्रस्थान एवं किष्किन्धा होते हुए अयोध्या में पहुंचकर भरत से मिलना और राम के राज्याभिषेक की विवेचना है।[8] २९२ वें अध्याय रामकथा के उपसंहार से सम्बद्ध है जिसमें मारकन्डेय ने युधिष्ठिर को आस्वासन दिया है।[9]

१- सविस्तर द्रष्टव्य - महा०, वनपर्व, रामोपाख्यानपर्व - २८४ अध्याय

२- सविस्तर द्रष्टव्य - वही, २८५ अध्याय

३- सविस्तर द्रष्टव्य - वही, २८६ अध्याय

४- सविस्तर द्रष्टव्य - वही, २८७ अध्याय

५- सविस्तर द्रष्टव्य - वही, २८८ अध्याय

६- सविस्तर द्रष्टव्य - वही, २८९ अध्याय

७- सविस्तर द्रष्टव्य - वही, २९० अध्याय

८- सविस्तर द्रष्टव्य - वही, २९१ अध्याय

९- सविस्तर द्रष्टव्य - वही, २९२ अध्याय

(ख) ऋष्यशृङ्गोपाख्यान -

वाल्मीकीय रामायण के बालकाण्ड के दस (६-१८) सर्गों में ऋष्यशृङ्गोपाख्यान उपलब्ध होता है जिनमें नवम दशम एकादश और पंचदश सर्ग विशेष महत्वपूर्ण है । नवम सर्ग में सुमन्त्र का राजा दशरथ को पुत्रेष्टि यज्ञ के लिए ऋष्यशृङ्ग मुनि को बुलाने का परामर्श देते हुए उनके अंगदेश में जाने और लोमपाद की (रोमपाद) कन्या शान्ता से विवाह करने का प्रसंग वर्णित है । इसी सर्ग में यह स्पष्टत: बताया गया है कि ऋष्यशृङ्ग कश्यप गोत्रीय ब्रह्मर्षि विभाण्डक के तपोनिधि पुत्र है[1] । पुनश्च यह भी बताया गया है कि यह ऋष्यशृङ्ग दशरथ के मित्र अङ्गदेश के नरपति रोमपाद के जामाता हैं[2] । रोमपाद की ही कन्या शान्ता के साथ ऋष्यशृङ्ग का विवाह हुआ था[3] । दशम सर्ग में अङ्गदेश में ऋष्यशृङ्ग के आने तथा शान्त के साथ उनके विवाह होने के प्रसंग का सविस्तर वर्णन है । एकादश सर्ग में सुमन्त्र के कहने से अयोध्यानरेश दशरथ का सपरिवार अङ्गराज के यहाँ जाकर वहाँ से शान्ता और ऋष्यशृङ्ग को अपने घर ले आने की कथा निरूपित है । बारहवें से चौदहवें सर्ग तक दशरथ द्वारा अश्वमेघ यज्ञ की तैयारी एवं उसके अनुष्ठान का वर्णन है । पन्द्रहवें सर्ग में ऋष्यशृङ्ग द्वारा दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ का आरम्भ तथा सोलहवें में दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ में अग्निकुण्ड प्राजापत्य पुरुष का प्रकट होकर खेद अर्पण करना तथा उसे खाकर कौशल्या आदि रानियों का गर्भवती होना वर्णित है । सत्रहवें सर्ग में ब्रह्मा की प्रेरणा से देवता आदि के द्वारा विभिन्न वानरयूथपतियों की उत्पत्ति तथा अठारहवें सर्ग में दशरथ द्वारा ऋष्यशृङ्ग की बिदाई आदि का वर्णन है ।

१- काश्यपस्य च पुत्रो स्ति विभाण्डक इति श्रुत: ।
ऋष्यशृङ्ग इति ख्यातस्तस्य पुत्रो भविष्यति ।।
-- वा० रा०, बालकाण्ड०, ६।३

२- ऋष्यशृङ्गस्तु जामाता पुत्रांस्तव विधास्यति ।—वा०रा०बालका०, ६।१६

(पाद टिप्पणी अगले पृष्ठ पर देखें)

महाभारत के वनपर्व के तीर्थयात्रापर्व में चार (११०-१३) अध्यायों में ऋष्यशृङ्‌गोपाख्यान प्राप्त होता है । ११० वें अध्याय में ऋष्यशृङ्‌ग-मुनि का उपाख्यान और उनको अङ्‌गदेश के नरपति लोमपाद (रोमपाद) का अपने राज्य में लाने के लिए प्रयत्न वर्णित है इसी अध्याय में रामायण के समान ही यह बताया गया है कि ऋष्यशृङ्‌ग कश्यप गोत्रीय विभाण्डक मुनि के परम तपस्वी विद्यानिधि पुत्र है।[१] पुनश्च यह भी बताया गया है कि ऋष्यशृङ्‌ग[२] का जन्म मृगी के गर्भ से हुआ है इसके औचित्य के सन्दर्भ में यह बताया गया है कि ब्रह्मर्षि विभाण्डक अपने 'पुण्य' नामक आश्रम के निकट से होकर बहने वाली 'कौशिकी' नदी में एक दिन स्नान कर रहे थे उसी समय वहां पर उपस्थित उर्वशी नामक अप्सरा को देखकर उनका अमोघ वीर्य जल में स्खलित हो गया।[३] उसी समय एक प्यासी मृगी वहां पानी पीने के लिए आयी जिसने संयोगवश उस

---

१ - विभाण्डकसुतं राजन् ब्राह्मणं वेदपारगम् ।
प्रयच्छ कन्यां शान्तां वै विधिना सुसमाहित: ।।
- वा० रा०, बालकाण्ड०, ६। १३

१- विभाण्डकस्य विप्रर्षेस्तपसा भावितात्मन: ।
अमोघवीर्यस्य सत: प्रजापतिसमद्युते: ।।
- वनपर्व (तीर्थयात्रापर्व) अध्याय ११० ,श्लोक संख्या -३२

२- मृग्यां जात: स तेजस्वी काश्यपस्य सुत: प्रभु: ।
विषये लोमपादस्य यश्चकाराद्भुतं महत् ।।
ऋष्यशृङ्‌ग: कथं मृग्यामुत्पन्न: काश्यपात्मज: ।।
- महा०, वन०, तीर्थयात्रा, ११०।२५

३- तस्य रेत: प्रचस्कन्द दृष्ट्वाप्सरसमुर्वशीम् ।
अप्सूपस्पृशतो राजन् मृगी त चापिबत् तदा ।।
- महा०, वन०, तीर्थयात्रा० ११० । ३५

वीर्यमिश्रित जल का ही पान कर लिया।[1] उपलब्ध प्रमाणों के अनुसार यह मृगी पूर्व जन्म में देवकन्या बतायी जाती है। इसी के गर्भ से ऋष्यशृङ्ग का जन्म हुआ था ऐसा माना जाता है।[2] ऋष्यशृङ्ग के नामकरण के सम्बन्ध में भी यह ज्ञातव्य है कि इनका यह नाम इसलिए पड़ा क्योंकि इनके सिर पर एक सींग होने का उल्लेख मिलता है।[3] १११ वें अध्याय में अंगदेश के नरपति लोमपाद के द्वारा नियुक्त वेश्या का ऋष्यशृंग को लुभाना और विभाण्डक मुनि का अपने आश्रम 'पुण्य' पर आकर पुत्र (ऋष्यशृङ्ग) की चिन्ता का कारण पूछना विवेचित है। ११२ वें अध्याय में ऋष्यशृङ्ग का पितृचरण विभाण्डक को अपनी चिन्ता का कारण बताते हुए वटुरूपधारी वेश्या के स्वरूप और आचरण का वर्णन किया गया है। ११३ वें अध्याय में ऋष्यशृङ्ग का अंगराज लोमपाद के यहां जाना राजा लोमपाद का उन्हें अपनी कन्या शान्ता का देना, लोमपाद द्वारा विभाण्डक मुनि का सत्कार तथा उन पर मुनि के प्रसन्न होने का वृत्तान्त वर्णित है। इस प्रकार महाभारत में निरूपित ऋष्यशृङ्गोपाख्यान रामायण की अपेक्षा विस्तृत तो अवश्य है किन्तु अधिक भिन्न नहीं।

१- सह तोयेन तृषिता गर्भिणी चाभवत् ततः।
सा पुरोक्ता भगवता ब्रह्मणा लोककर्तृणा।।
- महा० व० तीर्थयात्रा० ११०। ३६

२- (क) देवकन्या मृगी भूत्वा मुनिं सूय विमोक्ष्यसे।
अमोघत्वाद् विधेश्चैव भावित्वाद् दैवनिर्मितात्।।
- महा० तीर्थयात्रा० ११०। ३७

(ख) तस्यां मृग्यां समभवत् तस्य पुत्रो महानृषिः।
ऋष्यशृङ्गस्तपोनित्यो वन एवाभ्यवर्तत।।
- महाभारत० तीर्थयात्रा० ११०। ३८

३- तस्यर्षेः शृङ्गं शिरसि राजन्नासीन्महात्मनः।
तेनर्ष्यशृङ्ग इत्येवं तदा स प्रथितोऽभवत्।।
- महाभारत० तीर्थयात्रा० ११०। ३९

(ग) गङ्गावतरणसन्दर्भ

बाल्मीकीय रामायण के बालकाण्ड के छ: (३६-४४) सर्ग गङ्गावतरणसन्दर्भ से सम्बद्ध मिलते हैं जिनमें ४१ वां, ४२ वां, ४३ वां, और ४४ वां सर्ग विशेष महत्वपूर्ण है। ३६ वें सर्ग में इन्द्र के द्वारा राजा सगर के यज्ञीय अश्व का अपहरण, सगर पुत्रों द्वारा सम्पूर्ण पृथवी का भेदन तथा देवताओं का ब्रह्मा को यह शुभ समाचार बताना वर्णित है। ४० वें सर्ग में सगर पुत्रों के भावी विनाश की सूचना देकर ब्रह्मा का देवताओं को शान्त करना, सगर के पुत्रों का पृथवी को विदारित करते हुए महर्षि कपिल के पास पहुंचना और उनके रोष से जलकर भस्म होना निरूपित है। ४१ वें सर्ग में सगर की आज्ञा से उनके पौत्र असमञ्जसकुमार अंशुमान का रसातल में जाकर यज्ञीय अश्व को ले आना और सगर को अपने चाचाओं के निधन का समाचार सुनाना विवेचित है। इसी सर्ग में यह भी बताया गया है कि जब अंशुमान सगर के ६०००० पुत्रों अथवा अपने पितृव्यों का कपिलमुनि के द्वारा भस्मसात् किया जाना सुना गया तो उन्हें असह्य दु:ख एवं शोक हुआ। अंशुमान शोकमग्न ही थे कि तब तक उनके मातुल विनतानन्दन गरुड़ उन्हें सामने आते हुए दिखायी दिये और उन्होंने अंशुमान को बताया कि सगरपुत्रों का यह निधन लोकमंगल के लिये हुआ है।[१] अतएव इस विषय में तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए। पुनश्च गरुड़ ने अंशुमान से यह भी बताया कि यदि तुम आकाश से गङ्गा को यहां पाताल तक ले आओ तो इन सगर पुत्रों का नि:सन्देह उद्धार हो जायेगा। अतएव तुम गङ्गा के जल से ही इन सब को जलाञ्जलि देने का प्रयत्न करो।[२]

१- स चैनमब्रवीद् वाक्यं वैनतेयो महाबल: ।
मा शुच: पुरुषव्याघ्र वधो यं लोकसम्मत: ।।
- बा० रा०, बाल०, ४१ । १७

२- गङ्गा हिमवतो ज्येष्ठा दुहिता पुरुषर्षभ ।
तस्यां कुरु महाबाहो पितृणां सलिलक्रियाम् ।।
- बा० रा०, बाल०, ४१ । १६

गङ्गा इन सगर पुत्रों की राख की ढेर पर गिरते ही इन्हें स्वर्गलोक में पहुंचा देगी[1]।

४२ वें सर्ग में अंशुमान और भगीरथ की गङ्गा को लाने के लिए तपस्या, ब्रह्मा का भगीरथ को अभीष्ट वर देकर गङ्गा को धारण करने के लिए भूतभावन शंकर को प्रसन्न करने के निमित्त प्रयत्न करने का परामर्श वर्णित है। इसी सर्ग में यह बताया गया है कि गङ्गा को भूतल पर लाने का प्रयत्न यद्यपि अंशुमान[2], उनके पुत्र दिलीप[3] ने भी प्रयत्न किया किन्तु उन्हें अपेक्षित सफलता न प्राप्त हो सकी। इस सन्दर्भ में सम्पूर्ण सफलता का श्रेय दिलीपनन्दन भगीरथ

१- भस्मराशीकृतानेतान् प्लावयेल्लोकपावनी ।
तया क्लिन्नमिदं भस्म गङ्गया लोककान्तया ।
षष्टिं पुत्रसहस्राणि स्वर्गलोकं गमिष्यति ।।
-बा० रा०, बाल०, ४१।२०

२- तस्मै राज्यं समादिश्य दिलीपे रघुनन्दन ।
हिमवच्छिखरे रम्ये तपस्तेपे सुदारुणम् ।।
- बा० रा०, बा० का०, ४२ ।३

द्वात्रिंशच्छतसाहस्रं वर्षाणि सुमहायशाः ।
तपोवनगतो राजा स्वर्गं लेभे तपोधनः ।।
- बा० रा०, बाल०, ४२ ।४

३- दिलीपस्तु महातेजाः श्रुत्वा पैतामहं वधम् ।
दुःखोपहतया बुद्ध्या निश्चयं नाध्यगच्छत ।।
- बा० रा०, बाल०, ४२ ।५

कथं गङ्गावतरणं कथं तेषां जलक्रिया ।
तारयेयं कथं चैतानिति चिन्तापरो भवत् ।।
-बा० रा०, बाल०, ४२ । ६

को ही उपलब्ध हुआ है । भगीरथ ने गङ्गा को भूतल पर लाने के लिए `गोकर्णतीर्थ` में सहस्रों वर्षों तक कठोर तप किया, उनके अमोघ तप से[1] प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उनसे अभीष्ट वर मांगने के लिए कहा ।[2] इस पर भगीरथ ने उनसे निवेदन किया कि भगवन् यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और यदि इस तपस्या का कोई उत्तम फल है तो सगर के सभी पुत्रों को मेरे हाथ से गङ्गा के ही जल का तर्पण प्राप्त हो ।[3] इन सभी की भस्मराशि के गङ्गा के जल से भीग जाने पर मेरे इन सभी पितामहों को अक्षय स्वर्गलोक मिले ।[4] पुनश्च मैं सन्तति के लिए भी आपसे विनम्र प्रार्थना करता हूं । मेरे कुल की परम्परा सदैव अक्षत बनी रहे । भगवन् मेरे द्वारा याचित उत्तम वर सम्पूर्ण इक्ष्वाकु वंश के लिए लागू होना चाहिए ।[5] भगीरथ की प्रार्थना को सुनकर विधाता

१- मन्त्रिष्वाधाय तद् राज्यं गङ्गावतरणे रत: ।
तपोदीर्घं समातिष्ठद् गोकर्णे रघुनन्दन ।।
- वा० रा० बाल० ४२ । १२

२- भगीरथ महाराज प्रीतस्ते हं जनाधिप ।
तपसा च सुतप्तेन वरं वरय सुव्रत ।।
- वा० रा० बाल० ४२ । १६

३- यदि मे भगवान् प्रीतो यद्यस्ति तपस: फलम् ।
सगरस्यात्मजा: सर्वे मत्त: सलिलमाप्नुयु: ।।
- वा० रा० बाल० ४२ ।१८

४- गङ्गाया: सलिलक्लिन्ने भस्मन्येषां महात्मनाम् ।
स्वर्गं गच्छेयुरत्यन्तं सर्वे च प्रपितामहा: ।।
- वा० रा० बाल० ४२।१६

५- देव याचे ह संतत्यै नावसीदेत् कुलं च न: ।
इक्ष्वाकूणां कुले देव एष मे स्तु वर: पर: ।।
- वा० रा० बाल० ४२ ।२०

ब्रह्मा ने उन्हें यथेच्छ वर प्रदान किया।[1] पुनश्च यह भी बताया कि गङ्गा के प्रवाह को संभालने में भगवान शंकर के अतिरिक्त त्रिलोकी में कोई भी समर्थ नहीं है।[2] अतएव गङ्गा को संभालने के लिए भगवान शंकर को प्रसन्न करना चाहिए तभी गङ्गा भूतल पर आपके साथ जा सकेगी और सगर पुत्रों का उद्धार हो सकेगा। ४३ वें सर्ग में भगीरथ की तपस्या से परितुष्ट भगवान शंकर का गङ्गा को अपने सिर पर धारण करके बिन्दु सरोवर में छोड़ना और उनका सात धाराओं में विभक्त होकर भगीरथ के साथ जाकर उनके पितरों का उद्धार करना वर्णित है। इसी सर्ग में यह भी बताया गया है कि भगवती गङ्गा के मन में यह बात आयी कि क्यों न शंकर को ही लिये दिये पाताल में प्रवेश कर जाऊं।[3] गङ्गा की इस मनोवृत्ति से अवगत होकर कुपित हुए त्रिशूली शिव ने उन्हें अपनी जटा मंडल में अदृश्य करने का निश्चय कर लिया।[4] फलत:

१- मनोरथो महानेष भगीरथ महारथ।
एवं भवतु भद्रं ते इक्ष्वाकुकुलवर्धन ॥
- वा० रा० बाल० ४२ । २२

२- इयं हैमवती ज्येष्ठा गङ्गा हिमवत: सुता।
तां वै धारयितुं राजन् हरस्तत्र नियुज्यताम् ॥
- वा० रा० बाल० ४२ ।२३

गङ्गाया: पतनं राजन् पृथवीं न सहिष्यति।
तां वै धारायितुं राजन् नान्यं पश्यामि शूलिन: ॥
- वा० रा० बाल० ४२।२४

३- अचिन्तय च सा देवी गङ्गा परमदुर्धरा।
विशाम्यहं हि पातालं स्रोतसा गृहय शंकरम् ॥
- वा० रा० बाल० ४३ ।५

४- तस्यावलेपनं ज्ञात्वा क्रुद्धस्तु भगवान् हर:।
तिरोभावयितुं बुद्धिं चक्रे त्रिनयनस्तदा ॥
- वा० रा० बाल० ४३ । ६

गङ्‌गा प्रयत्न करने पर भी उस समय सब: भगीरथ को न मिल सकी [१]। और वे शिव के जटामंडल में ही विलीन हो गईं [२]। ऐसी स्थिति में शिव से गङ्‌गा को प्राप्त करने के लिए भगीरथ को पुन: कठोर तपस्या करनी पड़ी । भगीरथ के तप से सन्तुष्ट होकर शिव ने गङ्‌गा को बिन्दु सरोवर में ले जाकर छोड़ा [३]। बिन्दु सरोवर में आते ही गंगा की सात धारायें हो गईं जिनमें ह्लादनी, पावनी और नलिनी ये तीन मंगलमयी धारायें पूर्व दिशा की ओर चली गईं [४]। इनके अतिरिक्त सुचक्षु सीता और महानदी सिन्धु ये तीन पवित्र धारायें पश्चिम की ओर प्रवाहित हो गईं [५]। सातवीं धारा रथारूढ़ धर्मात्मा महातपस्वी

१- हिमवत्प्रतिमे राम जटामण्डलगह्वरे ।
सा कथंचिन्महीं गन्तुं नाशक्नोद यत्नमास्थिता ।।
- वा० रा० बाल० ४३ । ८

२- नैव सा निर्गमं लेभे जटामण्डलमन्तत: ।
तत्रैवाबभ्रमद्‌ देवी संवत्सरगणान् बहून ।।
- वा० रा० बाल० ४३ । ६

३- विससर्ज ततो गङ्‌गा हरो बिन्दुसर: प्रति ।
तस्यां विसृज्यमानायां सप्त स्रोतांसि जज्ञिरे ।।
- वा० रा० बाल० ४३ । ११

४- ह्लादिनी पावनी चैव नलिनी च तथैव च ।
तिस्र: प्राचीं दिशं जग्मुर्गङ्‌गा शिवजला: शुभा: ।।
- वा० रा० बाल० ४३ । १२

५- सुचक्षुश्चैव सीता च सिन्धुश्चैव महानदी ।
तिस्रश्चैता दिशं जग्मु: प्रतीचीं तु दिशं शुभा ।।
- वा० रा० बाल० ४३ । १३

भगीरथ के पीछे-पीछे चल पड़ी । रथारूढ़ भगीरथ जिस मार्ग से होकर आगे बढ़ते गङ्गा उसी मार्ग से होकर तीव्र गति से आगे प्रबल प्रवाह के साथ चलती रही । इसी सर्ग में यह भी बताया गया है कि जब गङ्गा भगीरथ के पीछे-पीछे आगे चलती चली जा रही थी तो मार्ग में महामना राजा जह्नु यज्ञ कर रहे थे । गङ्गा ने जह्नु के यज्ञ मण्डप को ही अपनी धारा में समेट लिया ।[१] गङ्गा के इस कृत्य से असन्तुष्ट होकर राजा जह्नु ने गङ्गा जी के समस्त जल को आत्मसात् कर लिया ।[२] ऐसी स्थिति में गङ्गा के अदृश्य हो जाने के कारण भगीरथ सहित सभी देवताओं ने जह्नु से गङ्गा को वापस करने के लिए अनेकश: प्रार्थनाएं की और कहा कि भगवन् यदि आप गङ्गा को देने की कृपा करेंगे तो वह आपकी पुत्री होकर जाह्नवी के नाम से लोक प्रसिद्ध होगी ।[३] जिससे आपको सुयश मिलेगा । जह्नु भगीरथ सहित देवताओं की प्रार्थना को स्वीकार कर गङ्गा को पुन: भगीरथ के लिए दे दिया वहां से फिर गङ्गा रथारूढ़ भगीरथ का अनुसरण करती हुई समुद्र तक जा पहुंची और भगीरथ के पितरों का उद्धार करने के लिए रसातल भी गई । इस प्रकार भगीरथ के द्वारा गङ्गा का भूतल पर अवतरण हुआ । ४४ वें सर्ग में ब्रह्मा का भगीरथ की प्रशंसा करते हुए उन्हें गङ्गा जल से पितरों के तर्पण की आज्ञा देना और भगीरथ का वह सब कुछ करके अपने नगर को जाना तथा गङ्गावतरणोपाख्यान की महिमा संक्षिप्त रूप से वर्णित है । इसी सर्ग में यह भी बताया गया है कि ब्रह्मा ने ही गङ्गा

१- ततो हि यजमानस्य जह्नोरद्भुतकर्मण: ।
गङ्गा सम्प्लावयामास यज्ञवाटं महात्मन: ।।
- वा० रा० बाल० ४३ । ३४

२- यस्यावलेपनं ज्ञात्वा क्रुद्धो जह्नुश्च राघव ।
अपिबत् तु जलं सर्वं गङ्गाया: परमाद्भुतम् ।।
- वा० रा० बाल० ४३ । ३५

३- गङ्गा चापि नयन्ति स्म दुहितृत्वे महात्मन: ।
ततस्तुष्टो महातेजा: श्रोत्राभ्यामसृजत् प्रभु: ।
तस्माज्जह्नुसुता गङ्गा प्रोच्यते जाह्नवीति च ।।
- वा० रा० बाल० ४३ । ७-८ ।

को भगीरथ की पुत्री कहकर इसे भागीरथी के नाम से सम्बोधित किया है।[१] पुनश्च आकाश, पृथवी और पाताल तीनों पथों को पवित्र करने के कारण उन्होंने इसे 'त्रिपथगा' की भी संज्ञा से विभूषित किया है।[२]

महाभारत के वनपर्व के तीर्थयात्रापर्व के अन्तर्गत चार (१०६-६) अध्याय गङ्गावतरण सन्दर्भ से सम्बद्ध दृष्टिगत होते हैं जिनमें १०७ से १०६ अध्याय अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। १०६ वें अध्याय में सगर का सन्तान के लिए तपस्या करना और भूतभावन शिव के द्वारा वरदान पाना बताया गया है। १०७ वें अध्याय के अन्तर्गत सगर के पुत्रों की उत्पत्ति, सगर के अश्वमेध यज्ञ की तैयारी, साठ हजार पुत्रों का कपिल की क्रोधाग्नि से भस्म होना। असम जस् का परित्याग, अंशुमान के प्रयत्न से सगर के यज्ञ की पूर्ति, अंशुमान से उनके पुत्र दिलीप को और दिलीप से उनके आत्मज भगीरथ को राज्य की प्राप्ति होने का वर्णन है। इसी अध्याय के अन्तर्गत यह बताया गया है कि जब अंशुमान सगर के यज्ञ को सम्पन्न करने के उद्देश्य से यज्ञीय अश्व को खोजते हुए महर्षि कपिल के पास पहुँचे और उन्हें विनम्रतापूर्वक प्रणाम करके सारा वृत्तान्त सुनाया तो महर्षि कपिल उनके शील सौजन्य विनम्रता उदात्त मानवीय गुणों से परितुष्ट होकर अंशुमान को यथेष्ट वर प्रदान किया।[३] पुनश्च उनके पितरों के उद्धार के

१- इयं च दुहिता ज्येष्ठा तव गङ्गा भविष्यति।
त्वत्कृतेन च नाम्नाथ लोके स्थास्यति विश्रुता।।
- वा० रा० बाल० ४४।५

२- गङ्गा त्रिपथगा नाम दिव्या भागीरथीति च।
त्रीनपथो भावय-तीति तस्मात् त्रिपथगा स्मृता।।
- वा० रा० बाल० ४४।६

३- स वव्रे तुरंग तत्र प्रथमं यज्ञकारणात्।
द्वितीयं वरकं वव्रे पितृणां पावनेच्छया।।
- महाभारत, वनपर्व, तीर्थयात्रा०, १०७। ५३

लिए यह भी बताया कि तुम्हारे ही प्रभाव सगर के सारे पुत्र जो मेरी क्रोधाग्नि में शलभ की भांति भस्म हो गये हैं स्वर्गलोक में अवश्य जायेंगे।[1] तुम्हारा पौत्र भगीरथ भगवान शंकर को सन्तुष्ट करके सगरपुत्रों को पवित्र करने के लिए स्वर्ग लोक से गंगा को यहां ले आयेगा।[2] इसी अध्याय में यह भी बताया गया है कि अंशुमान के पुत्र दिलीप ने भी गङ्गा को भूतल पर लाने के लिए अधिक तप किया किन्तु उन्हें सफलता न मिल सकी।[3]

१०८ वें अध्याय में भगीरथ का हिमालय पर जाकर कठोर तप करना और उसके द्वारा गङ्गा एवं भगवान शंकर को प्रसन्न करके उनसे वर प्राप्त करने का वर्णन किया गया है। इसी अध्याय के अन्तर्गत यह स्पष्टत: बताया गया है कि धर्मधुरीण भगीरथ के सहस्रों वर्षों के कठोर तप से प्रसन्न होकर भगवती गङ्गा ने स्वयं ही आकर उन्हें अपना दिव्य दर्शन दिया था[4] उनसे यथेष्ट वर मांगने के लिए वचन दिया।[5] इस पर भगीरथ ने उन्हें अपने ऊपर भनस्त:

१- तव चैव प्रभावेण स्वर्गं यास्यन्ति सागरा: ।

- महा० वन० तीर्थयात्रा, १०७। ५६

२- पौत्रश्च ते त्रिपथगां त्रिदिवादानयिष्यति।।
पावनार्थं सागराणां तोषयित्वा महेश्वरम् ।

- महाभारत, वनपर्व, तीर्थयात्रा०, १०७।५७

३- दिलीपस्तु तत: श्रुत्वा पितृणां निधनं महत् ।
पर्यतप्यत दु:खेन तेषां गतिमचिन्तयत् ।।
गङ्गावतरणे यत्नं सुमहच्चाकरोन्नृप: ।
न चावतारयामास चेष्टमानो यथाबलम् ।।

- महाभारत, वनपर्व, तीर्थयात्रा, १०७।६६-६७

४- संवत्सरसहस्रे तु गते दिव्ये महानदी ।
दर्शयामास तं गङ्गा तदा मूर्तिमती स्वयम् ।।

- महाभारत,वनपर्व, तीर्थयात्रा, १०८।१४

५- किमिच्छसि महाराज मत्त: किं च ददानि ते ।
तद् ब्रवीहि नरश्रेष्ठ करिष्यामि वचस्तव ।।
- महाभारत, वनपर्व, तीर्थयात्रा, १०८।१५

पूर्ण प्रसन्न जानकर निवेदन किया कि वरदायिनि महानादें ! मेरे पितामह[1]
यज्ञ सम्बन्धी अश्व का पता लगाते हुए कपिल के कोप से यमलोक जा पहुंचे हैं ।
वे सब महात्मा सगर के पुत्र थे और उनकी संख्या ६० हजार थी[2] । भगवान कपिल
के निकट जाकर वे सब के सब क्षण भर में भस्म हो गये । इस प्रकार दुर्मृत्यु से
मरने के कारण उन्हें स्वर्ग में निवास नहीं प्राप्त हो सका है[3] । महानादें ।
जब तक तुम अपने जल से उनके भस्म हुए शरीरों को सींच न दोगी तब तक उन
सगर पुत्रों की सद्गति नहीं हो सकती[4] । महाभागे ! मेरे पितामह सगर पुत्रों
को स्वर्ग में पहुंचाने की कृपा करो ? मैं उन्हीं के उद्धार के लिए तुमसे सर्वात्मना
याचना करता हूं[5] । भगीरथ के निवेदन को सुनकर भगवती गङ्गा ने उन्हें यथेच्छ

१- एवमुक्त: प्रत्युवाच राजा हैमवतीं तदा ।
पितामहा मे वरदे कपिलेन महानदि ।
- महाभारत, वनपर्व, तीर्थ यात्रा, १०८ । १६

२- अन्वेषमाणास्तुरगं नीता वैवस्वतक्षयम् ।
षष्टिस्तानि सहस्राणि सागराणां महात्मनाम् ।।
- महाभारत, वनपर्व, तीर्थयात्रा, १०८ ।१७

३- कपिलं देवमासाद्य क्षणेन निधनं गता: ।
तेषामेवं विनष्टानां स्वर्गे वासो न विद्यते ।।
- महाभारत, वनपर्व, तीर्थयात्रा, १०८।१८

४- यावत् तानि शरीराणि त्वं जलेनाभिषिञ्चसि ।
तावत् तेषां गतिर्नास्ति सागराणां महानदि ।।
- महाभारत, वनपर्व, तीर्थ यात्रा, १०८। १९

५- स्वर्गं नय महाभागे मत्पितृन् सगरात्मजान् ।
तेषामर्थेन याचामि त्वामहं वै महानदि ।।
- महाभारत, वनपर्व, तीर्थयात्रा १०८।२०

वर प्रदान किया[1] साथ ही यह भी बताया कि त्रिलोकी में शिव के अतिरिक्त कोई मेरा वेग नहीं संभाल सकता अतएव मुझे भूतल पर ले चलने के लिए भूतभावन शंकर को तुम्हें प्रसन्न करना होगा।[2] उनके प्रसन्न होने पर ही आपका मनोरथ पूर्ण हो सकेगा।[3] १०६ वें अध्याय में पृथवी पर गंगा के उतरने और समुद्र को जल से भरने का विवरण तथा सगर पुत्रों के उद्धार का वर्णन किया गया है। इसी अध्याय में भगीरथ का अपने कठोर तपस्या के द्वारा गंगा के अप्रतिम वेग को संभालने के लिए शिव को राजी करना और शिव का उन्हें तदर्थ प्रसन्न होकर आश्वासन देना तथा गङ्गा के पृथवी पर उतरने और उनकी अप्रतिम प्राकृतिक छटा का भी संक्षेप में वर्णन किया गया है। पुनश्च भगीरथ के द्वारा गङ्गा को अपनी पुत्री के रूप में स्वीकार करके उनके भागीरथी नामकरण की सार्थकता का भी प्रतिपादन किया गया है।[4]

१- करिष्यामि महाराज वचस्ते नात्र संशयः।
वेगं तु मम दुर्धार्यं पतन्त्या गगनाद् भुवम्॥
- महाभारत, वनपर्व, तीर्थयात्रा, १०८।२२

२- न शक्तस्त्रिषु लोकेषु कश्चिद् धारयितुं नृप।
अन्यत्र विबुधश्रेष्ठान्नीलकण्ठान्महेश्वरात्॥
- महाभारत, वनपर्व, तीर्थयात्रा १०८। २३

३- स करिष्यति ते कामं पितॄणां हितकाम्यया।
तपसा परितोषितः शम्भुर्भगवांल्लोकभावनः॥
- महाभारत, वनपर्व, तीर्थयात्रा १०८ । २५

४- पूरयामास वेगेन समुद्रं वरुणालयम्।
दुहितृत्वे च नृपतिर्गङ्गां समनुकल्पयत्॥
- महाभारत, वनपर्व, तीर्थयात्रा, १०६ ।१८

(घ) वसिष्ठ-विश्वामित्रसन्दर्भ -

बाल्मीकीयरामायण के बालकाण्ड के पांच (५२- ६) सर्ग 'वशिष्ठविश्वामित्र सन्दर्भ' से सम्बद्ध मिलते हैं। ५२ वें सर्ग में महर्षि वशिष्ठ द्वारा अपने आश्रम पर ससैन्य आये हुए विश्वामित्र का सत्कार और तदर्थ कामधेनु को अभीष्ट वस्तुओं की सृष्टि करने के आदेश का मार्मिक वर्णन किया गया है। ५३ वें सर्ग में कामधेनु की सहायता से उत्तम अन्न पान द्वारा सेना सहित तृप्त हुए विश्वामित्र का वशिष्ठ से उनकी कामधेनु (नन्दिनी) को मांगना और उनका देने से अस्वीकार करना वर्णित किया गया है। इसी सर्ग में यह बताया गया है कि विश्वामित्र अपने राज्य की अतुल सम्पत्ति को भी वशिष्ठ को देकर उनसे नन्दिनी को प्राप्त करना[1] चाहते थे किन्तु फिर भी वशिष्ठ ने कामधेनु को देना स्वीकार नहीं किया और उन्होंने विश्वामित्र से कहा कि राजन् यह कामधेनु मैं तुम्हें किसी भी प्रकार नहीं दे सकता क्योंकि यही मेरा रत्न है। यही मेरा धन है, यही मेरा सर्वस्व है। और यही मेरा जीवन है।[2] राजन् मेरे दर्शपौर्णमास प्रचुर दक्षिणा वाले यज्ञ तथा विविध पुण्य कर्म यह गौ ही है क्योंकि वे सभी इसी के द्वारा सम्पन्न होते ही फलत: इसी पर मेरा सब कुछ

१- यावदिच्छसि रत्नानि हिरण्यं वा द्विजोत्तम।
   तावद् ददामि ते सर्वं दीयतां शबला मम ।।
   - बा० रा० बाल०, ५३ ।२१
   एवमुक्तस्तु भगवान् विश्वामित्रेण धीमता।
   न दास्यामीति शबलां प्राह राजन् कथंचन ।।
   - बा० रा०, बाल०, ५३ । २२

२- एतदेव हि मे रत्नमेतदेव हि मे धनम्।
   एतदेव हि सर्वस्वमेतदेव हि जीवितम् ।।
   - बा० रा०, बाल०, ५३ । २३

निर्भर है [1] नरेश्वर । मेरे सारे शुभकर्मों का मूल्य यही है, इसमें संशय नहीं है बहुत व्यर्थ वार्तालाप से क्या लाभ । मैं इस कामधेनु को कदापि नहीं दूंगा । [2] ५४ वें सर्ग में विश्वामित्र का वशिष्ठ की गौ को बलपूर्वक ले जाना, कामधेनु का अत्यन्त दु:खी होकर तपोधन ब्रह्मर्षि वशिष्ठ से इसका कारण पूछना और उनकी आज्ञा से शक, यवन, पह्लव आदि वीरों की सृष्टि करके उनके द्वारा विश्वामित्र की विशाल सेना का संहार करना रोमांचक रूप में वर्णित है । इसी सर्ग में यह बताया गया है कि जब विश्वामित्र नन्दिनी को बलपूर्वक घसीटकर लिवाये जा रहे थे तो वह विश्वामित्र के सैकड़ों सेवकों को झटककर महातेजस्वी वशिष्ठ मुनि के पास बड़े वेग से दौड़ती हुई उस समय आ पहुंची और अत्यन्त दुखित मुद्रा में वशिष्ठ से पूछने लगी कि भगवन् । क्या आपने मुझे त्याग दिया जो विश्वामित्र के सैनिक मुझे आपके यहां से बलात् ले जा रहे हैं [3] । इस पर वशिष्ठ ने अत्यन्त खिन्न मना होकर नन्दिनी से कहा कि शबले । मैंने तुम्हारा त्याग नहीं किया क्योंकि तुमने मेरा कोई अपराध नहीं किया है । यह महाबली [4] विश्वामित्र अपने राजबल से प्रमत्त होकर तुमको मुझसे छीनकर ले जा रहे हैं । मेरा बल इनके समान

१- दर्शश्च पौर्णमासश्च यज्ञाश्चैवाप्तदक्षिणा: ।
एतदेव हि मे राजन् विविधाश्च क्रियास्तथा ।।
- वा० रा०, वा० का० ५३ ।२४

२- अतोमूला: क्रिया: सर्वा मम राजन् न संशय: ।
बहुना किं प्रलापेन न दास्ये कामदोहिनीम ।।
- वा० रा०, वाल०, ५३ । २५

३- भगवन् किं परित्यक्ता त्वयाहं ब्रह्मण: सुत ।
यस्माद् राजभटा मां हि नयन्ते त्वत्सकाशत: ।।
- वा० रा०, वाल०, ५४ ।८

४- न त्वां त्यजामि शबले नापि मे पकृतं त्वया ।
एष त्वां नयते राजा बलान्मत्तो महाबल: ।।
- वा० रा०, वाल०, ५४ । १०

नहीं है । विशेषत: इस समय ये राजपथ पर प्रतिष्ठित है । राजा, क्षत्रिय तथा इस पृथवी के पालक होने के कारण इस समय ये मुझसे भौतिक दृष्टि से अधिक बलवान है ।[1] इनके पास हाथी घोड़े एवं रथों से भरी हुई यह अक्षौहणी सेना है जिसमें हाथियों के हौदो पर लगे हुए ध्वज सब ओर फहरा रहे हैं । इस सेना के कारण भी ये मुझसे अधिक बलशाली है ।[2] यह सब कुछ सुनकर कामधेनु (नन्दिनी) आश्वासन देती हुई ब्रह्मर्षि वशिष्ठ से बोली कि ब्रम्हन् । क्षत्रिय का बल कोई बल नहीं है ब्राह्मण ही क्षत्रिय आदि से अधिक बलवान होते हैं ।[3] क्योंकि ब्रह्म बल दिव्य होने के कारण क्षात्र बल से अधिक बलशाली होता है । अत: आपका बल अप्रमेय है । महापराक्रमी विश्वामित्र आपसे अधिक बलवान नहीं है । आपका तेज दुर्घर्ष है ।[4] महर्षे ! मैं आपके ही बल से परिपुष्ट हुई हूं अतएव आप केवल मुझे आज्ञा दे दीजिए । मैं इस दुरात्मा नरपति के बल प्रयत्न एवं अभिमान को अभी चूर्ण किये देती हूं ।[5] इसके पश्चात् वशिष्ठ की

१- नहि तुल्यं बलं मह्यं राजा त्वद्य विशेषत: ।
बली राजा क्षत्रियश्च पृथिव्या: पतिरेव च ।।
- वा० रा०, बाल०, ५४ ।११

२- इयमक्षौहिणी पूर्णा गजवाजिरथाकुला ।
हस्तिध्वजसमाकीर्णा तेनासौ बलवत्तर: ।।
- वा० रा०, बाल०, ५४ । १२

३- न बलं क्षत्रियस्याहुर्ब्राह्मणा बलवत्तरा: ।
ब्रह्मन् ब्रह्मबलं दिव्यं क्षात्रा च बलवत्तरम् ।।
- वा० रा०, बाल०, ५४ ।१४

४- अप्रमेयं बलं तुभ्यं न त्वया बलवत्तर: ।
विश्वामित्रो महावीर्यस्तेजस्तव दुरासदम् ।।
- वा० रा०, बाल०, ५४ ।१५

५- नियुङ्क्ष्व मा महातेजस्त्वं ब्रह्मबलसम्भृताम् ।
तस्य दर्पं बलं यत्नं नाशयामि दुरात्मन: ।।
- वा० रा०, बाल०, ५४ ।१६

अनुज्ञा पाकर कामधेनु ने अपने हुंकार मात्र से सैकड़ों पह्लवों को जन्म दिया जिन्होंने उत्पन्न होते ही विश्वामित्र की सेना का संहार करना प्रारम्भ कर दिया। अपनी सेना का संहार होते देख विश्वामित्र के क्रोध की सीमा न रही। उन्होंने अनेक अस्त्रों का प्रयोग करके पह्लवों का संहार कर डाला। इस पर कामधेनु ने पुन: अनेक यवनों और शकों को उत्पन्न करके सम्पूर्ण रण-स्थल को उनसे भर दिया। तब विश्वामित्र ने उनपर भी अनेक अस्त्र छोड़े जिनसे आहत होकर वे यवन आदि योद्धा व्याकुल हो उठे।

५५ वें सर्ग में अपने सौ पुत्रों और सारी सेना के नष्ट हो जाने पर विश्वामित्र का तपस्या करके भगवान आशुतोष से दिव्यास्त्र प्राप्त करना तथा उनका वशिष्ठ के आश्रम पर पुन: प्रयोग करना और वशिष्ठ का ब्रह्मदण्ड लेकर उनके समक्ष रणस्थल में पदार्पण करना वर्णित है। इसी सर्ग में यह बताया गया है कि विश्वामित्र ने कठोर तप करके भगवान शंकर से अङ्ग, उपाङ्ग, उपनिषद और रहस्यों सहित ना केवल धनुर्वेद को अपितु देवताओं, दानवों, महर्षियों, गन्धर्वों, यक्षों, तथा राक्षसों के पास जो जो अमोघ अस्त्र हो सकते हैं। उन सबको प्राप्त किया।[१]

५६ वें सर्ग में विश्वामित्र द्वारा अपने तप: प्राप्त नाना प्रकार

१- यदि तुष्टो महादेव धनुर्वेदो ममानघ।
साङ्गोपाङ्गोपनिषद: सरहस्य: प्रदीयताम्॥
- वा० रा०, बाल० ५५।१६

यानि देवेषु चास्त्राणि दानवेषु महर्षिषु।
गन्धर्वयक्षरक्ष:सु प्रतिभान्तु ममानघ॥
- वा० रा०, बाल० ५५।१७

के दिव्यास्त्रों का ब्रह्मर्षि वशिष्ठ पर प्रयोग करना और वशिष्ठ द्वारा एकमात्र ब्रह्मदण्ड से ही उन सभी अस्त्रों का शमन करना एवं विश्वामित्र का वशिष्ठ के उस अप्रतिम ब्रह्मदण्ड से पराभूत होकर ब्राह्मणत्व की प्राप्ति के लिए तप करने की दृढ़ प्रतिज्ञा निरूपित किया गया है । इसी सर्ग में यह बताया गया है कि विश्वामित्र वशिष्ठ के एक ही ब्रह्मदण्ड से अपने तप: प्राप्त सम्पूर्ण अस्त्रों को लेकर भी जब सर्वात्मना पराजित हो गये और वशिष्ठ का कुछ भी अहित न कर सके तो अत्यन्त लज्जित होकर उन्होंने स्वयं कहा कि क्षात्रिय के बल को धिक्कार है । ब्रह्म तेज से प्राप्त होने वाला बल ही वास्तव में बल है क्योंकि आज एक ही ब्रह्मदण्ड ने मेरे सभी अस्त्र नष्ट कर दिये ।[1] इस घटना को प्रत्यक्षात: देखकर अब मैं अपने मन एवं इन्द्रियों को निर्मल करके उस महान तप का अनुष्ठान करूंगा जो मेरे लिए ब्राह्मणत्व की प्राप्ति का कारण होगा ।[2]

महाभारत के आदिपर्व के चैत्ररथपर्व चार (१७३-६) अध्याय वशिष्ठ विश्वामित्र सन्दर्भ से साक्षात सम्बद्ध मिलते हैं । १७३ वें अध्याय में वशिष्ठ की महत्ता एवं उनके क्षमा बल की चर्चा की गई है इसी अध्याय में यह बताया गया है कि वशिष्ठ विश्वामित्र के द्वारा अपने सौ पुत्रों के मारे जाने से अत्यधिक संतप्त थे उनमें बदला लेने की शक्ति भी थी तब भी उन्होंने सब कुछ सह लिया एवं विश्वामित्र का विनाश करने के लिए कोई भी दारूण कर्म नहीं

१- धिग् बलं क्षात्रियबलं ब्रह्मतेजोबलं बलम् ।
एकेन ब्रह्मदण्डेन सर्वास्त्राणि हतानि मे ।।
- वा० रा०, बाल०, ५६ । २३

२- तदेतत् प्रसमीक्ष्याहं प्रसन्नेन्द्रियमानस: ।
तपो महत् समास्थास्ये तद् वै ब्रह्मत्वकारणम् ।।
- वा० रा०, बाल०, ५६ । २४

किया।[1] १७४ वें अध्याय में विश्वामित्र का आखेट के बहाने वशिष्ठ के आश्रम पर सेना सहित पहुंचना, वशिष्ठ का विश्वामित्र एवं उनकी समस्त सेना को यथोचित सत्कार करना वर्णित किया गया है। इसके पश्चात् इसी अध्याय में यह भी बताया गया है कि विश्वामित्र वशिष्ठ के राजोचित सत्कार से सन्तुष्ट होकर अत्यन्त ही विस्मित हो उठे और उन्हें जब यह पता चला कि उनका यह अपूर्व सत्कार नन्दिनी[2] के द्वारा वशिष्ठ ने किया है। तब वह नन्दिनी को पाने के लिए लोलुप हो उठे। एतदर्थ विश्वामित्र अपना सम्पूर्ण राज्य भी[3] देकर वशिष्ठ से नन्दिनी को प्राप्त करने के लिए हर सम्भव प्रयत्न किया, किन्तु फिर भी वशिष्ठ ने उसे देना स्वीकार नहीं किया।[4] इस घटना से दुःख

१- यस्तु नोच्छेदनं चक्रे कुशिकानामुदारधीः।
विश्वामित्रापराधेन धारयन् मन्युमुत्तमम्॥
- महा० आदिपर्व, चैत्ररथ, १७३।७

पुत्रव्यसनसंतप्तः शक्तिमानप्यशक्तवत्।
विश्वामित्रविनाशाय न चक्रे कर्म दारुणम्॥
- महा०, आदि०, चैत्ररथ, १७३। ८

२- पृष्ठायतशिरोग्रीवां विस्मितः सो भिवीक्ष्य ताम्।
अभिनन्द्य स तां राजा नन्दिनीं गाधिनन्दनः॥
- महा०, आदि०, चैत्ररथ, १७४।१५

३- अब्रवी च भृशं तुष्टः स राजा तमृषिं तदा।
अर्बुदेन गवां ब्रह्मन् मम राज्येन वा पुनः॥
नन्दिनीं सम्प्रयच्छस्व भुङ्क्ष्व राज्यं महामुने।
- महा०, आदि०, चैत्ररथ, १७४।१६

४- देवतातिथिपित्रर्थं याज्यार्थं च पयस्विनी।
अदेया नन्दिनीयं वै राज्येनापि तवानघ॥
- महा०, आदि०, चैत्ररथ, १७४।१७

होकर विश्वामित्र ने ब्रह्मर्षि वशिष्ठ को चुनौती दी कि यदि आप अरबों गाय लेकर भी मेरी अभीष्ट वस्तु नहीं दे रहे हैं तो मैं इस गाय को बलपूर्वक ले जाऊंगा।[1] मैं क्षत्रिय हूं ; ब्राह्मण नहीं हूं । मुझे धर्मत: अपना बाहुबल प्रकट करने का अधिकार है । अतएव अपने बाहुबल से ही आपके देखते-देखते नन्दिनी को लेकर ही जाऊंगा।[2] विश्वामित्र ने वैसा ही किया भी । किन्तु जिस समय उनके सैनिक नन्दिनी को बलपूर्वक लेकर जा रहे थे उस समय वह नन्दिनी डकारती हुई भागकर आयी और वशिष्ठ के सामने खड़ी हो गई और उनसे अपनी रक्षा के सम्बन्ध में निवेदन किया और इसी क्रम में उसने यह कहा कि भगवन् । विश्वामित्र के निर्दय सैनिक मुझे कोड़ों और दण्डों से पीट रहे हैं । मैं अनाथ के समान क्रन्दन कर रहा हूं फिर आप क्यों हमारी उपेक्षा कर रहे हैं क्या आपने मुझे त्याग दिया है । ब्रह्मन् । यदि आपने मुझे त्याग न दिया हो तो कोई भी मुझे बलपूर्वक आपके यहां से नहीं ले जा सकता।[3] इस पर जब वशिष्ठ ने नन्दिनी से यह कहा कि कल्याणि । मैंने तुम्हारा त्याग नहीं किया

१- ब्राह्मणेषु कुतोवीर्यं प्रशान्तेषु धृतात्मसु ।
अर्बुदेन गवां यस्त्वं न ददासि ममेप्सितम् ।

- महा०, आदि०, चैत्ररथ, १७४ ।१६

२- स्वधर्मं न प्रहास्यामि नेष्यामि च बलेन गाम् ।
क्षत्रियो ऽस्मि न विप्रो ऽहं बाहुवीर्यो ऽस्मि धर्मत: ।
तस्माद् भुजबलेनेमां हरिष्यामीह पश्यत: ।।

- महा०, आदि०, चैत्ररथ, (प्रक्षिप्तं)

३- किं नु त्यक्ताऽस्मि भगवन् यदेवं त्वां प्रभाषसे ।
अत्यक्ताऽहं त्वया ब्रह्मन् नेतुं शक्या न वै बलात् ।।

- महा०, आदि०, चैत्ररथ, १७४ । ३०

है । यदि तुम रह सको तो यहीं रहो अर्थात् 'मेरे ही यहां रहो ।'[१] यह सुनकर नन्दिनी आश्वस्तमना होकर अपना गर्दन उठायी और विश्वामित्र की सेना का संहार करने के लिए उद्यत हो गई । उसने अपने विविध अंगों से पह्लवो, द्रविडों, शकों, यवनों, शवरों, पौड्रों, किरातों, सिंहलो, बर्बरों, खसों, पुलिन्दों, हूणों आदि अनेक प्रकार के सैनिकों को उत्पन्न करके सम्पूर्ण रणस्थल को शस्त्र और अस्त्र से सजे धजे वीरों से भर दिया । उन वीरों से आहत होकर विश्वामित्र के सैनिक पलायन कर गये । यह घटना देखकर विश्वामित्र जहां के तहां लज्जित होकर खड़े के खड़े रह गये और वशिष्ठ के यह पूछने पर कि दुरात्मन गाधिनन्दन । अब तू परास्त हो चुका है । यदि तुझमें और भी कोई उत्तम पराक्रम हो तो उसे भी दिखा में तेरे सामने डंटकर खड़ा हूं ।[२] विश्वामित्र यह सब कुछ सुनकर भी कुछ बोल न सके । लज्जित होकर खड़े के खड़े रहे ।[३] ब्रह्मतेज का यह आश्चर्यजनक चमत्कार देखकर विश्वामित्र क्षात्रियत्व से खिन्न एवं उदासीन होकर स्पष्टत: कहा कि क्षात्रिय-बल तो नाम-मात्र का ही बल है ; उसे धिक्कार है । ब्रह्म तेजोजनित बल ही वास्तविक बल है ।[४] इस प्रकार बलाबल का विचार करके

१- न त्वां त्यजामि कल्याणि स्थीयतां यदि शक्यते ।
दृढ़ेन दाम्ना बद्ध्वैष वत्सस्ते ह्रियते बलात् ।।
- महाभारत, आदिपर्व०, चैत्ररथ० १७४।३१

२- निर्जितो सि महाराज दुरात्मन् गाधिनन्दन ।
यदि ते स्ति परं शौर्यं तद् दर्शय मयि स्थिते ।।
- महा०, आदि०, चैत्ररथ० १७४ प्रक्षिप्त

३- नोवाच किंचिद् व्रीडाढ्यो विद्रावितमहाबल: ।।
- महा०, आदि०, चैत्ररथ, १७४ प्रक्षिप्त

४- दृष्ट्वा तन्महदाश्चर्यं ब्रह्मतेजोमवं तदा ।
विश्वामित्र: क्षात्रभावान्निर्विण्णो वाक्यमब्रवीत् ।।
- महा०, आदि०, चैत्ररथ, १७४ ।४४

उन्होंने तपोबल को ही सर्वोच्चम बल स्वीकार किया और अपने समृद्धिशाली राज्य, देदीप्ययुक्त राजलक्ष्मी को छोड़कर तपस्या करने का निश्चय किया और कठोर तप से उन्होंने त्रिलोकी को आश्चर्य चकित कर देने वाली अपूर्व सिद्धियां प्राप्त की । १७५ वें अध्याय में वशिष्ठ के पुत्र शक्ति के शाप से कल्याणपाद (मित्रसह:) नामक अवधनरेश का राक्षस होना और विश्वामित्र की प्रेरणा से उस राक्षस द्वारा वशिष्ठ के शक्ति आदि सभी पुत्रों का मारा जाना और वशिष्ठ के अनिर्वचनीय शोक का वर्णन है । १७६ वें अध्याय के अन्तर्गत पुत्र शोक एवं पुत्र-वधुओं के विधवात्व से परितप्त वशिष्ठ का अपनी आत्महत्या करने का असफल प्रयत्न वर्णित किया गया है । इसी अध्याय में यह बताया गया है कि जब वह अपने आपको पाशों से बांधकर वर्षा जल से लबालब भरी हुई आश्रम के निकट से बहने वाली नदी में विसर्जित किया तो उस नदी ने उन्हें पाशमुक्त कर तट पर पहुंचा दिया[1] । पाशों से मुक्त करने के कारण ही सम्भवत: उसी नदी को विपाशा (व्यास) कहा गया है । पुनश्च इसके बाद जब वह एक अन्य नदी में आत्महत्या के उद्देश्य से कूदे तो वह उनके तेज से सैकड़ों धाराओं में फूटकर इधर-उधर भाग चली । सम्भवत: इसी कारण उसे शतद्रु (सतलज) कहा गया । इस प्रकार वहां भी वे अपने आपको सुरक्षित पाकर आश्चर्य में पड़े रहे और फिर अपने आश्रम की ओर लौट पड़े । जब वह अपने आश्रम के निकट आये उस समय उनकी पुत्रवधू अदृश्यन्ती (शक्ति की धर्मपत्नी) उनके पीछे हो चली । उसी क्षण वशिष्ठ को पीछे की ओर से संगतिपूर्वक छहों अंगों से अलंकृत तथा परिस्फुट अर्थों से युक्त वेदमन्त्रों के अध्ययन की ध्वनि सुनायी पड़ी[2] । उनके आश्चर्य की सीमा

१- उत्तार: तत: पाशैर्विमुक्त: स महानृषि: ।
विपाशेति च नामास्या नद्याश्चक्रे महानृषि: ।।
- महा०, आदि०, चैत्ररथ, १७६।६

२- अथ शुश्राव संगत्या वेदाध्ययननि: स्वनम् ।
पृष्ठत: परिपूर्णार्थं षडभिरङ्गैरलंकृतम् ।।
- महा०, आदि०, चैत्ररथ, १७६ । १२

न रही । जब वे मुड़कर पीछे देखे तो उन्हें अपने पीछे अपनी पुत्र वधू अदृश्यन्ती आती हुई दिखायी दी । वशिष्ठ ने उससे इस दिव्य घटना के सम्बन्ध में जब पूछा तो उस अदृश्यन्ती ने निवेदन किया कि भगवन् ! मेरे उदर में आपके पुत्र शक्ति का बालक है । उसे मेरे गर्भ में ही वेदभ्यास करते हुए बारह वर्ष हो गये हैं । उसी की ध्वनि आपको सुनायी दी होगी यह सुनकर वशिष्ठ की प्रसन्नता की सीमा न रही और अपनी वंशपरम्परा को अक्षत जानकर वह आत्महत्या के संकल्प से विरत हो गये ।[१] इसके पश्चात वह अदृश्यन्ती के साथ जब आश्रम की ओर लौटने लगे तो उन्हें शक्ति के शाप से राक्षस हुए कल्माषपाद मार्ग में बैठे हुए दिखायी दिये । कल्माषपाद ने अदृश्यन्ती सहित वशिष्ठ को मारने का प्रयत्न किया किन्तु उन्हें सफलता न मिली । करुणानिधि वशिष्ठ ने यह जानकर कि यह शक्ति के शाप से अभिशप्त अवधनरेश कल्माषपाद है तो उन्होंने आभिमन्त्रित जल से कल्माषपाद को शाप से मुक्त कर दिया । कल्माषपाद भी अपने पूर्व स्वरूप को प्राप्त कर अत्यन्त हर्षित हो उठे और वशिष्ठ के पुनीत चरणों में अपनी श्रद्धा गर्भ निर्भर विनम्र प्रणति निवेदित की । पुनश्च अपनी सन्तान हीनता के सम्बन्ध में भी उनसे निवेदन किया । वशिष्ठ ने उनके दु:ख को समझा और उन्हें पुत्र प्राप्ति का अमोघ वरदान दिया जिसके फलस्वरूप कल्माषपाद की पत्नी मदयन्ती ने 'अश्मक' नामक पुत्र को जन्म दिया ।[२]

१- एवमुक्तस्तया हृष्टो वसिष्ठ: श्रेष्ठभागृषि: ।
अस्ति संतानमित्युक्त्वा मृत्यो: पार्थ न्यवर्तत ।।
- महा०, आदि०, चैत्ररथ, १७६ । १६

२- दीर्घकालेन सा गर्भं सुषुवे न तु तं तदा ।
तदा देव्यश्मना कुक्षिं निर्बिभेद यशस्विनी ।।
- महा०, आदि०, चैत्ररथ० १७६ । ४६

(च) शुन: शेपोपाख्यान

बाल्मीकीय रामायण के बालकाण्ड के दो (१६१-२) सर्गों में `शुन: शेपोपाख्यान` उपलब्ध होता है । १६१ वें सर्ग में यह बताया गया है कि जिस समय शुन: शेप के मामा वशिष्ठ पुष्कर तीर्थ में तप कर रहे थे उन्हीं दिनों अयोध्यानरेश अम्बरीष एक यज्ञ की तैयारी में लगे हुए थे । दुर्भाग्य से उनके यज्ञिय पशु को इन्द्र ने चुरा लिया अतएव अम्बरीष का यज्ञ पूर्ण नहीं हो पा रहा था ऐसी स्थिति में उनके पुरोहितों ने बताया कि या तो उस यज्ञीय पशु को खोजकर लाया जाय अथवा मूल्य देकर दूसरे किसी यज्ञ-पशु की यथासमय व्यवस्था की जाय।[१] तभी यज्ञ पूर्ण हो सकता है । अम्बरीष ने दूसरे यज्ञीय पशु की व्यवस्था करना उचित समझा क्योंकि उनका प्रथम यज्ञीय पशु तो नष्ट ही हो चुका था । वह यथोचित मूल्य देकर दूसरे यज्ञीय पशु को खरीदने के लिए इधर उधर भटकते रहे । इसी क्रम में वह `भृगुतुङ्ग` पर्वत पर महर्षि ऋचीक के आश्रम पर पहुंचे और उनसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया साथ ही यह भी निवेदन किया कि यदि वे एक लाख गौवें लेकर भी अपना कोई एक पुत्र यज्ञ पशु बनाने के लिए दे दें तो बड़ी कृपा होगी।[२] परन्तु महर्षि ऋचीक ने स्पष्टत: बताया कि[३] ज्येष्ठ पुत्र पिता को अत्यन्त प्रिय होता है अतएव उसे तो मैं नहीं दे सकता हूं । ऋचीक के इस कथन को सुनते ही उनकी

१- प्रायश्चित्तं महद्ध्येतन्नरं वा पुरुषर्षभ ।
   आनयस्व पशुं शीघ्रं यावत् कर्म प्रवर्तते ।।
   - वा० रा०, बाल०, ६१ ।८

२- गवां प शत सहस्रेण विक्रीणासि सुतं यदि ।
   पशोरर्थे महाभाग कृतकृत्यो ऽस्मि भार्गव ।।
   - वा० रा०, बाल०, ६१ ।१३

३- एवमुक्तो महातेजा ऋचीकस्त्वब्रवीद् वच: ।
   नाहं ज्येष्ठं नरश्रेष्ठ विक्रीणीयां कथंचन ।।
   - वा० रा०, बाल०, ६१ ।१५

धर्मपत्नी भी बोल उठी कि कनिष्ठ पुत्र माँ को सबसे अधिक प्रिय होता है इसलिए मैं भी अपने कनिष्ठ पुत्र (शुनक) को नहीं दे सकती हूँ[1]। कारण स्पष्ट ही है कि प्राय: ज्येष्ठ पुत्र पिता के लिए प्रिय होते हैं और कनिष्ठ पुत्र माताओं को[2]। अतएव मैं अपने कनिष्ठ पुत्र की अवश्य रक्षा करूंगी। यह समस्त वृत्तान्त सुनकर उन सब के निकट मैं बैठा हुआ महर्षि ऋचीक का मध्यम पुत्र शुन:शेप अवधनरेश अम्बरीस से स्वयं बोल उठा कि राजन्। पितृ चरण ने ज्येष्ठ को और मातृ चरण ने कनिष्ठ पुत्र (शुनक) को बेचने के लिए अयोग्य बताया है अतएव ऐसी स्थिति में स्पष्ट है कि इन दोनों की दृष्टि में मध्यम पुत्र (शुन: शेप[3]) ही बेचने योग्य ठहरा फलत: आप अपने यज्ञ के लिए मुझे ही ले चलें। यह सुनकर प्रसन्नमना अम्बरीष ने करोड़ों स्वर्ण मुद्राओं के साथ एक लाख गौवों को ऋचीक को देकर शुन: शेप को उनसे खरीद लिया और पुन: उन्हें साथ लेकर पुष्करतीर्थ की ओर चल पड़े। ६२ वे सर्ग में यह बताया गया है कि जब अम्बरीष पुष्करतीर्थ में पहुंचे तो श्रान्त को दूर करने के लिए वहाँ विश्राम करने लगे। इसी बीच में शुन: शेप अपने मातुल विश्वामित्र के पास पहुंचकर उनसे समस्त वृत्तान्त बताया और पुन: उनसे आत्म-रक्षा की याचना के उद्देश्य से निवेदन किया कि मुनिपुंगव। अब तो न मेरे

१- ममापि दयितं विद्धि कनिष्ठं शुनकं प्रभो।
तस्मात् कनीयसं पुत्रं न दास्ये तव पार्थिव ।।
- वा० रा०, बाल०, ६१।१८

२- प्रायेण हि नरश्रेष्ठ ज्येष्ठा: पितृषु वल्लभा:।
मातृणां च कनीयांसस्तस्माद्रक्ष्ये कनीयसम् ।।
- वा० रा०, बाल०, ६१। १९

३- पिता ज्येष्ठमविक्रेयं माता चाह कनीयसम्।
विक्रेयं मध्यमं मन्ये राजपुत्र नयस्व माम् ।।
- वा० रा०, बाल०, ६१। २१
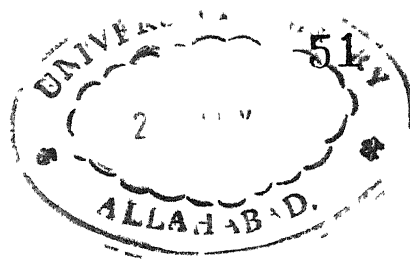
माता हैं न पिता फिर भाई बन्धु कहाँ से हो सकते हैं मैं सर्वथा असहाय हूं। अत: आप ही धर्म के द्वारा मेरी रक्षा करें।[1] आप सबके रक्षक तथा अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति कराने वाले हैं अतएव कुछ ऐसी कृपा करें जिससे अम्बरीष का यज्ञ भी पूर्ण हो जाय और मैं भी दीर्घायु होकर तपस्या करके स्वर्ग को प्राप्त कर सकूं।[2] धर्मात्मन्। आप मुझ अनाथ के नाथ हो जायं। मेरी रक्षा करें जैसे पिता अपने पुत्र की रक्षा करता है उसी प्रकार आप मुझे इस विपत्ति से बचाइये।[3] विश्वामित्र ने शुन: शेप को अभयदान देने का वचन दिया और एतदर्थ उन्होंने अपने मधुच्छन्द आदि पुत्रों से निवेदन किया कि यह भी तुम लोगों का भाई है तुम लोगों में से कोई एक अम्बरीष का यज्ञीय पशु यदि बन जाता तो इसकी रक्षा हो सकती है। परन्तु विश्वामित्र के किसी भी पुत्र ने उनके इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया और सर्वात्मना उनके इस मनोवृत्त की निन्दा भी कीकि अपने पुत्र का बलिदान देकर किसी अन्य के पुत्र की रक्षा करना किसी भी पिता का आदर्श कर्तव्य नहीं हो सकता।[4] यह सब कुछ सुनकर विश्वामित्र क्रुद्ध हो गये और उन्होंने अपने सभी पुत्रों को सहस्रों वर्षों तक के लिए चाण्डाल

१- नमेस्ति माता न पिता ज्ञातवो बान्धवा: कुत:।
त्रातुमर्हसि मां सौम्य धर्मेण मुनिपुंगव ।।
- वा० रा०, बाल०, ६२।४

२- त्राता त्वं हि नरश्रेष्ठ सर्वेषां त्वं हि भावन: ।।
राजा च कृतकार्य: स्यादहं दीर्घायुरव्यय: ।
स्वर्गलोकमुपाश्नीयां तपस्तप्त्वा ह्यनुत्तमम् ।।
- वा० रा०, बाल०, ६२।५-६

३- स मे नाथो ह्यनाथस्य भव भव्येन चेतसा।
पितेव पुत्रं धर्मात्मंस्त्रातुमर्हसि किल्बिषात् ।।
- वा० रा०, बाल०, ६२।७

४- नि:साध्वसमिदं प्रोक्तं धर्मादपि विगर्हितम्।
अतिक्रम्य तु मद्वाक्यं दारुणं रोमहर्षणम् ।।
श्वमांसभोजिन: सर्वे वसिष्ठा इव जातिषु।
पूर्णं वर्षसहस्रं तु पृथिव्यामनुवत्स्यथ ।।
- वा० रा०, बाल०, ६२। १६-१७

हो जाने का अमोघ शाप दे दिया।[1] इसके पश्चात विश्वामित्र ने शुन: शेप को आत्मरक्षा के सम्बन्ध में यह उपाय बताया कि जब अम्बरीष के यज्ञ ने तुम्हें कुश आदि पवित्र पाशों से बांधकर लाल फूलों की माला और रक्त चन्दन धारण करा दिया जाय, उस समय तुम विष्णु देवता सम्बन्धी यूप (यज्ञ-स्तम्भ) के पास जाकर इन्द्र और विष्णु की मधुर वाणी में स्तुति करना और इन दो गाथाओं का गान करना इससे तुम मनोवांछित सिद्धि प्राप्त करने में समर्थ हो जाओगे।[2] यह सब कुछ जानकर शुन: शेप यथाशीघ्र वहां से अम्बरीष के पास आया और उनसे अपना यज्ञ यथाशीघ्र सम्पादित करने के लिए निवेदन किया। अम्बरीष ने प्रसन्न मन से यज्ञ की तैयारी करके उसे शीघ्रतापूर्वक यज्ञशाला में ले गये और वहां सदस्य की अनुमति से शुन: शेप को कुश के पवित्र पाश से बांधकर पशु के लक्षण से सम्पन्न कर यज्ञ पशु को रक्तवस्त्र पहिनाकर यूप में बांध दिया।[3] बंधे हुए शुन: शेपने विश्वामित्र के बताये हुए के अनुसार इन्द्र और विष्णु (उपेन्द्र) दोनों देवताओं को यथावत स्तुति की जिसके फलस्वरूप इन्द्र ने प्रसन्न होकर शुन: शेप को न केवल दीर्घायु प्रदान की अपितु अम्बरीष का भी यज्ञ पूर्ण करवा दिया।[4] इस प्रकार रामायण में 'शुन: शेपोपाख्यान' उपलब्ध होता है।

१- कथमात्मसुतान् हित्वा त्रायसे न्यसुतं विभो।
अकार्यमिव पश्याम: श्वमांसमिव भोजने ।।
- वा० रा०, बाल०, ६२ ।१४

२- पवित्रपाशैराबद्धो रक्तमाल्यानुलेपन: ।
वैष्णवं यूपमासाद्य वाग्भिरग्निमुदाहर ।।
इमे च गाथे द्वे दिव्ये गायेथा मुनिपुत्रक ।
अम्बरीषस्य यज्ञे स्मिंस्तत: सिद्धिमवाप्स्यसि ।।
- वा० रा०, बाल ६२।१९-२०

३- सदस्यानुमते राजा पवित्रकृत लक्षणम् ।
पशुं रक्ताम्बरं कृत्वा यूपे तं समबन्धयत् ।।
- वा० रा०, बाल, ६२ ।२४

४- स बद्धो वाग्भिरग्र्याभिरभितुष्टाव वै सुरौ ।
इन्द्रमिन्द्रानुजं चैव यथावन्मुनिपुत्रक: ।।
- वा० रा०, बाल० ६२ ।२५

महाभारत के अनुशासनपर्व के दानधर्मपर्व के अन्तर्गत केवल तीन (६-८) श्लोकों में 'शुन: शेपोपाख्यान' का संकेत मिलता है । जिनमें यह बताया गया है कि महर्षि ऋचीक का पुत्र शुन: शेप हरिश्चन्द्र के एक यज्ञ में यज्ञपशु बनाकर लाया गया था किन्तु विश्वामित्र ने उस महायज्ञ से उसको मुक्ति दिला दी ।[1] हरिश्चन्द्र के उस यज्ञ में अपने तेज से देवताओं को सन्तुष्ट करके विश्वामित्र ने शुन: शेप को छुड़ाया था इसीलिए वह विश्वामित्र के पुत्र के समान हो गया ।[2] शुन: शेप देवताओं को देने के कारण ही 'देवरात' नाम से विश्वामित्र का ज्येष्ठ पुत्र बन गया । विश्वामित्र के अन्य ५० पुत्र ईर्ष्यावश उससे प्रणाम नहीं करते थे फलत: विश्वामित्र के शाप से वे सब के सब चाण्डाल हो गये ।

१- ऋचीकस्यात्मजश्चैव शुन: शेपो महातपा: ।
विमोक्षितो महासत्रात् पशुतामप्युपागत: ।।

- महा०, अनुशासनपर्वणि, दानधर्मपर्व, ३।६

२- हरिश्चन्द्रक्रतौ देवांस्तोषयित्वा त्मतेजसा ।
पुत्रतामनुसम्प्राप्तो विश्वामित्रस्य धीमत: ।।

- महा०, अनुशासन०, दानधर्म, ३।७

३- नाभिवादयते ज्येष्ठं देवरातं नराधिप ।
पुत्रा: प चाशदेवापि शप्ता: श्वपचतां गता: ।।

- महा०, अनुशासन०, दानधर्म०, ३।८

(छ) परशुरामोपाख्यान

वाल्मीकीय रामायण के बालकाण्ड के अन्तर्गत तीन (७४-७६) सर्गों में परशुरामोपाख्यान प्राप्त होता है। ७४ वें सर्ग के अनुसार विदेह नरपति जनक जब रामादि सहित दशरथ की विदाई कर रहे थे उसी समय तपोधन परशुराम का आगमन होता है उनके आगमन मात्र से सम्पूर्ण वातावरण स्तब्ध हो जाता है कारण कि वे क्षत्रियों के महान संहारक के रूप में त्रिलोकी में विख्यात हो चुके हैं। फलत: दशरथ आदि को यह आशंका हुई कहीं वीरवर परशुराम रामादि का भी वध करने के लिए उद्यत हो जांय। ७५ वें सर्ग में परशुराम राम को अपने वैष्णव धनुष पर बाण चढ़ाने के लिए कहते हैं और उसमें सफलता प्राप्त कर लेने पर उन्हें पुन: द्वन्द्वयुद्ध देने की भी अग्रिम सूचना देते हैं।[१] यह देखकर दशरथ भयविह्वल होकर परशुराम से निवेदन करते हैं कि ब्रह्मन् आप स्वाध्याय और व्रत से शोभा पाने वाले भृगुवंशी ब्राह्मणों के कुल में उत्पन्न हुए हैं और स्वयं भी महान तपस्वी और ब्रह्मज्ञानी हैं। क्षत्रियों पर रोष प्रकट करके अब शान्त हो चुके हैं इसलिए मेरे पुत्रों को आप अभयदान देने की कृपा करें क्योंकि आपने पहले ही इन्द्र के समीप प्रतिज्ञा करके शस्त्र का परित्याग कर दिया है।[२]

१- तदिदं घोरसंकाशं जामदग्न्यं महद्धनु: ।
पूरयस्व शरेणैव स्वबलं दर्शयस्व च ।।

तदहं ते बलं दृष्ट्वा धनुषोऽप्यस्य पूरणे ।
द्वन्द्वयुद्धं प्रदास्यामि वीर्यश्लाघ्यमहं तव ।।

- वा० रा०, बाल० ७५ ।३-४

२- क्षत्ररोषात् प्रशान्तस्त्वं ब्राह्मणश्च महातपा: ।
बालानां मम पुत्राणामभयं दातुमर्हसि ।।
भार्गवाणां कुले जात: स्वाध्यायव्रतशालिनाम् ।
सहस्राक्षे प्रतिज्ञाय शस्त्रं प्रक्षिप्तवानसि ।।

- वा० रा०, बाल०, ७५ । ६-७

इस प्रकार आप धर्मों में तत्पर होकर महर्षि कश्यप को पृथ्वी का दान करके वन में आकर महेन्द्र पर्वत पर आश्रम बनाकर रहने लगे हैं[1]। महामुने । शस्त्र त्याग की प्रतिज्ञा करके भी आप मेरा सर्वनाश करने के लिए कैसे आ गये । यदि यह कहें कि मेरा रोष तो राम पर ही है तो आप यह भी समझ लें कि एकमात्र राम के मारे जाने पर ही हम सब अपने जीवन का परित्याग कर देंगे । फलत: आप युद्ध करने का विचार छोड़ दें और हमारे पुत्रों की रक्षा करें । दशरथ के निवेदन को अनसुना करके परशुराम महाराघव राम को वैष्णव धनुष पर बाण चढ़ाने के लिए ललकारते रहे । इसी प्रसंग में उन्होंने यह भी बताया कि सम्पूर्ण त्रिलोकी में ये दोनों धनुष सर्वश्रेष्ठ और दिव्य माने जाते रहे । सारा संसार इन्हें[2] सम्मान की दृष्टि से देखता था । साक्षात विश्वकर्मा ने ही इन्हें बनाया था । इनमें से एक को देवताओं ने त्रिपुरासुर से युद्ध करने के लिए त्रिशूली शिव को दे दिया था जिससे त्रिपुर का विनाश हुआ था यह वही धनुष था जिसे राम[3] ने तोड़ डाला है । दूसरा दुर्धर्ष धनुष यह मेरे हाथ में है । इसे श्रेष्ठ देवताओं ने विष्णु को दिया था जो शत्रु नगरी पर विजय पाने वाला वैष्णव धनुष है[4]। यह भी

१- सत्वं धर्मपरो भूत्वा कश्यपाय वसुंधराम् ।
   दत्वा वनमुपागम्य महेन्द्रकृतकेतन: ।।
   - वा० रा०, बाल० ७५ ।८

२- इमे द्वे धनुषी श्रेष्ठे दिव्ये लोकाभिपूजिते ।
   दृढे बलवती मुख्ये सुकृते विश्वकर्मणा ।।
   - वा० रा०, बाल० ७५ । ११

३- अनुसृष्टं सुरैरेकं त्र्यम्बकाय युयुत्सवे ।
   त्रिपुरघ्नं नरश्रेष्ठ भग्नं काकुत्स्थ यत्वया ।।
   - वा० रा०, बाल०, ७५।१२

४- इदं द्वितीयं दुर्धर्षं विष्णोर्दत्तं सुरोत्तमै: ।
   तदिदं वैष्णवं राम धनु: परपुरंजयम् ।।
   - वा० रा०, बाल०, ७५ । १३

ज्ञातव्य है कि यह वैष्णव धनुष मूलत: भगवान विष्णु का ही है और जिसे राम ने तोड़ा है वह वस्तुत: शिव का है। एक बार जब देवताओं में विष्णु और शिव के बलाबल का विचार होने लगा तो इसका निर्णय करने के लिए उन दोनों अधिदेवों को समर में भी उतरना पड़ा। किन्तु विजयश्री विष्णु को ही मिली। विष्णु के पराक्रम से पराभूत शिव ने उस धनुष को उठाकर विदेह देश के नरपति राजर्षि देवरात को दे दिया।[1] विष्णु ने भी बाद में वैष्णव धनुष को भृगुवंशी ऋचीक मुनि को धरोहर के रूप में दे दिया।[2] ऋचीक ने ही अपने पुत्र जमदाग्नि को वैष्णव धनुष को दिया था जो कि मेरे पूज्य पितृचरण थे उन्हीं से मुझे यह वैष्णव धनुष प्राप्त हुआ। इसके पश्चात परशुराम ने यह भी बताया कि उनके वृद्ध पिता जमदग्नि को कार्तवीर्य अर्जुन के पुत्रों ने जब मार डाला तो उन्होंने इसका बदला लेने के लिए अनेक बार क्षत्रियों का संहार किया और सम्पूर्ण पृथवी को क्षत्रियों से छीनकर[3] एक महान यज्ञ के अनुष्ठान द्वारा सब कुछ महर्षि कश्यप को दान में दे डाला। और स्वयं महेन्द्रगिरि पर पुन: तप करने के लिए वे स्वयं चले गये। वहां महेन्द्र पर्वत पर जब उन्हें शिवधनुष के टूटने की ध्वनि सुनायी पड़ी तो वहां से चल पड़े और राम के पास आकर उनसे वैष्णव धनुष पर वाण चढ़ाने के लिए ललकारने लगे। ७६ वें सर्ग में महाराघवराम का वैष्णव

१- जृम्भितं तद् धनुर्दृष्ट्वा शैवं विष्णुपराक्रमै: ।
अधिकं मेनिरे विष्णुं देवा: सर्षिगणास्तथा ।।
- वा० रा०, बाल०, ७५ । १६

धनु रुद्रस्तु संक्रुद्धो विदेहेषु महायशा: ।
देवरातस्य राजर्षेददौ हस्ते ससायकम् ।।
- वा० रा०, बाल०, ७५ ।२०

२- इदं च वैष्णवं राम धनु: परपुरंजयम् ।
ऋचीके भार्गवे प्रादाद् विष्णु: सन्यासमुत्तमम्
- वा० रा०, बाल०, ७५ ।२१

३- पृथिवीं चाखिलां प्राप्य कश्यपाय महात्मने ।
यज्ञस्यान्ते ददं राम दक्षिणां पुण्यकर्मणे ।।
- वा० रा०, बाल०, ७५ । २५

का वैष्णव धनुष को चढ़ाकर अमोघ बाण के द्वारा परशुराम के तप: प्राप्त पुण्यलोकों का नाश करना तथा परशुराम का महेन्द्र पर्वत की तपस्या करने के लिए पुन: लौट जाना वर्णित है ।

महाभारत के वनपर्व के तीर्थयात्रा पर्व के अन्तर्गत तीन (११५-७) अध्यायों में 'परशुरामोपाख्यान' उपलब्ध होता है । ११५ वें अध्याय में परशुरामोपाख्यान के प्रसंग में ऋचीक मुनि का कान्यकुब्ज नरेश गाधि की रूपवती कन्या सत्यवती[१] के साथ विवाह और भृगु ऋषि की कृपा से जमदग्नि की उत्पत्ति का वर्णन है । जो परशुराम के जनक माने जाते हैं । ११६ वें अध्याय में सर्वप्रथम महान तपस्वी तपोधनी ब्रह्मर्षि जमदग्नि का प्रसेनजित् की कन्या राजकुमारी रेणुका के साथ पाणिग्रहण संस्कार का उल्लेख और उससे रुमण्वान, सुषेण,[२] वसु और विश्वावसु के साथ परशुराम के उत्पन्न होने का उल्लेख मिलता है । इसी अध्याय में यह भी बताया गया है कि एक बार जब आश्रम के निकट से होकर बहने वाली नदी में रेणुका स्नान करने के लिए गई तो वहां मार्तृकावत देश के नरपति चित्ररथ को अपनी पत्नी के साथ जलक्रीडा करते हुए उसे दिखायी दिये । उस स्थिति में रेणुका की भी इच्छा चित्ररथ के साथ रमण करने के लिए उद्दीप्त हो उठी । जब रेणुका वहां से स्नान करके लौटी तो ब्रह्मज्ञानी जमदग्नि ने उक्त समाचार को अपनी दिव्य दृष्टि से जानकर रेणुका से अत्यन्त खिन्न हो उठे और अपने सभी पुत्रों को एक एक करके अपनी मां रेणुका को मार डालने के लिए कहा किन्तु मात्र स्नेह के वशीभूत प्रथम चार पुत्रों में से कोई भी इस कार्य के लिए तैयार नहीं हुआ । जमदग्नि ने क्रुद्ध होकर रूमण्वान सुषेण, वसु और विश्वावसु चारों पुत्रों को जड़ हो जाने का शाप दे दिया । अन्त में जब जमदग्नि ने परशुराम से अपनी व्यभिचारिणी मां रेणुका का वध करने के लिए कहा तो उन्होंने यथाशीघ्र पितृ देव की आज्ञा के अनुसार अपनी मां को मार डाला । उनके

१- तदश्वतीर्थं विख्यातमुत्थिता यत्र ते हया ।
गङ्गायां कान्यकुब्जे वै ददौ सत्यवतीं तदा।। -महा०,वनपर्व०,तीर्थयात्रा,११५।२

२- ततो ज्येष्ठो जामदग्न्यो रुमण्वान् नाम नामत: ।
आजगाम सुषेणश्च वसुर्विश्वावसुस्तथा ।।
- महा०, वनपर्व, तीर्थयात्रा, ११६ ।१०

इस कार्य से सन्तुष्ट होकर जमदग्नि ने परशुराम को यथेच्छवर मांगने के लिए कहा। इस पर परशुराम ने निवेदन किया कि पूज्यपितृचरण यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरी मां पुनः जीवित हो उठे। उन्हें मेरे द्वारा मारे जाने की बात याद न रहे। वद्ध मानस पा उनका स्पर्श न कर सके, मेरे चारो भाई पूर्ववत् स्वस्थ एवं मेधावी हो जांय, युद्ध में मैं सदैव अजेय रहूं तथा दीर्घायु को प्राप्त करूं। जमदग्नि ने तथास्तु कहकर परशुराम को सभी अमोघ वरदान दे डाले। इसके पश्चात इस अध्याय में उन्हीं के वरदान से रेणुका का पुर्नजीवित होना, उनके सभी भाइयों का पूर्ववत् स्वस्थ होना, कार्तवीर्य अर्जुन के द्वारा जमदग्नि की होम-धेनु का अपहरण किया जाना, जमदग्नि का अपने पुत्र परशुराम से कार्तवीर्य अर्जुन के दुराचार को निवेदित करना, परशुराम के द्वारा कार्तवीर्य अर्जुन का वध और पुनः कार्तवीर्य अर्जुन के पुत्रों के द्वारा जमदग्नि के निर्मम वध का वर्णन किया गया है। ११७ वें अध्याय में पितृ भक्त महापराक्रमी परशुराम का अपने पिता के लिए विलाप करना, वैदिक विधियों के अनुसार उनका अन्त्येष्टि आदि संस्कार सम्पन्न करके सम्पूर्ण क्षत्रियों के वध की प्रतिज्ञा करना,[1] सम्पूर्ण पृथवी को इक्कीस बार क्षत्रियों से सूनी करके उनके रक्त से 'समन्तपञ्चक क्षेत्र' में पांच-पांच रुधिर कुण्ड भरना[2] और उन्हीं कुण्डों से भृगुवंशी पितरों का तर्पण करना, महर्षि ऋचीक का परशुराम

१- धर्मज्ञस्य कथं तात वर्तमानस्य सत्पथे।
मृत्युरेवंविधो युक्तः सर्वभूतेष्वनागसः ॥

- महा०, वनपर्व, तीर्थयात्रा, ११७।

२- त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियाः प्रभुः।
समन्तपञ्चके पञ्च चकार रुधिरह्रदान् ॥

- महा०, वनपर्व०, तीर्थयात्रा०, ११७। ६

को इस घोर कुकृत्य से रोकना, ऋचीक की आज्ञा को स्वीकार कर परशुराम का क्षत्रियों के विनाशन से विरत होकर जीती हुई सम्पूर्ण वसुन्धरा को एक विशाल यज्ञ के आयोजन के साथ महर्षि कश्यप को[1] दान देकर स्वयं तपस्या करने के लिए उनका महेन्द्रगिरि पर जाना वर्णित है ।

१- स प्रदाय महीं तस्मै कश्यपाय महात्मने ।
अस्मिन् महेन्द्रे - शैलेन्द्रे वसत्यमित विक्रमः ।।

- महा०, वनपर्व०, तीर्थयात्रा० ११७। १४

(ज) अगस्त्योपाख्यान -

वाल्मीकीयरामायण के अरण्यकाण्ड के अन्तर्गत तीन (११-१३) सर्गों में 'अगस्त्योपाख्यान' प्राप्त होता है। ११ वें सर्ग में मर्यादापुरुषोत्तम राम का अगस्त्य के भाई तथा अगस्त्य के आश्रम पर जाना और अगस्त्य के प्रभाव का रोचक वर्णन मिलता है। इसी सर्ग में यह बताया गया है कि महर्षि अगस्त्य ने महर्षियों के द्रोही वातापि का किस प्रकार विनाश किया था इस सम्बन्ध में यह स्पष्टत: उल्लेख मिलता है कि वातापि और इल्वल ब्रह्मर्षियों के महान द्रोही थे वे ब्राह्मणों का वध करने के लिए नाना प्रकार से प्रयत्नशील रहा करते थे। इल्वल और वातापि दोनों को कुछ ऐसी आसुरी सिद्धियां उपलब्ध थीं जिनके द्वारा वे विविध प्रकार का रूप धारण कर सकते थे। इल्वल ब्राह्मण का रूप धारण करके विशुद्ध संस्कृत बोलता हुआ जाता और श्राद्ध के लिए ब्राह्मणों को निमन्त्रण दे आया करता था। पुनश्च अपने भाई वातापि को मेष (मेढ़ या जीवशाक)[1] बनाकर उसका मांस रांधकर ब्राह्मणों को खिलाने का उपक्रम करता था। श्राद्ध में निमन्त्रित ब्राह्मण जब उस रांधे हुए मांस को खा लेते और हाथ धोने के लिए बाहर निकलते तब इल्वल 'वातापि'। 'बाहर निकल आओ'[2] ऐसा कहकर पुकारता था। जिसके अनुसार वातापि भाई की आवाज पहचानकर ब्राह्मणों का पेट फाड़ता

१- भ्रातरं संस्कृतं कृत्वा ततस्तं मेषरूपिणम् ।
तान् द्विजान् भोजयामास श्राद्धदृष्टेन कर्मणा ।।

- वा० रा०, अरण्यका०, ११। ५७

२- ततो भुक्तवतां तेषां विप्राणामिल्वलो ब्रवीत् ।
वातापे निष्क्रमस्वेति स्वरेण महता वदन् ।।

- वा० रा०, अरण्यका०, ११। ५८

हुआ अपने पूर्व रूप में बाहर आकर खड़ा हो जाता था।[१] यही इन दोनों का दैनिक कृत्य था इसके माध्यम से अनेकों तपस्वी ब्राह्मण मृत्यु के घाट उतरते रहते थे। इल्वल और वातापि के दुराचारों से पीड़ित ब्राह्मणों देवताओं आदि ने अगस्त्य से इस घटना के सम्बन्ध में निवेदन किया और उन्हें भी इल्वल का निमन्त्रण स्वीकार करने के लिए कहा। साथ ही यह भी निवेदन किया कि उसी के माध्यम से वातापि को खाकर ऐसा आत्मसात् कर लें कि वह पुन: बाहर न निकल सके और सदा सदा के लिए महाप्रयाण कर जाय। अगस्त्य ने ऐसा ही किया जिसके फलस्वरूप वातापि की मृत्यु हो गई।[२] पुनश्च वातापि के मृत्यु से अवगत होकर जब इल्वल ने अगस्त्य पर आक्रमण करना चाहा तो उन्होंने उसे भी एक ही हुंकार में दग्ध कर डाला।[३] इस प्रकार इस सर्ग में अगस्त्य के द्वारा इल्वल और वातापि के मारे जाने का वर्णन उपलब्ध होता है। इसी सन्दर्भ में यह भी बताया गया है कि महर्षि अगस्त्य ने जब इस प्रकार इल्वल वातापि आदि राक्षसों का विनाश करके दक्षिण दिशा को महर्षियों के तपस्या के योग्य बना दिया तो

१- ततो भ्रातुर्वच: श्रुत्वा वातापिर्मेषवन्नदन् ।
भित्वाभित्वा शरीराणि ब्राह्मणानां विनिष्पतत् ।।
- वा० रा०, अरण्यका०, ११।५६

२- कुतो निष्क्रमितुं शक्तिर्मया जीर्णस्य रक्षस: ।
भ्रातुस्तु मेषरूपस्य गतस्य यमसादनम् ।।
- वा० रा०, अरण्यका०, ११।६४

३- सो ऽभ्यद्रवद् द्विजेन्द्रं तं मुनिना दीप्ततेजसा ।
चक्षुषानलकल्पेन निर्दग्धो निधनं गत: ।।
- वा० रा०, अरण्यका०, ११।६६

वह दक्षिण दिशा 'दक्षिणा' अथवा 'अगस्त्य की दिशा' कहलायी[१]। अथ च इसी सर्ग में इस घटना का भी उल्लेख किया गया है कि इनका नाम अगस्त्य क्यों पड़ा ? इस सम्बन्ध में यह संकेत किया गया है कि एक बार विन्ध्य पर्वत सूर्य का मार्ग रोकने के लिए उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ चला जा रहा था जिसके कारण उसको पार करके आना जाना लोगों के लिए अत्यन्त दुष्कर होता जा रहा था। महर्षि अगस्त्य ने लोगों का दु:ख दूर करने के लिए विन्ध्यपर्वत की ओर यात्रा की और उसके निकट पहुंचकर उससे अपने मार्ग की याचना की तब उसने अपनी ऊंचाई कम करके महर्षि अगस्त्य को रास्ता देना स्वीकार कर लिया। महर्षि अगस्त्य ने पार करते हुए उससे यह भी कहा कि मैं जब तक लौटकर पुन: वापस नहीं आ जाता हूं तब तक तुम ऐसे ही बने रहना। विन्ध्यपर्वत ने वैसा ही किया। अगस्त्य पुन: उस मार्ग से कभी नहीं लौटे इसके फलस्वरूप वह ज्यों का त्यों आज तक उसी रूप में बना हुआ है बढ़ता नहीं[२]। अगस्त्य नाम की यह निरुक्ति भी इसी अर्थ में सार्थक प्रतीत होती है। अगं पर्वतं स्तम्भयति इति अगस्त्य: —अर्थात - जो अग (पर्वत) को स्तम्भित कर दे उसे 'अगस्त्य' कहते हैं।

१२ वें सर्ग में सीता और लक्ष्मण के सहित दाशरथि राम का महर्षि

१- नाम्ना चेयं भगवतो दक्षिणा दिक्प्रदक्षिणा।
प्रथिता त्रिषु लोकेषु दुर्धर्षा क्रूरकर्मभि: ।।

- वा० रा०, अरण्यका०, ११। ८४

२- (क) अगस्त्य इति विख्यातो लोके स्वेनैव कर्मणा।

- वा० रा०, अरण्यका०, ११। ७९

(ख) मार्गं निरोद्धुं सततं भास्करस्याचलोत्तम: ।
संदेशं पालयंस्तस्य विन्ध्यशैलो न वर्धते ।।

- वा० रा०, अरण्यका०, ११। ८५

अगस्त्य के आश्रम में प्रवेश, अगस्त्य के द्वारा उनका अभिनन्दन एवं आतिथ्य तथा अगस्त्य से उन्हें दिव्य अस्त्र-शस्त्रों की प्राप्ति का वर्णन किया गया है। महर्षि अगस्त्य महाराघव राम को दिव्य अस्त्रशस्त्रों को प्रदान करते हुए उनका स्पष्टत: परिचय भी दिया है कि नरशार्दूल। राघव। यह महान दिव्य धनुष विश्वकर्मा ने बनाया है। इसमें सुवर्ण और हीरे जड़े हैं। यह भगवान विष्णु का दिया हुआ है। तथा यह जो सूर्य के सदृश देदीप्यमान अमोघ उत्तम बाण है, ब्रह्मा का दिया हुआ है। इनके अतिरिक्त इन्द्र ने ये दो तरकस दिये हैं जो तीक्ष्ण तथा प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी बाणों से सदैव भरे रहते हैं। कभी रिक्त नहीं होते। साथ ही यह खड्ग है जिसकी मूठ और म्यान सोने की है।[1] राम पूर्वकाल में भगवान विष्णु ने इसी धनुष से युद्ध में बड़े-बड़े असुरों का संहार करके देवताओं की लक्ष्मी को उनके अधिकार से लौटाया था। मानद राम। आप यह धनुष, ये दोनों तरकस, ये बाण, और यह खड्ग राक्षसों पर विजय प्राप्त करने के लिए ग्रहण करें। ठीक वैसे ही जैसे वज्रधारी देवराज इन्द्र वज्र ग्रहण करते हैं।[2] १३ वें

१- (क) इदं दिव्यं महच्चापं हेमवज्रविभूषितम्।
वैष्णवं पुरुषव्याघ्र निर्मितं विश्वकर्मणा ।।
- वा० रा०, अरण्यका०, १२।३२

(ख) अमोघ: सूर्यसंकाशो ब्रह्मदत्त: शरोत्तम:।
दत्तौ मम महेन्द्रेण तूणी चाक्षय्यसायकौ ।।
- वा० रा०, अरण्यका०, १२। ३३

(ग) सम्पूर्णौ निशितैर्बाणैर्ज्वलद्भिरिव पावकै:।
महाराजतकोशो यमसिर्हेमविभूषित: ।।
- वा० रा०, अरण्यका०, १२। ३४

२- (क) अनेन धनुषा राम हत्वा संख्ये महासुरान्।
आजहार श्रियं दीप्तां पुरा विष्णुर्दिवौकसाम् ।।
- वा० रा०, अरण्यका०, १२।३५

(पाद टिप्पणी अगले पृष्ठ पर देखें)

सर्ग में महर्षि अगस्त्य का भगवन्त राम के प्रति अपनी प्रसन्नता प्रकट करके उनकी सहचरी भगवती सीता की प्रशंसा करना, राम को सीता के सुख सौविध्य की व्यवस्था के लिए उपदेश देना तथा राम के यह पूछने पर उन्हें पंचवटी में आश्रम बनाकर, रहने का परामर्श देना और राम का अगस्त्य के आश्रम से पंचवटी के लिए प्रस्थान करना इत्यादि क्रमश: वर्णित है ।

महाभारत के वनपर्व के तीर्थयात्रापर्व के अन्तर्गत चार (९६-९) अध्यायों में `अगस्त्योपाख्यान` प्राप्त होता है । ९६ वें अध्याय में इल्वल और वातापि के अत्याचारों का उल्लेख, वातापि का अगस्त्य के द्वारा विनाशन, महर्षि अगस्त्य का पितरों के उद्धार के लिए विवाह करने का विचार तथा विदर्भ नरेश का सन्तान प्राप्ति के लिए तपस्या करना, अगस्त्य का उन्हें एक कन्या जिसका नाम आगे चलकर `लोपामुद्रा` पड़ा का देना वर्णित है । ९७ वें अध्याय में महर्षि अगस्त्य का विदर्भ नरेश की दुहिता लोपामुद्रा से विवाह, गंगाद्वार (हरिद्वार) में अगस्त्य का सपत्नीक तपस्या करना एवं अपनी धर्म-सहचरी लोपामुद्रा की इच्छा की परितृप्ति के लिए धनसंग्रह के लिए प्रवृत्त होना आदि वर्णित है । इसी अध्याय में यह स्पष्टत: बताया गया है कि महर्षि अगस्त्य जब पुत्र की कामना से लोपामुद्रा के साथ यथेच्छ रमण करने की उत्कण्ठा व्यक्त की तो उसने यह निवेदन किया कि महर्षे ! इसमें सन्देह नहीं कि आपने मुझे सन्तान के लिए ही ग्रहण किया है परन्तु आपके प्रति मेरे हृदय में जो प्रीति है उसे भी आपको सफल करनी चाहिए।[1] ब्रह्मन् मैं अपने पिता के घर उनके महल

२- (ख) तदनुस्तौ च तूणी च शरं खड्गं च मानद ।
जयाय प्रतिगृह्णीष्व वज्रं वज्रधरो यथा ।।
- वा० रा०, अरण्यका०, १२ । ३६

१- असंशयं प्रजाहेतोर्भार्यां पतिरविन्दत ।
या तु त्वयि मम प्रीतिस्तामृषे कर्तुमर्हसि ।।
- महा०, वनपर्व०, तीर्थयात्रा० ९७ ।१६

में जैसी शैय्या पर सोया करती थी वैसा ही शैय्या पर आप मेरे साथ समागम करें।[1] मैं चाहती हूं कि आप सुन्दर हार एवं आभूषणों से विभूषित हों और मैं भी अलंकारों से अलंकृत हो इच्छानुसार आपके साथ समागम सुख का अनुभव करूं।[2] अन्यथा मैं यह जीर्ण-शीर्ण, काशाय-वस्त्र पहनकर आपके साथ समागम नहीं करूंगी। ब्रह्मर्षे। तपस्वियों का यह पवित्र आभूषण इसी प्रकार सम्भोग आदि के द्वारा अपवित्र नहीं होना चाहिए।[3] यही कारण है महर्षि अगस्त्य को लोपामुद्रा की आकांक्षा को पूर्ण करने के निमित्त धन संग्रह के लिए प्रवृत्त होना पड़ा।

९८ वें अध्याय में धनप्राप्त करने के लिए महर्षि अगस्त्य का श्रुतर्वा, ब्रध्नश्व और त्रसदस्यु आदि राजाओं के पास जाना किन्तु उनके आय-व्यय को देखते हुए उन सबसे धन न लेना आदि वर्णित है। इसी अध्याय में यह भी बताया गया है कि जब अगस्त्य को श्रुतर्वा, ब्रध्नश्व और त्रसदस्यु इन तीनों राजाओं से धन उपलब्ध न हो सका तब इन सबके साथ ही उन्होंने महाधनी इल्वल के पास धनप्राप्ति के लिए प्रस्थान किया।[4] ९९ वें अध्याय में महर्षि अगस्त्य का धन प्राप्ति के लिए

१- यथा पितुर्गृहे विप्र प्रासादे शयनं मम ।
तथाविधे त्वं शयने मामुपैतुमिहार्हसि ।।
- महा०, वनपर्व०, तीर्थयात्रा०, ९७ ।१७

२- इच्छामि त्वां स्रग्विणं च भूषणैश्च विभूषितम् ।
उपसर्तुं यथाकामं दिव्याभरणभूषिता ।।
- महा० वनपर्व०, तीर्थयात्रा०, ९७।१८

३- अन्यथा नोपतिष्ठेयं चीरकाषायवासिनी ।
नैवापवित्रो विप्रर्षे भूषणोऽयं कथंचन ।।
- महा०, वनपर्व, तीर्थयात्रा०, ९७ ।१९

४- वित्तकामानिह प्राप्तान् विद्धि नः पृथिवीपते ।
यथाशक्त्यविहिंस्यान्यान् संविभागं प्रयच्छ नः ।।
- महा०, वनपर्व०, तीर्थयात्रा०, ९८ ।१५

श्रुतर्वा, व्रध्नश्च, त्रसदस्यु आदि के साथ इल्वल के यहां जाना, इल्वल के द्वारा इन सबका राजकीय सम्मान और आतिथ्य, आतिथ्य में ही इल्वल का अपने भाई वातापि को रांधकर महर्षि अगस्त्य के लिए परोसना, अगस्त्य के द्वारा उसका भक्षण और इस रूप में वातापि की मृत्यु, अगस्त्य के द्वारा इल्वल से धन की याचना, अगस्त्य को इल्वल से प्रभूत धन की प्राप्ति, अगस्त्य का इल्वल के यहां से प्रस्थान, इल्वल द्वारा भाई की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिए पीछे से महर्षि अगस्त्य पर आक्रमण, अगस्त्य के हुंकार से इल्वल का विनाशन श्रुतर्वा आदि के साथ अगस्त्य का योगक्षेम पूर्वक अपने आश्रम पर आना, अगस्त्य के द्वारा अपनी धर्मसहचरी लोपामुद्रा की अर्थैषणा आदि समस्त आकांक्षाओं की पूर्ति, लोपामुद्रा के साथ अगस्त्य का पुत्रैषणा की कामना से समागम, लोपामुद्रा को दृढ़स्यु[१] (युध्मवाह) नामक पुत्र की प्राप्ति आदि का रोचक वर्णन किया गया है ।

१- (क) सप्तमे व्दे गते चापि प्राच्यवत् स महाकविः ।
ज्वलन्निव प्रभावेण दृढ़स्युनमि भारत ।।

- महा०, वनपर्व०, तीर्थयात्रा०, ६६। २५

(ख) स बाल एव तेजस्वी पितुस्तस्य निवेशने ।
इध्मानां भारमाजह्रे इध्मवाहस्ततो भवत् ।।

- महा०, वनपर्व०, तीर्थयात्रा०, ९८ । २६

(क) <u>पुरुरवा-उर्वशी सन्दर्भ -</u>

वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड के ५६ वें सर्ग में "पुरुरवा-उर्वशी सन्दर्भ" के सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है। इस सर्ग के अनुसार एक बार उर्वशी वरुणलोक में जब स्नान करने के लिए गयी थी तो उस अनिन्द सुन्दरी को जलक्रीड़ा करते हुए देखकर वरुण की उसके साथ रमण करने की इच्छा हुई उन्होंने उससे जब प्रणय निवेदन किया तो उसके यह कहने पर कि इस समय उसके शरीर पर मित्र देवता का अधिकार है फलत: वह उन्हें (वरुण) को चाहते हुए भी उनकी इच्छा पूर्ण करने में असमर्थ है। यह सुनकर वरुण ने अपना अमोघ वीर्य उसी के निकट स्थित एक कुम्भ में आधान करके कामरस के उपभोग का आनन्द प्राप्त किया। इसके पश्चात जब उर्वशी लौटकर मित्रदेवता के पास गई तो उन्होंने मानुष पाप से कलुषित उर्वशी को मृत्युलोक में जन्म लेने का शाप देते हुए उससे कहा कि दुराचारिणी! पहले मैंने तुझे समागक के लिए आमन्त्रित किया था फिर किस कारण तुमने मेरा त्याग किया और क्यों दूसरे पति का वरण कर लिया।[१] अपने इस पाप के कारण मेरे क्रोध से कलुषित हो तू कुछ काल तक मनुष्यलोक में जाकर निवास करेगी।[२] दुर्बुद्धि! बुध के पुत्र राजर्षि पुरुरवा जो काशदेश के राजा हैं उनके पास चली जा वे ही तेरे पति होंगे।[३] तब वह शाप

१- मयाभिमन्त्रिता पूर्वं कस्मात् त्वमवसर्जिता।
पतिमन्यं वृतवती किमर्थं दुष्टचारिणि ॥

- वा० रा०, उत्तरकाण्ड, ५६।२३

२- अनेन दुष्कृतेन त्वं मत्क्रोधकलुषीकृता।
मनुष्यलोकमास्थाय कंचित् कालं निवत्स्यसि ॥

- वा० रा०, उत्तरका०, ५६।२४

३- बुधस्य पुत्रो राजर्षि: काशिराज: पुरुरवा।
तमभ्यागच्छ दुर्बुद्धे स ते भर्ता भविष्यति ॥

- वा० रा०, उत्तरका०, ५६।२५

दोष से दूषित हो प्रतिष्ठान पर (प्रयाग फूसी) में बुध के औरस पुत्र पुरुरवा के पास गयी ।[1] पुरुरवा के उर्वशी के गर्भ से 'आयु' नामक महाबली पुत्र उत्पन्न हुआ जिसके पुत्र इन्द्र तुल्य तेजस्वी महाराज नहुष थे ।[2] जिन्होंने इन्द्र पर प्रतिष्ठित हो सौ वर्षों तक त्रिलोकी के राज्य का शासन किया था । इस प्रकार मित्र के शाप से अभिशप्त उर्वशी शापक्षयपर्यन्त उर्वशी पुरुरवा के साथ रहकर पुन: इन्द्र सभा में चली गई ।[3]

महाभारत के आदिपर्व के सम्भवपर्व के अन्तर्गत पुरुरवा-उर्वशी सन्दर्भ के सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है जिसके अनुसार पुरुरवा का जन्म इला के गर्भ से हुआ था । इला पुरुरवा की माता भी थी और पिता भी । कारण यद्यपि

१- तत: सा शापदोषेण पुरुरवसमभ्यगात् ।
प्रतिष्ठाने पुरूरवं बुधस्यात्मजमौरसम् ।।
- वा० रा०, उत्तरका०, ५६ ।२६

२- (क) तस्य जज्ञे तत: श्रीमानायु: पुत्रो महाबल: ।
नहुषो तस्य पुत्रस्तु बभूवेन्द्रसमद्युति: ।।
- वा० रा०, उत्तरका०, ५६ । २७

(ख) वज्रमुत्सृज्य वृत्राय श्रान्ते थ त्रिदिवेश्वरे ।
शतं वर्षसहस्राणि येनेन्द्रत्वं प्रशासितम् ।।
- वा० रा०, उत्तरका०, ५६ । २८

३- सा तेन शापेन जगाम भूमिं
तदोर्वशी चारुदती सुनेत्रा ।
बहूनि वर्षाण्यवसच्च सुभ्रू:
शापक्षयादिन्द्रसदो ययौ च ।।
- वा० रा०, उत्तरका०, ५६ ।२९

इला माता ही थी । और उनके जनक चन्द्रमा के पुत्र बुध थे परन्तु इला जब पुरुष रूप में परिणति हुई तो उसका नाम सुद्युम्न पड़ा । सुद्युम्न ने ही पुरुरवा को राज्य पद पर अभिषिक्त किया था फलत: इला को पुरुरवा का पिता होना भी प्रसिद्ध है ।[1] पुरुरवा समुद्र के तेरह द्वीपों का शासक था ।[2] वह मनुष्य होकर भी मानवेतर प्राणियों से घिरा रहता था वह अपने पराक्रम से उन्मत्त होकर ब्राह्मणों का धन छीनने के लिए तत्पर हो गये थे ।[3] उनके इस दुराचार से आक्रान्त महर्षियों ने उन्हें वेगशून्य हो जाने का शाप दे दिया । राजा पुरुरवा लोभ से अभिभूत हो बल के घमण्ड में आकर शापवश अपनी विवेक शक्ति खो बैठे थे वह गन्धर्व लोक में स्थित और विधिपूर्वक स्थापित त्रिविध अग्नियों को उर्वशी के साथ इस धरातल पर लाये थे ।[4] इला नन्दन पुरुरवा के उर्वशी से छ पुत्र उत्पन्न हुए जिनके नाम हैं आयु, धीमान, अमावसु, दृढ़ायु, वनायु और शतायु ।[5] उनमें से आयु के स्वरभानु कुमारी के गर्भ से उत्पन्न पांच

१- सा वै तस्यामवन्माता पिता चैवेति न: श्रुतम् ।

- महा०, आदिपर्व०, सम्भवपर्व०, ७५ ।१६

२- त्रयोदश समुद्रस्य द्वीपानश्नन् पुरुरवा: ।

- महा०, आदिपर्व०, सम्भवपर्व०, ७५ ।१६

३- अमानुषैर्वृत: सत्वैर्मानुष: सन् महायशा: ।
विप्रै: स विग्रहं चक्रे वीर्योन्मत्त: पुरुरवा ।।
जहार च स विप्राणां रत्नान्युत्क्रोशतामपि ।।

- महा०, आदिपर्व०, सम्भवपर्व०, ७५ ।२०

४- आनिनाय क्रियार्थे ग्नीन् यथावद् विहितांस्त्रिधा ।
षट् सुता जज्ञिरे चैलादायुर्धीमानमावसु: ।।

- महा०, आदिपर्व०, सम्भवपर्व०, ७५ ।२४

५- दृढायुश्च वनायुश्च शतायुश्चोर्वशीसुता ।
नहुषं वृद्धशर्माणं रजिं गयमनेनसम् ।।

- महा०, आदिपर्व०, सम्भवपर्व०, ७५ ।२५

पुत्र बताये गये हैं -- नहुष, वृद्धशर्मा, रजि, गय, तथा अनेक।[1] इस प्रकार महाभारत में पुरूरवा उर्वशी सन्दर्भ का संक्षिप्ततः उल्लेख मिलता है।

१- स्वर्भानिवींसुतानेतानायो: पुत्रान् प्रजज्ञाते।
आयुषो नहुष: पुत्रो धीमान् सत्यपराक्रम: ।।

- महा०, आदिपर्व०, सम्भवपर्व०, ७५ । २६

(ट) यया त्युपाख्यान -

वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड के दो (५८-९) सर्गों में 'ययात्युपाख्यान' उपलब्ध होता है । रामायण के ५८ वें सर्ग के अनुसार ययाति नहुष के पुत्र थे ।[1] इनके दो पत्नियां थीं एक कविनन्दन शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी[2] और दूसरी दैत्यराज वृषपर्वा की पुत्री रूपवती शर्मिष्ठा ।[3] ययाति को देवयानी से यदु नामक पुत्र प्राप्त हुआ था और शर्मिष्ठा से पुरु नामक पुत्र प्राप्त हुआ था ।[4] ययाति देवयानी एवं यदु की अपेक्षा शर्मिष्ठा एवं उनके पुत्र पुरु को अधिक मानते थे । ययाति के इस व्यवहार से परिखिन्न देवयानी एवं उसके पुत्र यदु दोनों प्राणपरित्याग करने के लिए उद्यत हो गये । खिन्न मना देवयानी ने एतदर्थ अपने पितृचरण शुक्राचार्य को बुलाया और उनसे समस्त वृत्तान्त निवेदित किया साथ ही यह भी निवेदन किया कि मुनिश्रेष्ठ ययाति के इस अपमान से अब मैं जीवित नहीं रह सकूंगी । मैं प्रज्वलित अग्नि या अगाध जल में प्रवेश कर

१- नहुषस्य सुतो राजा ययाति: पौरवर्धन: ।
तस्य भार्याद्वयं सौम्य रूपेणाप्रतिमं भुवि ।।
- वा० रा०, उत्तरका०, ५८ ।७

२- अन्या तूशनस: पत्नी ययाते: पुरुषर्षभ ।
न तु सा दयिता राज्ञो देवयानी सुमध्यमा ।।
- वा० रा०, उत्तरका०, ५८ ।९

३- एका तु तस्य राजर्षेर्नाहुषस्य पुरस्कृता ।
शर्मिष्ठा नाम दैतेयी दुहिता वृषपर्वण: ।।
- वा० रा०, उत्तरका०, ५८ ।८

४- तयो: पुत्रौ तु सम्भूतौ रूपवन्तौ समाहितौ ।
शर्मिष्ठा जनयत् पूरुं देवयानी यदुं तदा ।।
- वा० रा०, उत्तरका०, ५८ ।१०

जाऊंगा अथवा विष ही खा लूंगी ।[१] ब्रह्मन् । आपको पता नहीं है कि मैं यहां कितनी दु:खी एवं अपमानित हूं । ब्रह्मन् । वृक्ष के प्रति अवहेलना होने से उसके आश्रित पुष्पों एवं पत्तों को ही तोड़ा एवं नष्ट किया जाता है ।[२] इसी प्रकार राजर्षि ययाति का आपके प्रति अनादर भाव होने के कारण ही मेरा यहां अपमान हो रहा है । देवयानी के दु:ख से परिचित होकर शुक्राचार्य के क्रोध[३] की सीमा न रही और उन्होंने स्तदर्थ राजर्षि ययाति को यथाशीघ्र जराजीर्ण होकर सर्वथा शिथिल हो जाने का शाप दे दिया ।[४] ५६ वें सर्ग में शुक्राचार्य के शाप से अभिशप्त ययाचि का यथाशीघ्र जराजीर्ण होना, विषयोपभागों से अतिरिक्त यायाति का अपने पुत्र पुरु से उसके यौवन की याचना करना ।[५] पुरु

१- अहमग्निं विषं तीक्ष्णमपो वा मुनिसत्तम ।
मक्षयिष्ये प्रवेक्ष्ये वा न तु शक्यामि जीवितुम् ।।
- वा० रा०, उत्तरका०, ५८ ।१६

२- न मां त्वमवजानीषे दु:खितामवमानिताम् ।
वृक्षस्यावज्ञया ब्रह्मश्छिद्यन्ते वृक्षजीविन: ।।
- वा० रा०, उत्तरका०, ५८ ।२०

३- अवज्ञया च राजर्षि: परिभूय च भार्गव ।
मय्यवज्ञां प्रयुङ्क्ते हि न च मां बहु मन्यते ।।
- वा० रा०, उत्तरका०, ५८ ।२१

४- यस्मान्मामवजानीषे नाहुष त्वं दुरात्मवान् ।
वयसा जरया जीर्ण: शैथिल्यमुपपास्यसि ।।
- वा० रा०, उत्तरका० ५८ ।२३

५- (क) यदो त्वमसि धर्मज्ञो मदर्थं प्रतिगृह्यताम् ।
जरा परमिका पुत्र भोगै रस्ये महायश: ।।
- वा० रा०, उत्तरका०, ५६।२

(ख) न तावत् कृतकृत्यो स्मि विषयेषु नरर्षभ ।
अनुभूय तदा कामं तत: प्राप्स्याम्यहं जराम् ।।
- वा० रा०, उत्तरका०, ५६ ।३

के द्वारा ययाति को विषयोपभोग के लिए अपना यौवन दान करना और ययाति के वार्धक्य को स्वयं ग्रहण करना,[1] ययाति का सहस्रों वर्षों तक विषयोपभोग करके पुरु के यौवन को उसे पुन: लौटाना और अपने न्यासरूपी वार्धक्य को पुन: ग्रहण करना,[2] ययाति के द्वारा पुरु को राज्याभिषेक[3] तथा यदु की भर्त्सना एवं तदर्थ अभिशाप देना और अन्त में समस्त राज्यभार का दायित्व पुरु के हाथों में समर्पित करके ययाति का वाणप्रस्थ आश्रम में प्रवेश एवं तपस्या द्वारा शरीर का परित्याग कर उनकी स्वर्ग लोक की प्राप्ति का वर्णन है।[4]

१- नाहुषेणैवमुक्तस्तु पुरु: प्राञ्जलिरब्रवीत् ।
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि शासनेऽस्मि तवस्थित: ।।
पूरोर्वचनमाज्ञाय नाहुष: परया मुदा ।
प्रहर्षमतुलं लेभे जरां संक्रामयच्च ताम् ।।
- वा० रा०, उत्तरका०, ५६ ।७-८

२- अथ दीर्घस्य कालस्य राजा पुरुमथाब्रवीत् ।
आनयस्व जरां पुत्र न्यासं निर्यातयस्व मे ।।
- वा० रा०, उत्तरका०, ५६।१०

न्यासभूता मया पुत्र त्वयि संक्रामिता जरा ।
तस्मात् प्रतिगृहीष्यामि तां जरां मा व्यथां कृथा: ।।
- वा० रा०, उत्तरका०, ५६।११

३- प्रीतश्चास्मि महाबाहो शासनस्य प्रतिग्रहात् ।
त्वां चाहमभिषेक्ष्यामि - प्रीतियुक्तो नराधिपम् ।।
- वा० रा०, उत्तरका०, ५६।१२

४- तत: कालेन महता दिष्टान्तमुपजग्मिवान् ।
त्रिदिवं स गतो राजा ययातिर्नहुषात्मज: ।।
- वा० रा०, उत्तरका०, ५६।१८

महाभारत के आदिपर्व के सम्भवपर्व के अन्तर्गत उन्नीस (७५-६३) अध्यायों में (यायात्युपाख्यान) से सम्बद्ध इतिवृत्त प्राप्त होता है । ७५ वें अध्याय में दक्ष, वैवस्वत मनु तथा उनके पुत्रों की उत्पत्ति, पुरुरवा नहुष और ययाति के चरित्रों का अत्यन्त संक्षेप में वर्णन किया गया है इसी अध्याय में यह बताया गया है कि ययाति नहुष के यति आदि छ: पुत्रों में द्वितीय पुत्र थे।[1] जिनके दो पत्नियां थी एक शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी और दूसरी वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा । देवयानी के दो पुत्र थे यदु और तुर्वसु और शर्मिष्ठा के तीन पुत्र थे द्रुह्यु, अनु तथा पुरु ।[2] पुनश्च इसी अध्याय में यह भी संकेत किया गया है कि शुक्राचार्य के शाप से अभिशप्त ययाति जब रूप और सौन्दर्य का विनाश करने वाली वृद्धावस्था को प्राप्त हो गये ।[3] तो उन्होंने अपने अतृप्त विषयोपभोगों की इच्छा को पूर्ण करने के लिए अपने यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु, तथा अनु आदि पुत्रों से निवेदन किया कि उनकी कामोपभोग विषयक इच्छा अभी पूर्ण नहीं हुई है । अतएव उनमें से कोई उनकी वृद्धावस्था को लेकर उन्हें अपना यौवन दे दे जिससे वे अपना काम पुरुषार्थ सिद्ध कर सकें ।[4] यदु आदि तीनों पुत्रों ने ययाति के प्रस्ताव

१- नहुषो जनयामास षट् सुतान् प्रियवादिन: ।
यतिस्तु योगमास्थाय ब्रह्मभूतो भवन्मुनि: ।।
- महा०, आदिपर्व०, सम्भवपर्व, ७५।३१

२- देवयान्यामजायेतां यदुस्तुर्वसुरेव च ।
द्रुह्युश्चानुश्च पूरुश्च शर्मिष्ठायां च जज्ञिरे ।।
- महा०, आदिपर्व०, सम्भवपर्व०, ७५।३५

३- स शाश्वती: समा राजन् प्रजा धर्मेण पालयन् ।
जरामार्च्छन्महाघोरां नाहुषो रूपनाशिनीम् ।।
- महा०, आदिपर्व०, सम्भवपर्व०, ७५।३६

४- ययातिरब्रवीत् तं वै जरा मे प्रतिगृह्यताम् ।
यौवनेन त्वदीयेन चरेयं विषयानहम् ।।
- महा०, आदिपर्व०, सम्भवपर्व०, ७५।४०
यजतो दीर्घसत्रैर्मे शापच्चोशनसो मुने: ।
कामार्थ परिहीणो यं तप्येयं तेन पुत्रका: ।।
- महा०, आदिपर्व०, सम्भवपर्व०, ७५।४१

को अस्वीकार कर दिया किन्तु उनके अन्तिम पुत्र पितृभक्त पुरु ने उनकी आज्ञा को सहर्ष स्वीकार कर लिया।[1] फलस्वरूप ययाति ने अपना वार्धक्य पुरु के शरीर में संचालित करके उसके कामोपभोग में समर्थ यौवन को स्वयं ले लिया और सहस्रों वर्षों तक विषयोपभोग करने के पश्चात पुनः पुरु के यौवन को उसे लौटा कर अपने वार्धक्य को स्वयं ले लिया। इसी अध्याय में ययाति ने पुरु से विषयोपभोगों की अनित्यता के सम्बन्ध में पुरु आदि के समक्ष यह भी स्पष्टतः बताया कि विषयोपभोग की इच्छा उनके उपभोग करने से कभी शान्त नहीं हो सकती। घृत की आहुति डालने से उत्तरोत्तर अत्यधिक प्रज्वलित होने वाली अग्नि के समान वह और भी बढ़ती जाती है।[2] रत्नों से भरी हुई सारी पृथवी सारा सुवर्ण सारे पशु और त्रिभुवन की सारी सुन्दरियां यदि किसी एक ही पुरुष को मिल जांय तो वे सब के सब उसके लिए पर्याप्त नहीं होंगे वह और भी पाना चाहेगा। फलतः विवेकी पुरुष को चाहिए कि वह सब कुछ समझकर शान्ति का वरण करे और भोगेच्छा का क्रमशः समन करे।[3] इसी अध्याय में इस तथ्य का भी संक्षेप में उल्लेख किया गया है कि ययाति ने पुरु से अपना वार्धक्य लेकर उसे उसका

१- राजंश्चर्णमनवया तन्वा यौवनगोचरः।
अहं जरां समादाय राज्ये स्थास्यामि ते ज्ञया ।।
- महा०, आदिपर्व०, सम्भवपर्व०, ७५। ४४

२- न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ।।
- महा०,आदि०, सम्भवपर्व०, ७५।५०

३- पृथिवी रत्नसम्पूर्णा हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
नालमेकस्य तत् सर्वमिति मत्वा शमं व्रजेत् ।।
- महा०, आदिपर्व०, सम्भवपर्व०, ७५।५१

यौवन लौटा दिया इसके साथ ही साथ यदु आदि अन्य ज्येष्ठ पुत्रों के रहते हुए भी पितृभक्त पुरु को ही राजा बनाया और तत्पश्चात सपत्नीक भृगुतंग पर्वत पर तपस्या करने के लिए चले गये।[1] और वहां दीर्घकाल तक तपस्या करके स्वर्ग-लोक को प्राप्त किया।[2]

७६ वें से ६३ वें अध्यायों मे उक्त कथानक का ही सविस्तर निरूपण किया गया है। ७६ वें अध्याय में बृहस्पति के पुत्र कच का शिष्यभाव से शुक्राचार्य और उनकी दुहिता देवयानी की सेवा में संलग्न होना तथा अनेक कष्ट सहने के पश्चात् संजीवनी विद्या को प्राप्त करना, ७७ वें अध्याय में देवयानी का कच से पाणिग्रहण के लिए अनुरोध, कच की अस्वीकृति तथा दोनों का एक दूसरे को शाप देना, ७८ वें अध्याय में देवयानी और शर्मिष्ठा का कलह, शर्मिष्ठा द्वारा कुएं में गिराई गई - देवयानी को ययाति का निकालना और देवयानी का शुक्राचार्य से वार्तालाप ; ७९ वें अध्याय में शुक्राचार्य द्वारा देवयानी को समझाना और देवयानी का असन्तोष ; ८० वें अध्याय में शुक्राचार्य का वृषपर्वा को फटकारना तथा उसे छोड़कर जाने के लिए उद्यत होना और वृषपर्वा के आदेश से शर्मिष्ठा का देवयानी की दासी बनकर शुक्राचार्य तथा देवयानी को सन्तुष्ट करना, ८१ वें अध्याय में सखियों सहित देवयानी और शर्मिष्ठा का वन-विहार राजा ययाति का आगमन, देवयानी का उनके साथ वार्तालाप तथा विवाह ; ८२ वें अध्याय में ययाति से देवयानी को पुत्रों की प्राप्ति, ययाति और शर्मिष्ठा का

१- ततः स नृपशार्दूल पुरुं राज्ये मिषिच्य च।
ततः सुचरितं कृत्वा भृगुतुङ्गे महातपाः ॥

- महा०, आदि०, सम्भवपर्व०, ७५।५७

२- कालेन महता पश्चात कालधर्ममुपेयिवान्।
कारयित्वा त्वनशनं सदारः स्वर्गमाप्तवान् ॥

- महा०, आदि०, सम्भवपर्व०, ७५।५८

एकान्त मिलन और उनसे पुत्रप्राप्ति ; ८३ वें अध्याय में देवयानी और शर्मिष्ठा का संवाद, ययाति से शर्मिष्ठा के पुत्र होने का समाचार जानकर देवयानी का रूठकर पिता के पास जाना, शुक्राचार्य का ययाति को वृद्ध होने का शाप देना ; ८४ वें अध्याय में ययाति का अपने पुत्र यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु और अनु से अपनी युवावस्था देकर वृद्धावस्था लेने के लिए आग्रह एवं उनके अस्वीकार करने पर उन्हें शाप देना पुन: अपने पुत्र पुरु को जरावस्था देकर उसकी युवावस्था लेना और उसे वरदान देना ; ८५ वें अध्याय में ययाति का विषयोपभोग और व्र वैराग्य तथा पुरु का राज्याभिषेक करके वन में जाना ; ८६ वें अध्याय में वन में ययाति की तपस्या एवं उन्हें स्वर्गलोक की प्राप्ति ; ८७ वें अध्याय में इन्द्र के पूछने पर ययाति का अपने प्रिय पुत्र पुरु को दिये हुए उपदेश की चर्चा करना ; ८८ वें अध्याय में ययाति का पुण्य क्षीण होने पर स्वर्ग से पतन और अष्टक का उनसे प्रश्न करना ; ८९ वें अध्याय में ययाति और अष्टक का संवाद ; ९० वें अध्याय में अष्टक और ययाति का संवाद ; ९१ वें अध्याय में ययाति और अष्टक का आश्रम धर्म सम्बन्धी सवाद ; ९२ वें अध्याय में पुन: अष्टक-ययाति संवाद और ययाति द्वारा दूसरों के दिये हुए पुण्यदान को अस्वीकार करना ; ९३ वे अध्याय में ययाति का वसुमान और शिवि के प्रतिग्रह को अस्वीकार करना तथा अष्टक आदि चारों राजाओं के साथ उनका स्वर्ग में जाना सविस्तर वर्णित है । इस प्रकार रामायण की अपेक्षा महाभारत के अन्तर्गत ययात्युपाख्यान अधिक विस्तार के साथ प्राप्त होता है ।

-)-

मूलकथा के विकास में उपाख्यानों का योगदान

मूलकथा के अन्तर्गत उपाख्यानों की योजना कतिपय उद्देश्यों को लेकर की जाती है। जैसे - मूलकथानक के प्रवाह में स्थान-स्थान पर मोड़ लाना और उसके माध्यम से मूलकथा के कलेवर की अभिवृद्धि करना मूलकथा को जनसामान्य के लिए सुबोध बनाना पाठकों एवं श्रोताओं का मनोरंजन कराकर उन्हें आनन्द प्रदान करना। पाठकों एवं श्रोताओं को बहुश्रुत बनाना मूलकथा के विभिन्न बिन्दुओं को एक दूसरे से समुचित रूप से अन्वित करना इत्यादि। रामायण और महाभारत में भी विविध उपाख्यानों की योजना भी प्राय: इन्हीं कतिपय उद्देश्यं को दृष्टि में रखकर की गई है। परन्तु ध्यातव्य है कि अनुसन्धाता का विवेच्य विषय है -- रामायण और महाभारत में समान रूप से उपलब्ध उपाख्यान। अतएव यहां उन्हीं उपाख्यानों के सन्दर्भ में विशेष रूप से चर्चा की जायेगी जो रामायण एवं महाभारत दोनों महाप्रबन्धों में न्यूनाधिक रूप में समान रूप से प्राप्त होते हैं। अब यहां समान रूप से उपलब्ध उपाख्यानों की क्रमश: रामायण की मूलकथा (राम कथा) और महाभारत की मूलकथा (कृष्णकथा) के विकास आदि में योगदान की चर्चा की जायेगी।

आदि कवि वाल्मीकि प्रणीत `रामायण` की मूलकथा चूंकि `रामकथा` ही है अतएव यहां `रामोपाख्यान` की पृथक् रूप से चर्चा करना आवश्यक नहीं प्रतीत होता। वस्तुत: रामोपाख्यान का विस्तार ही रामकथा है जो कि वाल्मीकीय रामायण के आदिकाण्ड से लेकर उत्तरकाण्ड पर्यन्त विस्तारित है। रही बात ऋष्यशृङ्गोपाख्यान आदि की तो उस विषय में यहां यथाशक्य प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जा रहा है।

`रामायण में ऋष्यशृङ्गोपाख्यान` का पल्लवन सुमन्त्र और अयोध्या नरेश दशरथ के माध्यम से होता है इस उपाख्यान के नायक ऋष्यशृङ्ग हैं। रामायण में `ऋष्यशृङ्गोपाख्यान` के पूर्व रामकथा का मुख्य विन्दु है दशरथ का पुत्र-रत्न प्राप्ति के लिए अश्वमेध यज्ञ करने का प्रस्ताव और मन्त्रियों तथा ब्राह्मणों द्वारा उसका अनुमोदन। पुनश्च - `ऋष्यशृङ्गोपाख्यान` के पश्चात् रामकथा का

मुख्य बिन्दु है दशरथ का रानियों सहित अयोध्या में आना, राम आदि के जन्म-संस्कार ; शील सद्भाव एवं सद्गुण आदि का वर्णन । रामकथा के इन्हीं दोनों पूर्वापर बिन्दुओं को अन्वित करने के लिए `ऋष्यश्रृङ्गोपाख्यान` की रोचक योजना की गई है और इसी दृष्टि से राम-कथा के विकास में इस उपाख्यान का योगदान भी स्पष्ट है ।

रामायण में `गंगावतरण सन्दर्भ` का पल्लवन विश्वामित्र और राम के पारस्परिक वार्तालाप से हुआ है । रामायण में इस उपाख्यान के पूर्व रामकथा का मुख्य बिन्दु है शोण भद्र को पार करके विश्वामित्र आदि का भगवती गंगा के तट पर पहुंचना और वहां रात्रि निवास करना । पुनश्च इस उपाख्यान के पश्चात रामकथा का बिन्दु है गङ्गा को पार करके विश्वामित्र आदि का विशाल-नगरी में पहुंचना और वहां के तात्कालिक नरपति सुमति का आतिथ्य स्वीकार करना । परन्तु गंगा के तट पर पहुंचे हुए विश्वामित्र आदि का एक रात्रि का समय किस प्रकार व्यतीत हुआ और गंगा को उन सबने कैसे पार किया । इन रोचक प्रसंगों को लेकर तथा उक्त दोनों रामकथा के बिन्दुओं को जोड़ने के लिए रामायण में `गङ्गावतरण` उपाख्यान की योजना की गई है । इस उपाख्यान का अपना एक अवान्तर उद्देश्य भी है वह यह कि इसके माध्यम से विश्वामित्र ने एक ओर मर्यादापुरुषोत्तम राम को उन्हीं के पूर्वज सगरादि की तप: शक्ति से परिचित कराया और दूसरी ओर गंगा का धार्मिक महत्व बताकर न केवल धर्मधुरीण राम के धार्मिक भावनाओं के उत्कर्ष के लिए पोषक तत्व प्रदान किया प्रत्युत उन्हीं के माध्यम से लोक को भी गंगा के प्रति वैसा ही आस्थावान होने का परामर्श दिया है ।

वाल्मीकि रामायण में `वशिष्ठ-विश्वामित्र-सन्दर्भ तथा शुन:शेपोपाख्यान` का पल्लवन शतानन्द और राम के पारस्परिक वार्तालाप से हुआ है इनके पूर्व रामकथा का मुख्य बिन्दु है मिथिला नरेश विदेह के यहां रामादि के साथ पहुंचे हुए विश्वामित्र का जनक को राम और लक्ष्मण से परिचित कराना तथा जनक के पुरोहित शतानन्द के पूछने पर उन्हें राम के द्वारा अहल्या के उद्धार का समाचार बताना । और एतदर्थ शतानन्द के द्वारा राम का अभिनन्दन । इनके

पश्चात रामकथा का मुख्य विन्दु है जनक का विश्वामित्र राम और लक्ष्मण का सत्कार करके उन्हें अपने यहां रखे हुए शिव धनुष का परिचय देना एवं धनुष चढ़ा देने पर महाराघव राम के साथ भगवती सीता के विवाह का निश्चय प्रकट करना। रामकथा के इन्हीं दोनों विन्दुओं को जोड़ने के उद्देश्य से बीच में शतानन्द और राम के पारस्परिक वार्तालाप के माध्यम विश्वामित्र के पूर्वचरित के प्रसङ्‌ग को उठाकर वैशिष्ठ विश्वामित्र-सन्दर्भ 'शुन: शेपोपाख्यान' की चारु योजना की गई है तथा च इसी रूप में रामकथा के विकास में इन दोनों उपाख्यानों का योगदान नितराम स्पष्ट है ।

वाल्मीकि रामायण में 'परशुरामोपाख्यान' की योजना वालकाण्ड में की गई है । इस उपाख्यान के नायक जमदग्नि नन्दन ऋषिप्रवर वीरवर परशुराम हैं । इस उपाख्यान के पूर्व रामकथा का मुख्य विन्दु है मिथिलाधिप जनक से विदा लेकर रामादि के साथ अवधनरेश दशरथ का अयोध्या के लिए प्रस्थान और इसके पश्चात राम-कथा का मुख्य विन्दु है दशरथ का रामादि पुत्रों तथा सीता आदि वधुओं के साथ अयोध्या में प्रवेश । रामकथा के इन्हीं दोनों विन्दुओं को जोड़ने के उद्देश्य से आदि कवि की प्रतिभा ने 'परशुरामोपाख्यान' की संयोजना की है । इसके अतिरिक्त इस उपाख्यान की संयोजना का एक उद्देश्य यह भी हो सकता है कि इसी के माध्यम से आदि कवि वाल्मीकि ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम भगवान विष्णु के साक्षात् अवतार हैं इस तथ्य को भी पूर्णत: स्पष्ट करना चाहा हो क्योंकि जब परशुराम राम से बारम्बार वैष्णव धनुष को चढ़ाकर उस पर शर सन्धान करने के लिए आग्रह करते हैं तो वहां परशुराम का राम के भागवत् स्वरूप को पहचानना ही तो उद्देश्य झलकता है पुनश्च जब महाराघव राम वैसा कर देते हैं तथा परशुराम की सर्वत्र शीघ्रातिशीघ्रगामिनी शक्ति और उनके यश: प्राप्त लोकों का विनाश् कर देते हैं तो परशुराम भी स्पष्टत: मुक्त कंठ से उन्हें विष्णु का अवतार स्वीकार कर उनके श्रीचरणों में जो आत्मनिवेदन करते हैं उससे तो यह सुतराम स्पष्ट हो जाता है कि आदिकवि की पैनी प्रतिभा ने इस उपाख्यान की संयोजना मर्यादा पुरुषोत्तम राम के भागवत स्वरूप को चरितार्थ करने के उद्देश्य से ही की है ।

वाल्मीकि रामायण में `अगस्त्योपाख्यान` की योजना अरण्यकाण्ड में की गई है । इस उपाख्यान का पल्लवन राम और लक्ष्मण के वार्तालाप के माध्यम से हुआ है । इस उपाख्यान के नायक ब्रह्मर्षि अगस्त्य हैं । इस उपाख्यान के पूर्व रामकथा का मुख्य विन्दु है भगवती सीता के अनुरोध से मर्यादापुरुषोत्तम राम का ऋषियों की रक्षा के लिए राक्षसों के बध की प्रतिज्ञा करना तथा तदनन्तर एतदर्थ विभिन्न ऋषियों के आश्रम में जा जाकर उनके सुख दु:ख से परिचित होने के उद्देश्य से `मण्डकर्णि मुनि सुतीक्ष्ण आदि के आश्रम में जाना । इस उपाख्यान के पश्चात रामकथा का मुख्य विन्दु है पंचवटी में पहुंचकर खरदूषण आदि महान राक्षसों का संहार करना । राम कथा के इन्हीं दोनों विन्दुओं को जोड़ने के उद्देश्य से इस उपाख्यान की योजना की गई होगी ऐसा प्रतीत होता है । पुनश्च इस उपाख्यान की योजना का एक उद्देश्य यह भी हो सकता है कि सम्भवत: लोकरक्षा का व्रत लेने वाले मर्यादापुरुषोत्तम राम को लोकरक्षा के व्रत में आद्यन्त पूर्णत: सफलता प्राप्त कराने के लिए महर्षि अगस्त्य से दिव्यास्त्र तथा उनका अमोघ आशीर्वचन दिलाना चाहा हो । इसी रूप में रामकथा के विकास में इस उपाख्यान का योगदान भी स्पष्ट है ।

वाल्मीकि रामायण में `पुरुरवा-उर्वशी सन्दर्भ` और `ययात्युपाख्यान` की योजना उत्तरकाण्ड में की गई है । इनके पूर्व रामकथा का मुख्य घटक है । अयोध्या के राजभवन में बैठे हुए प्राणवल्लभा वैदेही के निर्वासन से परितप्त मर्यादा पुरुषोत्तम राम से लक्ष्मण का मिलना और उन्हें सान्त्वना देना तथा च राम का कार्यार्थी पुरुषों की उपेक्षा से राजा नृग को मिलने वाली शाप की कथा सुनाकर लक्ष्मण को राज्य के देखभाल के लिए आदेश देना और इसी प्रसंग में अनेक कथाओं की चर्चा करना । इनके पश्चात रामकथा का मुख्य विन्दु है राम के दरबार में च्यवन आदि ऋषियों का आगमन तथा उनसे लवणासुर आदि के अत्याचारों को निवेदित करना । रामकथा के इन्हीं दोनों घटकों को योजित करने की दृष्टि से इन उपाख्यानों की योजना की गई होगी ऐसा प्रतीत होता है । पुनश्च इन उपाख्यानों की योजना के माध्यम से सम्भव है कि रामायण के रचनाकार ने राज्य की सर्वोच्च सत्ता पर आरूढ़ नरपति को बहुश्रुत बनाकर शास्त्रानुगामी

बनाना चाहा हो ।

महाभारत में `रामोपाख्यान` की योजना आदिपर्व के अन्तर्गत हुई है । इस उपाख्यान के पूर्व महाभारत की मूलकथा का मुख्य विन्दु है भीम द्वारा बन्दी होकर जयद्रथ का युधिष्ठिर के सामने उपस्थित होना । उनकी आज्ञा से मुक्त होकर उसका गङ्गा (हरिद्वार) में तप करके भगवान शिव से वरदान पाना तथा शिव द्वारा अर्जुन के सहायक लीला पुरुषोत्तम - श्रीकृष्ण की महिमा का वर्णन करने के साथ-साथ अपनी दुरवस्था से दु:खी हुए युधिष्ठिर का मारकण्डेय मुनि से प्रश्न करना । इस उपाख्यान के पश्चात महाभारत की मूलकथा (कृष्ण-कथा) का मुख्य विन्दु है मारकण्डेय का युधिष्ठिर को आश्वासन देना । महाभारत के इन्हीं दोनों विन्दुओं को योजित करने के लिए `रामोपाख्यान` की मार्मिक योजना की गई है । जिसके नायक मर्यादा पुरुषोत्तम दाशरथिराम है । इस उपाख्यान का पल्लवन मारकण्डेय और युधिष्ठिर के माध्यम से हुआ है ।

महाभारत में `अगस्त्योपाख्यान`, `गङ्गावतरणसन्दर्भ` और `ऋष्यशृङ्गोपाख्यान` की योजना वनपर्व के `तीर्थयात्रापर्व के अन्तर्गत हुई है । इनके पूर्व महाभारत की मूलकथा का मुख्य घटक है पाण्डवों का नैमिषारण्य आदि तीर्थों में जाकर प्रयाग तथा गयातीर्थ में जाना और राजा गय के महान यज्ञों की महिमा सुनना । इनके पश्चात महाभारत की मूलकथा का मुख्य बिन्दु है युधिष्ठिर का कौशिकी गङ्गासागर और वैतरणी नदी होते हुए महेन्द्रपर्वत पर जाना । इन दोनों विन्दुओं के मध्य अनेक अवान्तर उपाख्यानों की योजना हुई है जिनमें उपर्युक्त तीन उपाख्यान भी मिलते हैं । यह भी ध्यातव्य है कि इन तीनों उपाख्यानों का पल्लवन मूलत: लोमश और युधिष्ठिर के पारस्परिक वार्तालाप से ही हुआ है ।

महाभारत में `परशुरामोपाख्यान` की योजना आदिपर्व के `वनपर्व` के तीर्थयात्रापर्व के अन्तर्गत हुई है । इस उपाख्यान का पल्लवन परशुराम के परमप्रिय शिष्य अकृतव्रण और धर्मराज युधिष्ठिर के पारस्परिक वार्तालाप के माध्यम से हुआ

है । इस उपाख्यान के पूर्व महाभारत की मूलकथा का मुख्य घटक है युधिष्ठिर का विभिन्न तीर्थों में जाना और पुन: इसके पश्चात भी महाभारत की मूलकथा का विन्दु है युधिष्ठिर का विभिन्न तीर्थों में होते हुए प्रभासक्षेत्र में पहुंचकर तपस्या में प्रवृत्त होना एवं यादवों का पाण्डवों से मिलना । महाभारत की मूलकथा के इन्हीं दोनों विन्दुओं के मध्य `परशुरामोपाख्यान` की योजना की गई है और उसके माध्यम से मूलकथा के कलेवर की वृद्धि हुई है ।

महाभारत में `वशिष्ठ विश्वामित्र-सन्दर्भ` की योजना आदिपर्व के `चैत्ररथपर्व` के अन्तर्गत हुई है । इसका पल्लवन गन्धर्व और पाण्डुनन्दन अर्जुन के पारस्परिक वार्तालाप से हुआ है । इसके पूर्व महाभारत की मूलकथा का मुख्य विन्दु है पाण्डवों की पाञ्चाल-यात्रा और अर्जुन के द्वारा चित्ररथ गन्धर्व की पराजय एवं उन दोनों की मित्रता । इस सन्दर्भ के पश्चात महाभारत की मूलकथा का मुख्यविन्दु है शक्ति पुत्र पराशर का जन्म और पिता के मृत्यु का समाचार सुनकर क्रुद्ध हुए पराशर को शान्त करने के लिए वशिष्ठ का उन्हें `और्वोपाख्यान` सुनाना । इन दोनों विन्दुओं के मध्य अनेक उपाख्यानों की योजना हुई है । जिनमें से एक `वशिष्ठ-विश्वामित्र-सन्दर्भ` भी है । इसके माध्यम से महाभारत के मूलकथा के कलेवर की वृद्धि तो हुई ही है साथ ही साथ उसके द्वारा क्षात्र बल की अपेक्षा `ब्राह्मबल` की सर्वातिशायी महिमा का प्रतिपादन भी किया गया है ।

महाभारत में `शुन: शेपोपाख्यान` की चर्चा अनुशासनपर्व के `दानधर्मपर्व` के तृतीय अध्याय में हुई है । इस उपाख्यान का उल्लेख युधिष्ठिर और भीष्म के पारस्परिक वार्तालाप के प्रसङ्ग में हुआ है । विश्वामित्र को ब्राह्मणत्व की प्राप्ति कैसे हुई इस विषय में युधिष्ठिर ने देवव्रत पितामह भीष्म से प्रश्न करते समय जिन अनेक प्रसङ्गों की चर्चा की उन्हीं में से एक `शुन: शेपोपाख्यान` का भी प्रसङ्ग आया है । इस प्रकार महाभारतकार के द्वारा इस उपाख्यान की चर्चा करने का उद्देश्य पाठक को बहुश्रुत बनाकर महाभारत की मूलकथा की अभिवृद्धि करना ही प्रतीत होता है ।

महाभारत में `पुरूरवा-उर्वशी सन्दर्भ` और `ययात्युपाख्यान` की

चर्चा मनुवंश वर्णन के सन्दर्भ में उसके आदिपर्व के 'सम्भवपर्व' के अन्तर्गत हुई है। इन दोनों उपाख्यानों का पल्लवन वैशम्पायन और जनमेजय के पारस्परिक वार्तालाप के माध्यम से हुआ है। इनमें पुरुरवा-उर्वशी सन्दर्भ के नायक पुरुरवा और 'ययात्युपाख्यान' के नायक ययाति हैं। उनके पूर्व महाभारत की मूलकथा का मुख्य विन्दु सत्यवती व्यास आदि के जन्म का वर्णन है और इनके पश्चात महाभारत की मूलकथा का मुख्य विन्दु दक्ष प्रजापति से लेकर पुरुवंश, भरतवंश, पाण्डुवंश की परम्परा का वर्णन करना है। इन दोनों विन्दुओं के मध्य उपाख्यानों की योजना की गई है जिनमें उपर्युक्त दोनों उपाख्यान भी आते हैं। इन उपाख्यानों के माध्यम से महाभारत की मूलकथा के कलेवर की पर्याप्त वृद्धि हुई है।

उपर्युक्त समग्र विवेचना से अब यह तथ्य मूलत: स्पष्ट हो जाता है कि रामायण और महाभारत दोनों <u>महाप्रबन्धों में</u> समान रूप से प्राप्त उपाख्यानों के माध्यम से उनके मूलकथानक के विकास में कितना योगदान हुआ है।

-o-

तृतीय अध्याय

उपाख्यानों में कथावस्तु - विवेचन

- कथावस्तु का शास्त्रीय विश्लेषण - आधिकारिक, प्रासंगिक, पताका एवं प्रकरी कथा में । उपाख्यानों का पताकात्व-प्रकरीत्व ।

- उपाख्यानों के कथानकों की तुलना । घटनाक्रम-विवेचन, साम्य, वैषम्य, नवीनता (मौलिकता) ।

-o-

शास्त्रीय दृष्टिकोण से किसी काव्य में उपनिबद्ध कथावस्तु मुख्यत: दो प्रकार की बतायी गयी है -- आधिकारिक और प्रासङ्गिग ।[1]

किसी काव्य की प्रधानभूत कथावस्तु को 'आधिकारिक कथावस्तु' कहते हैं । दूसरे शब्दों में फल का स्वामी होना अधिकार कहलाता है और उस फल का स्वामी अधिकारी । उस अधिकारी (नायक) के द्वारा सम्पन्न किया हुआ या उससे सम्बद्ध काव्य में आद्यन्त अभिव्याप्त इतिवृत्त 'आधिकारिक' कहलाता है ।[3]

उदाहरणार्थ वाल्मीकि रामायण में आद्यन्त परिव्याप्त रामकथा आधिकारिक कथावस्तु है क्योंकि पूरे ग्रन्थ का कथानक महाराघवराम एवं भगवती सीता को ही केन्द्र विन्दु मानकर अग्रसर होती है । अन्त में फल के रूप में रावण का वध तथा राम की विजय एवं राम-सीता का पुनर्मिलन होता है । यहां फल का स्वामित्व मर्यादापुरुषोत्तम राम को ही प्राप्त होता है जिसके फलस्वरूप वे ही अधिकारी कहलायेंगे ।

शास्त्रीय दृष्टि से किसी काव्य में उपनिबद्ध मुख्यकथा की अङ्गभूत कथावस्तु को 'प्रासङ्गिक कथावस्तु' कहते हैं ।[4] दूसरे शब्दों में जिस इतिवृत्त की

१- वस्तु च द्विधा ।

- धनञ्जय, दशरूपक, १।११

२- तत्राधिकारिकं मुख्यं ।

- धनञ्जय, दशरूपक १। ११

३- अधिकार: फलस्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभु: ।
तन्निर्वृत्तमभिव्यापि वृत्तं स्यादाधिकारिकम् ।।

- धनञ्जय, दशरूपक, १। १२

४- अङ्ग प्रासङ्गिकं विदु: ।

- धनञ्जय, दशरूपक, १।११

योजना आधिकारिक कथा के किसी प्रयोजन विशेष की सिद्धि के लिए की जाती है किन्तु प्रसङ्गत: उसके अपने प्रयोजन की भी साथ साथ सिद्धि हो जाती है, उसे 'प्रासङ्गिक कथावस्तु' कहते हैं[1]। कारण उसकी सिद्धि प्रसङ्गत: ही होती है[2]।

उदाहरणार्थ 'रामायण' में राम की कथा तो 'आधिकारिक कथावस्तु' है जिसका फल रावणवध तथा सीता की प्राप्ति आदि है। सुग्रीव की कथा उक्त प्रधान फल की प्राप्ति में सहायक है किन्तु उस कथा का फल वालि वध, सुग्रीव को राज्य-लाभ, आदि भी प्रसंगत: सिद्ध हो जाता है फलत: रामायण में सुग्रीव की कथा प्रासङ्गिक कथा कहलायेगी।

'प्रासङ्गिक कथावस्तु' के भी दो भेद बताये गये हैं -- पताका और प्रकरी।

जो प्रासङ्गिक इतिवृत्त मुख्य इतिवृत्त[3] का बहुत दूर तक अनुवर्तन करता है वह प्रासङ्गिक इतिवृत्त 'पताका' कहलाता है। जिस प्रकार पताका अथवा ध्वजा प्रधान नायक का असाधारण चिह्न होती है और उसका उपकार करती रहती है उसी प्रकार यह इतिवृत्त भी नायक एवं तत्सम्बन्धिनी आधिकारिक कथा का उपकार

१- प्रासङ्गिकं परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसङ्गत:।

- धनंजय, दशरूपक, १।१३

२- यस्येतिवृत्तस्य परप्रयोजनस्य सतस्तत्प्रसङ्गात्स्वप्रयोजनसिद्धिस्तत्प्रासङ्गिकमिति वृत्तं प्रसङ्गनिवृत्ते:।

- धनंजय, दशरूपक, १।१३

३- सानुबन्धं पताकाख्यं।

- धनंजय, दशरूपक, १।१३

करता रहता है इसीलिए इसे 'पताका' कहते हैं ।[1]

उदाहरणार्थ रामायण में सुग्रीव और विभीषण का वृत्तान्त जो कि रामकथा के साथ बहुत दूर तक चलता रहता है, पताका कहलायेगा ।

जो प्रासङ्गिक इतिवृत्त आधिकारिक इतिवृत्त के साथ बहुत थोड़ी दूर तक चलकर समाप्त हो जाता है वह 'प्रकरी' कहलाता है ।[2] जैसे - रामायण में ऋष्यशृङ्ग की कथा ।

अब जहां तक रामायण और महाभारत इन दोनों महाप्रबन्धों में समान रूप से पाये जाने वाले उपाख्यानों के पताकात्व एवं प्रकरीत्व का प्रश्न है उस सम्बन्ध में यहां पृथक् पृथक् विवेचन करने का यथाशक्ति प्रयत्न किया जा रहा है ।

रामोपाख्यान में अभिव्याप्त रामकथा रामायण के अन्तर्गत मुख्यकथा के रूप में आती है क्योंकि रामायण में रामकथा ही आदि से अन्त तक अभिव्याप्त है । इस कथा का मुख्यफल रावणवध, राम की विजय, राम-सीता का पुनर्मिलन आदि है जो रामकथा के नायक राम को ही प्राप्त होती है । इस प्रकार स्पष्ट है कि रामायण में रामकथा ही आधिकारिक कथा है और इसके नायक महाराघव राम हैं ।

रामोपाख्यान के अतिरिक्त ऋष्यशृङ्गसन्दर्भ, गङ्गावतरण सन्दर्भ, वशिष्ठ विश्वामित्र सन्दर्भ, शुनःशेपोपाख्यान, परशुरामोपाख्यान, अगस्त्योपाख्यान, पुरूरवा-उर्वशी सन्दर्भ और ययात्युपाख्यान आदि जितने भी उपाख्यान रामायण में आये हैं वे सब के सब प्रकरी-स्थानीय ही प्रतीत होते हैं । कारण ये सभी उपाख्यान किसी प्रसंग विशेष में उठकर आधिकारिक कथा (रामकथा) और उसके

१- दूरं यदनुवर्तते प्रासङ्गिकं सा पताका सुग्रीवादिवृत्तान्तवत्, पताकेवा-साधारणनायकचिह्नवत्तदुपकारित्वात् ।

- धनञ्जय, दशरूपक, १।१३

२- प्रकरी च प्रदेशभाक् ।

- धनञ्जय, दशरूपक, १।१३

नायक राम का यत् किंचिद् उपकार करके उसी प्रसङ्•ग में ही परिसमाप्त हो जाते हैं ।

उदाहरणार्थ `ऋष्यशृङ्•ग` की कथा आधिकारिक कथा (रामकथा) के नायक महाराघव राम तथा उनके भाइयों का जन्म कराकर उसी प्रसङ्•ग में समाप्त हो जाती है । `गङ्•गावतरण` की कथा आधिकारिक कथा के नायक राम को उनके पूर्वज सगर आदि से परिचय कराने के साथ साथ गङ्•गा के भूतल पर उतरने का वृत्तान्त बताकर ही समाप्त हो जाती है । `वशिष्ठ-विश्वामित्र की कथा आधिकारिक कथा के नायक राम को वशिष्ठ और विश्वामित्र जैसे महान तपस्वियों की तप: शक्ति एवं उनके लोकोत्तर चरित्र से ही परिचय कराकर समाप्त हो जाती है । शुन: शेप की कथा भी रामकथा के नायक (आधिकारिक) राम को विश्वामित्र की मात्र तप: शक्ति से परिचय कराकर समाप्त हो जाती है । परशुराम की कथा रामकथा के नायक मर्यादा पुरुषोत्तम राम के विष्णु का अवतार होने को चरितार्थ करके ही समाप्त हो जाती है । अगस्त्य की कथा भी आधिकारिक कथा के नायक राम को दिव्यास्त्रों की प्राप्ति कराकर उसी प्रसङ्•ग में समाप्त हो जाती है । पुरुरवा-उर्वशी की कथा जिसका पल्लवन राम और लक्ष्मण के माध्यम से होता है । लक्ष्मण को एक पौराणिक उपाख्यान से परिचय कराकर उसी प्रसङ्•ग में समाप्त हो जाती है । यही स्थिति ययाति कथा की भी है । इस प्रकार सुतराम् स्पष्ट है कि उपर्युक्त`ऋष्यशृङ्•गोपाख्यान` आदि सब के सब रामायण में प्रकरी स्थानीय ही हैं ।

महाभारत में आये हुए `रामोपाख्यान` ऋष्यशृङ्•गोपाख्यान` आदि उपर्युक्त सभी उपाख्यान भी प्रकरी स्थानीय ही कहे जा सकते हैं क्योंकि ये सभी महाभारत के मूलकथा (कृष्ण-कथा) के किसी प्रसंग विशेष में उठकर मुख्य-कथा के साथ थोड़ी दूर चलने के पश्चात् उसी प्रसंग में सर्वथा समाप्त होते हुए दिखायी देते हैं ।

उदाहरणार्थ `रामोपाख्यान को ही ले लें । धर्मराज युधिष्ठिर जब अपनी दुरवस्था से सर्वथा दु:खित होकर मारकन्डेय मुनि से जब यह पूछते हैं कि

मुनिवर । भला मुझसे भी दुर्भाग्यशाली इस जगती में कोई अवतीर्ण हुआ है जिसे इतना असह्य दु:ख प्राप्त हुआ हो -- अस्ति नूनं मयाकश्चिदल्पभाग्यतरोनर: । ऐसी स्थिति में युधिष्ठिर को सान्त्वना देने के लिए ही मुनि मारकन्डेय उन्हें `रामोपाख्यान' सुनाते हैं । इस प्रकार रामोपाख्यान में भी व्याप्त रामकथा युधिष्ठिर को सान्त्वना देकर उसी प्रसंग में ही परिसमाप्त हो जाती है । अतएव इसका महाभारत में प्रक्षेपत्व स्वत: स्पष्ट है । यही स्थिति अन्य उपाख्यानों की भी है । ऋष्यशृङ्गोपाख्यान और `गङ्गावतरणसन्दर्भ' लोमश एवं युधिष्ठिर के वार्तालाप के माध्यम से उठकर युधिष्ठिर को बहुश्रुत बनाकर समाप्त हो जाती है । वशिष्ठ-विश्वामित्र सन्दर्भ गन्धर्व और अर्जुन के पारस्परिक वार्तालाप के माध्यम से पल्लवित होकर धनुर्धर अर्जुन को बहुश्रुत बनाकर समाप्त हो जाता है । शुन: शेपोपाख्यान, परशुरामोपाख्यान, आगस्त्योपाख्यान आदि क्रमश: युधिष्ठिर और भीष्म, अकृतव्रण और युधिष्ठिर, लोमश और युधिष्ठिर के पारस्परिक वार्तालापों से उपबृंहित होकर युधिष्ठिर को बहुश्रुत बनाकर समाप्त हो जाते हैं । `पुरूरवा-उर्वशी सन्दर्भ' तथा `ययात्युपाख्यान' वैशम्पायन और जनमेजय के वार्तालाप से पल्लवित होकर जनमेजय को बहुश्रुत बनाकर उसी प्रसङ्ग में ही समाप्त हो जाते हैं ।

इस प्रकार महाभारत में आये हुए `रामोपाख्यान' आदि उपर्युक्त सभी उपाख्यानों का प्रक्षेपत्व ही प्रमाणित होता है ।

यद्यपि वाल्मीकीय रामायण और कृष्णद्वैपायन प्रणीत महाभारत के `रामोपाख्यान` दोनों में रामकथा का पर्याप्त विवेचन, हुआ है किन्तु फिर भी सूक्ष्म-निरीक्षण करने पर इन दोनों की रामकथा में जहां अनेक बिन्दुओं पर एक ओर पर्याप्त साम्य पाया जाता है वहीं दूसरी ओर कतिपय बिन्दुओं पर वैषम्य भी उपलब्ध होता है ।

रामायण और महाभारत के `रामोपाख्यान` के घटना-चक्र में जिन अनेक बिन्दुओं पर साम्य पाया जाता है उनमें से उदाहरणार्थ कतिपय इस प्रकार हैं ।

(१) राम आदि का जन्म तथा कुबेर की उत्पत्ति एवं उन्हें ऐश्वर्य की प्राप्ति आदि का वर्णन रामायण और महाभारत के `रामोपाख्यान` दोनों में समान रूप से उपलब्ध होता है ।

(२) रावण कुम्भकर्ण विभीषण, खर, और शूर्पणखा की उत्पत्ति तपस्या, तत्प्राप्ति आदि का वर्णन रामायण और महाभारत के `रामोपाख्यान` दोनों में ही मिलता है ।

(३) देवताओं का ब्रह्मा के पास जाकर रावण के अत्याचार से बचाने के लिए प्रार्थना करना तथा ब्रह्मा की आज्ञा से देवताओं का रीछ एवं बानरों की योनि में उत्पन्न होने आदि दोनो में समान रूप से वर्णित है ।

(४) राम के राज्याभिषेक की तैयारी, रामवनगमन, भरत की चित्रकूट यात्रा, राम के द्वारा खरदूषण आदि राक्षसोंका विनाश शूर्पणखा का विरूपीकरण, शूर्पणखा का रावण के पास जाना, अपनी दुर्दशा के सम्बन्ध में समस्त वृत्तान्तों को उससे निवेदित करना, रावण का सीता हरण की प्रतिज्ञा करना, तदर्थ मारीच के पास जाना, रावण-मारीच संवाद, मारीच का रावण की सहायता के लिए अन्तत: किसी प्रकार सहमत होना । मृगरूपधारी मारीच का राम के द्वारा वध, रावण के द्वारा सीता का अपहरण, इत्यादि वृत्तान्तों का रामायण और

महाभारत के 'रामोपाख्यान' दोनों में वर्णन मिलता है ।

(५) रावण के द्वारा जटायु का वध, महाराघव राम द्वारा जटायु का अंत्येष्टि संस्कार, कबन्ध का बध और उसके दिव्य स्वरूप से उनका वार्तालाप दोनों में समान रूप से मिलता है ।

(६) राम और सुग्रीव की मित्रता, बालि और सुग्रीव की मित्रता, राम द्वारा वालि का वध, तथा लंका की अशोक वाटिका में राक्षसियों द्वारा भयान्वित की [illegible] हुई । सीता को त्रिजटा का आश्वासन रावण-सीता संवाद आदि का वर्णन दोनों में समान रूप से देखने को मिलता है ।

(७) महाराघवराम का सुग्रीव पर कोप, सुग्रीव का सीता के अन्वेषणार्थ वानरों को भेजना, हनुमान का लंका यात्रा का वृत्तान्त निवेदन करना दोनों में समान रूप से दृष्टिगत होता है ।

(८) आर्या सीता को रावण से मुक्त कराने के लिए वानर-सेना का संगठन-सेतु का निर्माण, विभीषण का राम के द्वारा अभिषेक, लंका की सीमा में सेना का प्रवेश, अंगद का रावण के पास राम के दूत के रूप में जाना, अंगद-रावण-संवाद आदि का वर्णन दोनों में मिलता है ।

(९) अंगद का रावण के पास जाकर राम का सन्देश सुनाकर लौटना, राम की की सेना का लंका पर आक्रमण, राक्षसों तथा वानरों का घोर संग्राम का वर्णन दोनों में उपलब्ध होता है ।

(१०) राम और रावण की सेनाओं का द्वन्द युद्ध, प्रहस्त और प्रमादा के वध से दु:खी रावण का कुम्भकर्ण को जगाना, उसे युद्ध में भेजना, कुम्भकर्ण वज्रवेग, प्रमाथी आदि राक्षसों का विनाशन, दोनों में मिलता है ।

(११) इन्द्रजित का मायामय युद्ध ; राम और लक्ष्मण की मूर्च्छा, आदि का उल्लेख दोनों में मिलता है ।

(१२) राम और रावण का युद्ध तथा रावण का वध दोनों में ही अत्यन्त संरम्भ के साथ मिलता है ।

(१३) मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम का सीता के शील के प्रति सन्देह देवताओं द्वारा सीता की शुद्धि का समर्थन, श्रीराम का दल बल सहित लंका से प्रस्थान एवं अयोध्या में पहुंचकर भरत से मिलना तथा राम का राज्याभिषेक आदि का वर्णन दोनों में न्यूनाधिक रूप में मिलता है ।

इसी प्रकार रामायण और महाभारत के 'रामोपाख्यान' के घटना चक्र में जिन अनेक विन्दुओं पर वैषम्य दृष्टिगत होता है उनमें से उदाहरणार्थ कुछ इस प्रकार दिखाये जा सकते हैं —

(१) महाभारत में 'रामोपाख्यान' का उल्लेख भाग्यहीन नर के उदाहरण के रूप में दिया गया है[१] अर्थात महाभारत की दृष्टि में राम का स्वरूप एक मनुष्य है ।[२] यह लक्षणीय है कि बाल्मीकि भी राम को प्रथमतः मनुष्य के ही रूप में मानते हैं । परशुरामोपाख्यान में राम के स्वरूप का जैसा प्रतिपादन किया गया है उससे उनका विष्णु का अवतार होना भी प्रकारान्तर से स्पष्ट झलकता है ।[३] दृष्टि की यह एकता बाद के काव्यग्रन्थों में नहीं मिलती वे राम को विष्णु या विष्णु का कोई अवतार ही समझते हैं ।

(२) महाभारत के 'रामोपाख्यान' के अनुसार पुष्पोत्करा नामक राक्षसी के पुत्र हैं रावण और कुम्भकर्ण । विभीषण की माता का नाम है मालिनी नामक

१- अस्तिनून मया कश्चिदल्पभाग्यतरो नरः ।
भवता दृष्टपूर्वो वा श्रुतपूर्वो ऽपि वा भवेत् ।।
- महाभारत, वनपर्व, रामोपाख्यान, २७३।१२

२- ज्ञातुमेवंविधं नरम् ।।
- वा०रा०, बालकाण्ड, १।५

३- विष्णुना सदृशो वीर्ये ।
- वा० रा०, बालकाण्ड, १। १८

राक्षसी, खर और शूर्पणखा की माता का नाम है राका राक्षसी।[1] रामायण के अनुसार कैकसी[2] नामक राक्षसी के पुत्र हैं रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण तथा शूर्पणखा। रामायण में पुष्पोत्कटा का उल्लेख तो है लेकिन वह सुमाली की कन्या के रूप में है। पर उससे रावण आदि का कोई सम्बन्ध नहीं है। रामोपाख्यान और रामायण में यह ज्ञात होता है कि रावण का मूल नाम दशग्रीव था क्योंकि रावण जन्म के प्रसंग में दोनों ग्रन्थों में दशग्रीव शब्द मिलता है। दशग्रीव शब्द से दशानन बाद में ही उनका नाम पड़ा और उसके बाद उनके एक विशेष कर्म के कारण रावण नाम हो गया।[3]

(३) महाभारत के 'रामोपाख्यान' में कहा गया है कि रावण और उनके भाई गन्धमादन नामक पर्वत पर अपने पिता के साथ रहते थे।[4] रामायण में यह सूचना तो नहीं दी है। गन्धमादन पर्वत का भी रामायण में कोई उल्लेख नहीं मिलता। यह महाभारत कार की अभिनव सृष्टि कही जा सकती है।

१- पुष्पोत्कटायां जज्ञाते द्वौ पुत्रौ राक्षसेश्वरौ।
कुम्भकर्णदशग्रीवौ बलेना प्रतिमौ भुवि ॥
मालिनी जनयामास पुत्रमेकं विभीषणम्।
राकायां मिथुनं जज्ञे खरः शूर्पणखा तथा ॥
- महा०, वन० पर्व०, रामोपा०, २७५। ७-८

२- द्रष्टव्य - वा० रा०, उत्तरका०, ६। २६-३५

३- दशग्रीवस्तु सर्वेषां श्रेष्ठो राक्षसपुङ्गवः।
महोत्साहो महावीर्यो महासत्वपराक्रमः ॥
- महा०, वनपर्व, रामोपाख्यान २७५।१०

४- सर्वे वेद विदः शूराः सर्वे सुचरितव्रताः।
ऊषुः पित्रा सह रता गन्धमादनपर्वते ॥
- महा०, वन०, रामोपाख्यान, २७५।१३

(४) महाभारत के रामोपाख्यान में ही राम तथा उनके भाइयों के अवतार का उल्लेख तो किया गया है।[१] लेकिन उसमें दशरथ के किसी भी यज्ञ या पायस आदि का संकेत नहीं मिलता। जबकि बाल्मीकि रामायण में उसका उल्लेख हुआ है कि पुत्र प्राप्ति के लिए तपस्या करते हुए भी दशरथ के कोई पुत्र नहीं था।[२]

(५) महाभारत के अन्तर्गत चार राम कथायें पायी जाती हैं उनमें कहीं भी अयोनिजा सीता के अलौकिक जन्म की ओर निर्देश नहीं किया गया है।[३] सर्वत्र यही दर्शाया गया है कि वे जनक की आत्मजा हैं सीता की अलौकिक उत्पत्ति का वर्णन वाल्मीकि रामायण में दो बार विस्तारपूर्वक किया गया है।[४] कतिपय अन्य स्थलों पर भी इसके संकेत मिलते हैं।

१- अभवंतस्य चत्वार: पुत्रा धर्मार्थकोविदा: ।
रामलक्ष्मणशत्रुघ्ना भरतश्च महाबल: ।।
- महा०, वन०, रामोपाख्यान, २७४।७

२- सुतार्थं तप्यमानस्य नासीद् वंशकर: सुत: ।।
- वा० रा०, बालकाण्ड, ८।१

३- विदेहराजो जनक: सीता तस्यात्मजा विभो ।
यां चकार स्वयं त्वष्टा: रामस्य महिषीं प्रियाम् ।।
- महा०, वनपर्व०, रामोपा०, २७४।६

४- अथ मे कृषत: क्षेत्रं लाङ्गलादुत्थिता: तत: ।
क्षेत्रं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता ।।
भूतलादुत्थितव सा तु व्यवर्धत ममात्मजा ।+
वीर्यं शुल्केति मे कन्या स्थापितेयमयोनिजा ।
भूतलादुत्थितां तां तु वर्धमानां ममात्मजाम् ।।

- वा० रा०, बालका०, ६६। १३-१५

(६) महाभारत के 'रामोपाख्यान' में सीता को छोड़कर अन्य पत्नियों के नाम स्पष्टत: नहीं दृष्टिगत होते।[१] जबकि वाल्मीकि रामायण में राम सीता के अतिरिक्त अन्य तीनों भाइयों के विवाह भी सम्पन्न किये जाते हैं। लक्ष्मण सीता की बहिन उर्मिला से तथा भरत शत्रुघ्न क्रमश: जनके के भाई कुशध्वज की पुत्रियाँ माण्डवी, श्रुतकीर्ति से विवाह करते हैं।[२] प्राय: सभी रामकथाओं में ऐसा वर्णन मिलता है।

(७) महाभारत के 'रामोपाख्यान' में कहा गया है कि दुन्दुभी[३] नामक एक गन्धर्वी ने मनुष्यलोक में आकर मन्थरा के रूप में जन्म ग्रहण किया। इस बात का कोई उल्लेख वाल्मीकि रामायण में नहीं है। रामायण में तो दुन्दुभी नामक किसी गन्धर्वी का उल्लेख ही नहीं है। इससे स्पष्ट है कि इस तथ्य की योजना महाभारत की मौलिक प्रतिभा के द्वारा की गई है।

(८) अपमानित शूर्पणखा की बात सुनकर क्रुद्ध होकर रावण जब जन स्थान की ओर आने लगे तो 'रामोपाख्यान' के अनुसार उनको त्रिकूट पर्वत और कालपर्वत

१- द्रष्टव्य - महा०, रामोपा०, वनपर्व, २७४ ।६

२- सीता रामाय मद्र ते उर्मिलां लक्ष्मणाय वै।
वीर्यशुल्कां मम सुतां सीतां सुरसुतोपमाम्॥
- वा० रा० बालका०, ७१।२१

तमेवमुक्त्वा जनको भरतं चाभ्यभाषत।
गृहाण पाणिं माण्डव्या: पाणिना रघुनन्दन॥
शत्रुघ्नं चापि धर्मात्मा अब्रवीन्मिथिलेश्वर:।
श्रुतकीर्तेर्महाबाहो पाणिं गृहीष्व पाणिना॥
- वा० रा०, बालका० ७३ ।३१-३२

३- ततो भागानुभागेन देवगन्धर्वपन्नगा:।
अवतर्तुं महीं सर्वे मन्त्रयामासुर ञ्जसा:॥
तेषां समक्षं गन्धर्वीं दुन्दुभीं नाम नामत:।
शशास वरदो देवो गच्छ कार्यार्थ सिद्धये॥
पितामह: वच: श्रुत्वा गन्धर्वी दुन्दुभी तत:।
मन्थरा मानुषे लोके कुब्जा समभवद् तदा॥
-महा०, व०, रामोपा०, २७६।८-१०

को लांघना पड़ा।[1] त्रिकूट पर्वत जो कि लंका में है इसका उल्लेख तो रामायण में है पर कालपर्वत का कोई उल्लेख रामायण में नहीं मिला। इस प्रसंग में यह भी कहा गया है कि इन दो पर्वतों को लांघकर रावण गोकर्ण तीर्थ में आया।[2] रामायण के इस प्रसंग में गोकर्ण तीर्थ का उल्लेख नहीं है। यद्यपि रामायण में अन्यत्र यह बात कही गई है कि रावण कुम्भकर्ण आदि ने गोकर्ण में तप किया था। इस प्रकार ये सारे के सारे तथ्य महाभारतकार की मौलिक प्रतिभा से प्रसूत कहे जा सकते हैं।

(६) मारीच की कथा दोनों गन्थों में है। रामायण में मारीच का वर्णन सोने के मृग के रूप में किया गया है।[3] जबकि महाभारत में इसका रत्न के रूप में वर्णन मिलता है।[4] इस विन्दु पर भी मृग के व्यास की मौलिक प्रतिमा का योगदान माना जा सकता है जिसके कारण स्वर्ण मृग रत्न मृग के रूप में वर्णित मिलता है।

(१०) सीताहरण के प्रसंग में `रामोपाख्यान` के अन्तर्गत रावण के रथ का

१- त्रिकूटं समतिक्रम्य कालपर्वतमेव च।
दृदर्श मकरावासं गम्भीरोदं महोदधिम्॥

- महा०, वन०, रामोपा०, २७७।५४

२- तमतीत्याथ गोकर्णमभ्यगच्छद् दशाननः।
दयितं स्थानमव्यग्रं शूलपाणेर्महात्मनः॥

- महा०, वन०, रामोपा०, २७७।५५

३- सौवर्णः त्वां मृगो भूत्वा चित्रो रजत् विन्दुभिः।

- वा० रा०, अरण्यका०, ३६।१८

४- रत्नशृङ्गो मृगो भूत्वा रत्नचित्रतनूरुहः।

- महा०, वन०, रामोपा०, २७८।१२

स्पष्टत: उल्लेख नहीं है जिस रथ का सुन्दर विवरण रामायण में है।[1]

(११) रामायण के किष्किन्धाकाण्ड में जो विभिन्न दिशाओं में वानरों को भेजा गया।[2] इसका उल्लेख महाभारत के 'रामोपाख्यान' में नहीं है।

(१२) रामायण में सुग्रीव की पत्नी रुमा[3] का उल्लेख है लेकिन महाभारत के 'रामोपाख्यान' में स्पष्टत: नहीं है।

(१३) किष्किन्धाकाण्ड में राम ने अपने बल की परीक्षा दी है जैसे - राम ने सप्तताल (सात ताल) का छेदन किया आदि। इस प्रकार की किसी भी परीक्षा का उल्लेख रामोपाख्यान में नहीं है।

(१४) रामायण के किष्किन्धाकाण्ड में कहा गया है कि राम ने हनुमान को अपने नाम से चिह्नित अंगूठी दिया लेकिन इस प्रकार अंगूठी प्रदान करने की चर्चा रामोपाख्यान में नहीं है।

(१५) रामोपाख्यान में यह कहा गया है कि सागर का दर्शन राम ने स्वप्न

१- स च मायामयो दिव्यो खरयुक्त: खरस्वन: ।
प्रत्यदृश्यत हेमाङ्गो रावणस्य महारथ: ।।
ततस्तां परुषैर्वाक्यैरभितर्ज्य महास्वन: ।
अंकेनादाय वैदेहीं रथमारोपयत् तदा ।।

- वा० रा०, अरण्यका० ४९ ।१९-२०

२- द्रष्टव्य - वा० रा०, किष्किन्धाकाण्ड सर्ग ४०-४२

३- अस्यत्वं धरमाणस्य सुग्रीवस्य महात्मन: ।
रुमायां वर्तसे कामात् स्नुषायां पापकर्मकृत ।।
तद्व्यतीतस्य ते धर्मात् कामवृत्तस्य महात्मन: ।
मातृभार्यामिमर्षे स्मिनदण्डो यं प्रतिपादित: ।।

- वा० रा०, किष्किन्धाका०, १८।१९-२०

में किया।[1] किन्तु ऐसा वर्णन रामायण में नहीं मिलता। फलत: यह वर्णन व्यास की मौलिक प्रतिभा से ही प्रसूत कहा जा सकता है।[2]

(१६) रामायण में अहल्या वृत्तान्त, राम और गुह[3] का संवाद, भरत और गुह का संवाद,[4] शबरी[5] वृत्तान्त आदि का सविस्तार वर्णन उपलब्ध होता है परन्तु महाभारत के 'रामोपाख्यान' में इन सब का स्पष्टत: कोई उल्लेख नहीं मिलता।

(१७) रामायण में जटायु के वृत्तान्त का वर्णन उस समय मिलता है जब राम सीता को अपनी पर्णकुटी में न पाकर उनके वियोग में विलाप करते हुए उन्हें खोजने के लिए पुन: आगे बढ़ते हैं परन्तु महाभारत के 'रामोपाख्यान' में 'जटायु-वृत्तान्त'[6] का वर्णन मृगरूपधारी मारीच का वध करके लक्ष्मण के साथ लौटते हुए

१- सागरस्तु तत: स्वप्ने दर्शयामास राघवम् ।
देवो नदनदीभर्ता श्रीमान यादोगणैर्वृत: ।।
- महा०, वन०, रामोपा०, २८३।३३

२- अपि ते मुनिशार्दूल मम माता यशस्विनी ।
दर्शिता राजपुत्राय तपोदीर्घमुपागता ।।
अपि रामे महातेजा मम माता यशस्विनी ।
वन्यैरुपाहरत् पूजां पूजार्हे सर्वदेहिनाम् ।।
- वा० रा०, बालका०, ५१।४-५

३- द्रष्टव्य - वा० रा०, अयोध्याका०, ५०। ३३-५१

४- द्रष्टव्य - वा० रा०, अयोध्याका०, ८५ सर्ग

५- तौ पुष्करिण्या: पम्पायास्तीरमासाद्य पश्चिमम् ।
अपश्यतां ततस्तत्र शबर्या रम्यमाश्रमम् ।।
तौ तमाश्रममासाद्य द्रुमैर्बहुभिरावृतम् ।
सुरम्यमभिवीक्षन्तौ शबरीमभ्युपेयतु: ।।
- वा० रा०, अरण्यका०, ७४ ।४-५

६- द्रष्टव्य - महा० वनपर्व०, रामोपा० २७९ अध्याय

पर्णकुटी पर पहुंचने के पूर्व बीच में ही किया गया है। इस प्रकार कथानक का यह परिवर्तन व्यास की मौलिक प्रतिमा के द्वारा किया गया सा प्रतीत होता है।

(१८) रामायण में सुग्रीव के राज्याभिषेक के साथ-साथ वालिके पुत्र अंगद[१] के युवराज पद पर प्रतिष्ठापित किये जाने का स्पष्टत: उल्लेख मिलता है। परन्तु महाभारत के रामोपाख्यान में इस तथ्य का स्पष्टत: उल्लेख नहीं है।

(१६) महाभारत के 'रामोपाख्यान' के अन्तर्गत जब रावण भगवती सीता को अशोक-वाटिका में ले जाकर रख देता है और वहां राक्षसियों का कठोर पहरा कर देता है तो उस समय राम के वियोग से सन्तप्त सीता की व्यथा की कोई सीमा नहीं रह जाती। वह स्वयमेव प्राण परित्याग करने के लिए तत्पर हो जाती है। ऐसी दशा में अविन्ध्य नामक एक वृद्ध-राक्षस[२] त्रिजटा के माध्यम से सीता के लिए जो आश्वासन भरा सन्देश प्रेषित किया है। पुनश्च रावण सीता संवाद के प्रसंग में अविन्ध्य ने सीता के हत्या करने के लिए समुद्यत राक्षस

१- रामस्य तु वच: कुर्वन् सुग्रीवो वानरेश्वर: ।
अङ्गदं सम्परिष्वज्य यौवराज्येऽभ्य षेचयत् ।

- वा० रा०, किष्किन्धाका०, २६।३८

२- अविन्ध्यो नाम मेधावी वृद्धो राक्षसपुङ्गव: ।
स रामस्य हितान्वेषी त्वदर्थे हि स मावदत् ।।
सीता मद्वचनाद्वाच्या समाश्वास्य प्रसाद्य च ।
भर्ता ते कुशली रामो लक्ष्मणानुगतो बली ।।
सख्यं वानरराजेन शक्रप्रतिमतेजसा ।
कृतवान राघव: श्रीमास्त्वदर्थे च समुद्यत: ।।

- महा०, वनपर्व०, रामोपा०, २८०।५६-६१

राज रावण को समझा बुझाकर जिस प्रकार नारी हत्या को निन्दनीय बताकर सीता के प्राणों की रक्षा की है । उन सभी घटनाओं का रामायण में कोई उल्लेख नहीं मिलता । इससे स्पष्ट है कि अविध्य विषयक यह सारा का सारा वृत्तान्त महाभारतकार की मौलिक प्रतिभा के द्वारा ही पृथक् रूप से जोड़ा गया है ।

(२०) सीता की अग्निपरीक्षा का उल्लेख रामोपाख्यान में नहीं है । यह अनुल्लेख ऐसा नहीं है जिसका कोई प्रभाव सीता के चरित्र पर न पड़ता हो क्योंकि सीता के चरित्र के परम शुद्धि का प्रतिपादन इस घटना के द्वारा किया गया है । रामायण का कैसा भी संक्षेप क्यों न किया जाय इस अग्निपरीक्षा[१] का उल्लेख करना अत्यावश्यक है ।

(२१) उत्तरकाण्ड के रामायण में वर्णित प्राय सभी घटनाओं का महाभारत के रामोपाख्यान में उल्लेख नहीं मिलता ।

१- अधोमुखं स्थितं रामं तत: कृत्वा प्रदक्षिणाम् ।

उपावर्तत वैदेही दीप्यमानं हुताशनम् ।।

- वा० रा०, युद्धका०, ११६ । २३-३६

(२) ऋष्यशृङ्ग-गोपाख्यान :--

यद्यपि ऋष्यशृङ्ग-गोपाख्यान का वर्णन रामायण और महाभारत दोनों में उपलब्ध होता है किन्तु इन दोनों में विवेचित इस उपाख्यान से सम्बद्ध तथ्यों में जहां एक ओर कुछ साम्य पाया जाता है वहीं दूसरी ओर दोनों में अनेक बिन्दुओं पर वैषम्य भी मिलता है ।

रामायण और महाभारत में उल्लिखित ऋष्यशृङ्ग-गोपाख्यान में जिन अनेक बिन्दुओं पर साम्य पाया जाता है उनसे कतिपय इस प्रकार है -

(१) रामायण और महाभारत दोनों में ऋष्यशृङ्ग को कश्यप गोत्रीय विभाण्डक मुनि का पुत्र बताया गया है [१]।

(२) रामायण और महाभारत दोनों में इस तथ्य का समान रूप से उल्लेख मिलता है कि अङ्गदेश के नरपति रोमपाद (लोमपाद) ने [२] पुरोहितों के परामर्श के अनुसार अनावृष्टि के निवारणार्थ [३] ऋष्यशृङ्ग को वेश्याओं के अ माध्यम से लाया था और उनके साथ अपनी कन्या शान्ता का विवाह किया था [४]।

१- द्रष्टव्य - वा० रा०, बालकाण्ड ६।३

१- द्रष्टव्य - महाभारत, वनपर्व० तीर्थयात्रा, ११० ।३२

२- रोमपादमुवाचेदं सहामात्य: पुरोहित: ।
उपायो निरपायो ऽयमस्माभिरभिचिन्तित: ।।
- वा० रा०, बालका०, १०।३

द्रष्टव्य, महा०, वन०, पर्व०, तीर्थ० ११०।२५

३- द्रष्टव्य - महा० वनपर्व० तीर्थयात्रा - ११० ।५४-५८

४- स लोमपाद: परिपूर्णकाम:
सुतां ददावृष्यशृङ्गाय शान्ताम् ।
क्रोधप्रतीकारकरं च चक्रे
गाश्चैव मार्गेषु च कर्षणानि ।।
- महा०, वनपर्व, तीर्थयात्रा ११३ ।११

इसी प्रकार ऋष्यशृङ्गोपाख्यान के विषय में रामायण और महाभारत में कुछ वैषम्य भी मिलते हैं जो इस प्रकार हैं -

(१) रामायण के ऋष्यशृङ्गोपाख्यान में यह भी बताया गया है कि अङ्गदेश के नरपति लोमपाद के मित्र कौशल नरेश दशरथ ने पुत्रेष्टि यज्ञ को सम्पन्न करने के लिए उनके जामाता ऋष्यशृङ्ग को अपने यहां ले गये थे और उनके माध्यम से यज्ञ सम्पन्न करवाया था जिसके फलस्वरूप प्राजापत्य पुरुष ने प्रकट होकर दशरथ को उनकी रानियों के लिए खीर दिया था उसे खाकर उन्होंने रामादि पुत्रों को जन्म दिया ।[१] इस घटना का महाभारत के ऋष्यशृङ्गोपाख्यान में उल्लेख नहीं है ।

(२) रामायण के ऋष्यशृङ्गोपाख्यान में यह बताया गया है कि दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ करते समय देवताओं ने ब्रह्मा के पास जाकर उनसे रावण के अत्याचार के सम्बन्ध में निवेदन किया और लोक को इस संकट से मुक्त करने के लिए उनसे प्रार्थना की ब्रह्मा ने तदर्थ देवताओं को अभीष्ट वर दिया । उसी समय भगवान विष्णु ने आकर देवताओं को अपने अंशों सहित दशरथ के यहां जन्म लेने का आश्वासन भी दिया ।[२] महाभारत के ऋष्यशृङ्गोपाख्यान में ऐसी किसी घटना का स्पष्टतः उल्लेख नहीं मिलता ।

१- अथो पुनरिदं वाक्यं प्राजापत्यो नरो ब्रवीत् ।
राजन्नर्चयता देवानद्य प्राप्तमिदं त्वया ।।
इदं तु नृपशार्दूल पायसं देवनिर्मितम् ।
प्रजाकरं गृहाण त्वं धन्यमारोग्यवर्धनम् ।।
भार्याणामनुरूपाणामश्नीतेति प्रयच्छ वै ।
तासु त्वं लप्स्यसे पुत्रान् यदर्थं यजसे नृप ।।
- वा॰ रा॰, बालका॰, १६। १८-२०

२- द्रष्टव्य, बालका॰, १५। १-१६

(३) महाभारत के ऋष्यशृङ्‌गोपाख्यान में ऋष्यशृङ्‌ग का जन्म स्पष्टत: मृगी के उदर से बताया गया है[१] और उनके नामकरण की अन्वर्थता के सम्बन्ध में उनके सिर पर मृग के एक शृङ्‌ग होने का भी उल्लेख किया गया है।[२] रामायण के ऋष्यशृङ्‌गोपाख्यान में इन तथ्यों का स्पष्टत: उल्लेख नहीं किया गया है। फलत: इस तथ्य की योजना महाभारतकार की मौलिक योजना कही जा सकती है।

(४) महाभारत के ऋष्यशृङ्‌गोपाख्यान में यह भी बताया गया है कि जब रोमपाद के द्वारा भेजी गई वेश्याओं ने अधिक संख्या में जाकर ऋष्यशृङ्‌ग को प्रलोभन दिया और उनके हृदय में प्रेम का संचार करके पुन: एकबार लौट आयी तो वे उस मदन-व्यथा से कुछ अनमने से बने रहे इसी स्थिति में विभाण्डक मुनि ने ऋष्यशृङ्‌ग से उनकी चिन्ता का कारण पूछा। रामायण के ऋष्यशृङ्‌गोपाख्यान में इसका स्पष्टत: उल्लेख नहीं मिलता। इस प्रकार स्पष्ट है कि इस घटना की योजना महाभारतकार ने अपनी मौलिक प्रतिभा के बल से की है।

(५) महाभारत के ऋष्यशृङ्‌गोपाख्यान में यह भी बताया गया है कि जब लोमपाद ने वेश्याओं के माध्यम से विभाण्डक मुनि की अनुपस्थिति में उनके प्रिय पुत्र ऋष्यशृङ्‌ग को वेश्याओं के माध्यम से अपने यहां ले आये और उनके साथ शान्ता का विवाह कर दिया तो विभाण्डक मुनि पुत्र-व्यथा से व्यथित होकर स्वयं रोमपाद के यहां ऋष्यशृङ्‌ग को लेने के लिए आते हैं। किन्तु उनके

१- द्रष्टव्य, महाभारत, वनपर्व, तीर्थयात्रा०, ११०। २५

२- द्रष्टव्य, महाभारत, वनपर्व, तीर्थयात्रा०, ११० । ३६

आतिथ्य से प्रसन्न होकर ऋष्यशृङ्ग को उन्हें प्रसन्नतापूर्वक दे देते हैं । रामायण में विभाण्डक मुनि को रोमपाद के यहां इस प्रकार आने का स्पष्टत: कोई उल्लेख नहीं मिलता । इससे भी यह स्पष्ट है कि इस घटना की योजना महाभारतकार ने अपनी मौलिक प्रतिभा के द्वारा की है ।

(६) यह भी ध्यातव्य है कि रामायण में अङ्गदेश के नरपति का नाम रोमपाद मिलता है[१] किन्तु महाभारत के ऋष्यशृङ्गोपाख्यान में उनका नाम लोमपाद मिलता है।[२] किन्तु यदि र और ल, व्यंजनों में अभेद माना जाय तो इस वैषम्य को नाम मात्र का ही माना जा सकता है ।

१- द्रष्टव्य, वा० रा०, बालका०, १० ।२

२- द्रष्टव्य, महा० वन० पर्व०, तीर्थयात्रा ११० । २५

(३) गङ्गावतरण :- सन्दर्भ

रामायण और महाभारत में निरूपित गङ्गावतरण सन्दर्भ में भी कुछ साम्य और कुछ वैषम्य मिलता है इनमें साम्यविषयक विन्दुओं में से कुछ का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है ।

(१) रामायण और महाभारत दोनों के गंगावतरणसन्दर्भ में सगर पुत्रों का पृथवी खोदते हुए कपिल के पास पहुंचना और उनके रोष से जलकर भस्म होना समान रूप से वर्णित है ।

(२) सगर की आज्ञा से अंशुमान का रसातल में जाकर यज्ञिय अश्व को ले आना और अपने चाचाओं के निधन का समाचार सुनाना रामायण और महाभारत दोनों में समान रूप से मिलता है ।

(३) गङ्गा को भूतल पर लाने के लिए अंशुमान और भगीरथ की तपस्या का वर्णन रामायण और महाभारत दोनों में मिलता है ।

(४) भगीरथ की तपस्या से सन्तुष्ट हुए भगवान शङ्कर का गंगा को अपने शिर पर धारण करने के लिए तैयार होना और उन्हें पुन: भगीरथ के लिए देना रामायण और महाभारत दोनों में समान रूप से वर्णित है ।

(५) भगीरथ का गङ्गा के जल से पितरों का तर्पण करके उनका उद्धार करना रामायण और महाभारत दोनों में समान रूप से वर्णित किया गया है ।

गङ्गावतरण-सन्दर्भ के सम्बन्ध में रामायण और महाभारत में प्राप्त वैषम्य को इस प्रकार दिखाया जा सकता है -

(१) रामायण के गङ्गावतरण-सन्दर्भ में यह बताया गया है कि अंशुमान ने जब अपने पितरों (चाचाओं) को कपिल के शापाग्नि में भस्म हुआ देखा तो उन्हें असह्य दु:ख हुआ और तदर्थ उन्होंने अपने अभिशप्त पितरों को जला जलि

देनी चाही । इस पर गरुड़ ने अंशुमान को समझाते हुए बताया कि उनके पितरों का विनाश लोकमंगल के लिए हुआ है ।[1] अतएव इसके लिए उन्हें न तो शोक करना चाहिए और न उन्हें सामान्य रूप से जला जलि देने का ही प्रयत्न करना चाहिए । यदि जला जलि देनी ही है तो गङ्गा के जल से दें ।[2] जिससे कि उनके अभिशप्त पितरों का उद्धार हो जाय । इस प्रकार जहां रामायण में यह सारी सूचना अंशुमान को गरुड़ के माध्यम से प्राप्त हुई है[3] वहां महाभारत के गङ्गावतरण सन्दर्भ में अंशुमान को उपर्युक्त सभी सूचनाएं स्वयं कपिलमुनि[4] से ही प्राप्त हुई हैं । इस प्रकार कथानक का यह परिवर्तन महाभारतकार की मौलिक-प्रतिभा के द्वारा किया गया सा प्रतीत होता है ।

(२) रामायण के गङ्गावतरण-सन्दर्भ में भगीरथ का गोकर्ण तीर्थ में तप करना उल्लिखित है[5] किन्तु महाभारत के गङ्गावतरण सन्दर्भ में ऐसा कोई स्पष्टतः उल्लेख नहीं मिलता ।

(३) रामायण के गङ्गावतरण सन्दर्भ में बताया गया है कि भगीरथ की तपस्या से सन्तुष्ट होकर ब्रह्मा ने उन्हें दर्शन दिया और गङ्गा को संभालने के लिए[6] भगीरथ को यह परामर्श दिया कि वे इसके लिए शङ्कर को प्रसन्न करें ।

१- द्रष्टव्य, वा० रा०, बालका०, ४१ । १७

२- द्रष्टव्य, वा० रा०, बालका०, ४१ ।१८

३- द्रष्टव्य, वा० रा०, बालका०, ४१ । १७

४- द्रष्टव्य, महा०, वनपर्व०, तीर्थयात्रा १०७। ५३-५७

५- द्रष्टव्य, वा० रा०, बालका०, ४२ । १२

६- द्रष्टव्य, वा० रा०, बालका०, ४१ । २२-२४

परन्तु महाभारत के गङ्गावतरण सन्दर्भ में यह उल्लेख मिलता है कि भगीरथ की तपस्या से सन्तुष्ट हुई स्वयं गङ्गा ने ही उन्हें साक्षात दर्शन दिया।[1] और उनसे कहा कि वे पृथवी पर चलने के लिए तैयार हैं किन्तु उनके वेग को संभालने के लिए सम्पूर्ण त्रिलोकी में शिव के अतिरिक्त कोई समर्थ नहीं है। अतएव वे (भगीरथ) इसके लिए शिव को राजी करें।[2] इस प्रकार यहां भी कथानक का यह परिवर्तन व्यास की मौलिक प्रतिभा का प्रमाण है।

(४) रामायण में यह उल्लेख मिलता है कि भगवान शंकर ने भगीरथ की तपस्या से सन्तुष्ट होकर उन्हें गंगा को देने के लिए सर्वप्रथम गंगा को विन्दु सरोवर में गिराया जहां से उनकी सात धारायें होकर विभिन्न दिशाओं में प्रवाहित हुईं[3] जिनमें से एक धारा भागीरथी गङ्गा की है।[4] महाभारत के गङ्गावतरण सन्दर्भ में ऐसा कोई स्पष्टत: उल्लेख नहीं है।

१- द्रष्टव्य, महा० वनपर्व, तीर्थयात्रा १०८ । १४

२- द्रष्टव्य, महा० वनपर्व, तीर्थ०, १०७ । २१ -२४

३- द्रष्टव्य, बालकाण्ड, ४३ । ११-१३

४- सप्तमी चान्वगात् तासां भगीरथरथं तदा ।

भगीरथो पि राजर्षि दिव्यं स्यन्दनमास्थित: ।।

प्रायादग्रे महातेजा गङ्गा तं चाप्यनुव्रजत् ।

गगनाच्छंकरशिरस्ततो धरणिमागता ।।

- वा० रा०, बालका०, ४३ । १४-१५

(५) रामायण के गङ्गावतरण सन्दर्भ में यह भी बताया गया है कि भगीरथ जब गङ्गा को लेकर चले तो वेगवती गङ्गा ने राजा जह्नु के यज्ञ वार को अपनी धारा में समेट लिया जिसके कारण जह्नु ने क्रुद्ध होकर गङ्गा को आत्मसात् कर लिया।[१] फलत: जह्नु से गङ्गा को प्राप्त करने के लिए भगीरथ को पुन: तपस्या करनी पड़ी और जह्नु से गङ्गा को जब प्राप्त किया तो उनका नाम जाह्नवी पड़ा[२] (जह्नु की पुत्री) । महाभारत के गङ्गावतरण सन्दर्भ में ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता ।

१- द्रष्टव्य, वा० रा०, बालका०, ४३ । ३४-३५

२- ततो देवा: सगन्धर्वा ऋषयश्च सुविस्मिता: ।

पूजयन्ति महात्मानं जह्नुं पुरुषसत्तमम् ॥

- द्रष्टव्य - वा० रा०, बालका०, ४३।३६-३८

(४) वसिष्ठ-विश्वामित्र सन्दर्भ :—

रामायण एवं महाभारत दोनों महाप्रबन्धों में विवेचित वशिष्ठ-विश्वामित्र सन्दर्भ मे जो कुछ साम्य और वैषम्य उपलब्ध होते हैं । उनका क्रमश: दिग्दर्शन इस प्रकार किया जा सकता है ।

(१) रामायण एवं महाभारत दोनों के वशिष्ठ-विश्वामित्र सन्दर्भ में यह तथ्य समान रूप से उपलब्ध होता है कि विश्वामित्र अपनी विशाल सेना के साथ ब्रह्मर्षि वशिष्ठ के आश्रम पर पहुँचे और वशिष्ठ ने उनसे आतिथ्य स्वीकार करने के लिए विशेष रूप से आग्रह किया ।

(२) विश्वामित्र के द्वारा वशिष्ठ का आतिथ्य-विषयक आग्रह स्वीकार कर लेने पर वशिष्ठ ने नन्दिनी की सहायता से विश्वामित्र का अपूर्व सत्कार किया जिसको जानकर विश्वामित्र को महान आश्चर्य हुआ । फलत: वे नन्दिनी को पाने के लिए लोलुप हो उठे और इसके लिए विश्वामित्र ने वशिष्ठ से अपना सर्वस्व देकर नन्दिनी को पाने की याचना की । इस तथ्य का रामायण और महाभारत में समान रूप से उल्लेख मिलता है ।

(३) विश्वामित्र के पौन: पुन्येन नन्दिनी की याचना करने पर भी जब वशिष्ठ ने उसे उन्हें देना स्वीकार नहीं किया तब विश्वामित्र ने नन्दिनी को वसिष्ठ से क्षात्रबल के माध्यम से प्राप्त करने का प्रयत्न किया । इस तथ्य का भी रामायण एवं महाभारत में समान रूप से उल्लेख मिलता है ।

(४) नन्दिनी के लिए विश्वामित्र और वसिष्ठ के बीच घोर संग्राम हुआ । नन्दिनी से उत्पन्न शक एवं हूण, पह्लव आदि विभिन्न जाति के वीरों ने विश्वामित्र की सेना का संहार कर दिया, तो इस अपूर्व घटना से आश्चर्यचकित एवं सैन्य संहार से सन्तप्त वसिष्ठ से बदला लेने के लिए विश्वामित्र ने घोर तपस्या करके भगवान आशुतोष से अनेक दिव्यास्त्रों को प्राप्त किया । इस तथ्य का

का भी रामायण एवं महाभारत में समान रूप से उल्लेख मिलता है ।

(५) आशुतोष से प्राप्त समस्त दिव्यास्त्रों का उपयोग विश्वामित्र ने पुन: वसिष्ठ के ही ऊपर किया । किन्तु विश्वामित्र वसिष्ठ के ब्रह्म बल से पुन: पराजित हो गये ऐसी स्थिति में विश्वामित्र ब्रह्मबल को ही सर्वोच्च बल मानकर ब्राह्मणत्व की प्राप्ति के लिए पुन: कठोर तप करने का दृढ़ निश्चय किया और ऐसा किया भी । इस तथ्य का भी रामायण एवं महाभारत में समान रूप से वर्णन मिलता है ।

रामायण और महाभारत में विवेचित 'वसिष्ठ-विश्वामित्र सन्दर्भ' में कुछ वैषम्य भी मिलता है जिसका उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है ।

१- रामायण के वसिष्ठ विश्वामित्र सन्दर्भ में यह बताया गया है कि त्रिशंकु ने वसिष्ठ एवं उनके पुत्रों से किसी ऐसे महान यज्ञ को सम्पन्न कराने के लिए निवेदन किया जिसके माध्यम से वे सदेव स्वर्ग जा सके परन्तु वसिष्ठ एवं उनके पुत्रों ने त्रिशंकु के इस महनीय यज्ञ को सम्पादित करने के लिए उनका पुरोहित बनना स्वीकार नहीं किया । इस पर त्रिशंकु ने अपने इस कार्य के लिए विश्वामित्र से[१] निवेदन किया । विश्वामित्र ने त्रिशंकु का यज्ञ सम्पन्न कराकर उन्हें सदेह स्वर्ग प्रेषित किया । किन्तु वे देवताओं से अभिशप्त

एतस्मिन्नेव काले तु सत्यवादी जितेन्द्रिय: ।
त्रिशङ्कुरिति विख्यात इक्ष्वाकुकुलवर्धन: ।।
तस्य बुद्धि समुत्पन्ना यजेयमिति राघव: ।
गच्छेयं स्वशरीरेण देवतानां परां गतिम् ।।
वसिष्ठं स समाहूय कथयामास चिन्तितम् ।
अशक्यमिति चाप्युक्तो वसिष्ठेन महात्मना ।।

- वा० रा०, बालका०, ५७ । १०-११

होकर पुन: पृथवी की ओर लौटा दिये गये ।[1] विश्वामित्र ने अपने तपोबल से त्रिशंकु को पृथवी और आकाश के मध्य स्थिर कर दिया ।[2] साथ ही ब्राह्मी सृष्टि के विरोध में नयी सृष्टि करना प्रारम्भ कर दिया ।[3] महाभारत के वसिष्ठ विश्वामित्र-सन्दर्भ में ऐसी किसी घटना का उल्लेख नहीं मिलता ।

२- महाभारत के वसिष्ठ-विश्वामित्र सन्दर्भ में यह बताया गया है कि वसिष्ठ के ज्येष्ठ पुत्र शक्ति के शाप से अवध नरेश कल्माषपाद जब राक्षस की योनि को प्राप्त हो गये ।[4] तब विश्वामित्र ने कल्माषपाद को अपने अनुकूल करके उन्हें वसिष्ठ के शक्ति आदि सौ पुत्रों को एक-एक करके मार डालने के लिए प्रेरित किया । और कल्माषपाद ने वैसा किया भी ।[5] फलत: पुत्रशोक से

१- उक्तवाक्ये मुनौ तस्मिन् सशरीरो नरेश्वर: ।
दिवं जगाम काकुत्स्थ मुनीनां पश्यतां तदा ।।
स्वर्गलोकं त गतं दृष्ट्वा त्रिशङ्कु पाकशासन: ।
सह सर्वै सुरगणैरिदं वचनमब्रवीत ।।
त्रिशङ्को गच्छ भूयस्त्वं नासि स्वर्गकृतालय: ।
गुरुशापहतो मूढ पत भूमिमवाक्शिरा: ।।
- वा० रा०, बालका०, ६० । १५-१७

२- तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य क्रोशमानस्य कौशिक: ।
रोषमाहारयत् तीव्रं तिष्ठ तिष्ठेति तपोधनम् ।
- वा० रा०, बालका०, ६० ।१६

३- अन्यमिन्द्रं करिष्यामि लोको वा स्यादनिन्द्रक: ।
दैवतान्यपि स क्रोधाद् स्रष्टुं समुपचक्रमे ।।
- वा० रा०, बालका०, ६०। २३

४- द्रष्टव्य, महा०, आदिपर्व, चैत्ररथपर्व, १७५ ।१२-१४

५- द्रष्टव्य, महा०, आदिपर्व, चैत्ररथ०, १७५ ।४०-४५

संतप्त वसिष्ठ ने आत्महत्या करने के लिए अनेकश: प्रयत्न किया ।[1] रामायण के वसिष्ठ-विश्वामित्र सन्दर्भ में ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता । इस प्रकार स्पष्ट है कि इस घटना की योजना व्यास ने अपनी मौलिक प्रतिभा के द्वारा ही की होगी ।

३- महाभारत के वसिष्ठ-विश्वामित्र-सन्दर्भ में यह भी बताया गया है कि जब पुत्रशोक से संतप्त वसिष्ठ आत्म-हत्या करने के लिए अन्तिम निश्चय के साथ आश्रम से निकले तब उनका अनुगमन करती हुई उनकी पुत्रवधू (शक्ति की पत्नी) अदृश्यन्ती भी उनके पीछे हो चली ।[2] कुछ दूर चलने पर[3] वसिष्ठ को जब यह ज्ञात हुआ कि उन्हें दिव्य वेदध्वनि सुनायी दे रही है तब उन्होंने इसके सम्बन्ध में मुड़कर अदृश्यन्ती से पूछा ।[4] अदृश्यन्ती के माध्यम से जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि सस्वर वेदध्वनि अदृश्यन्ती के उदर में स्थित शक्ति के गर्भस्थ पुत्र की ही है[5] तब वसिष्ठ अपने वंश की परम्परा को सुरक्षित जानकर प्रसन्न हुए और

१- चक्रे चात्मविनाशाय बुद्धिं स मुनिसत्तम: ।
न त्वेव कौशिकोच्छेदं मेने मतिमतां वर: ।।
- महा० आदि०, चैत्ररथ०, १७५ ।४४

२- स गत्वा विविधाऽशैलान देशान् वहुविधांस्तथा ।
अदृश्यन्त्याख्यया वध्वाथाश्रमे नुसृतोऽभवत् ।।
- महा०, आदि०, चैत्ररथ०, १७६ ।११

३- द्रष्टव्य, महा०, आदि०, चैत्ररथ०, १७६ ।१२

४- अनुव्रजति कोऽन्वेष मामित्येवाथ सोऽब्रवीत ।
अहमित्यदृश्यन्तीमं सा स्नुषा प्रत्यभाषत ।
शक्तेर्भार्या महाभाग तपोयुक्ता तपस्विनी ।।
- महा०, आदि०, चैत्ररथ०, १७६ ।१३

५- अयं कुक्षौ समुत्पन्न: शक्तेर्गर्भ: सुतस्य ते ।
समा द्वादश तस्येह वेदानभ्यस्यतो मुने ।।
- महा०, आदि०, चैत्ररथ०, १७६ ।१५

आत्महत्या के संकल्प से विरत होकर पुन: आश्रम की ओर लौट पड़े ।[1] अदृश्यन्ती का यही गर्भस्थ शिशु आगे चलकर पराशर के नाम से विख्यात हुआ ।[2] इस तथ्य का रामायण के वसिष्ठ-विश्वामित्र सन्दर्भ में स्पष्टत: उल्लेख नहीं हुआ है । फलत: इस तथ्य की योजना महाभारतकार की मौलिक प्रतिभा के द्वारा ही की गई होगी ।

४- महाभारत के वसिष्ठ-विश्वामित्र-सन्दर्भ में जो यह बताया गया है कि आत्म-हत्या के लिए निकले हुए वसिष्ठ जब अदृश्यन्ती के साथ पुन: आश्रम की ओर लौट रहे थे तब कल्माषपाद ने उन दोनों को मार डालने का प्रयत्न किया किन्तु वे असफल रहे । साथ ही वसिष्ठ ने कल्माषपाद को जब यह समझा कि यह शक्ति के शाप से राक्षसभाव को प्राप्त हुए कौशल नरेश उनके यजमान कल्माषपाद ही हैं तब उन्होंने कृपापूर्वक उन्हें शाप से न केवल मुक्त कर दिया अपितु सन्तानहीन उन कल्माषपाद (सौदास) को अश्मक नाम पुत्र भी प्रदान किया ।[3] इस तथ्य का भी रामायण के वसिष्ठ-विश्वामित्र-सन्दर्भ में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं हुआ है । इससे स्पष्ट है कि इस तथ्य की योजना व्यास की मौलिक प्रतिभा के द्वारा की गई है ।

१- द्रष्टव्य - महा०, आदिपर्व, चैत्ररथ, १७६ । १६

२- परासु: स यतस्तेन वसिष्ठ: स्थापितो मुनि: ।
गर्भस्थेन ततो लोके पराशर इति स्मृत: ।।
- महा०, आदि०, चैत्ररथ०, १७७ ।३

३- महा०, आदि०, चैत्ररथ०, १७६ । ४६
ततोऽपि द्वादशे वर्षे स जज्ञे पुरुषर्षभ ।
अश्मको नाम राजर्षि: पोदन्यं यो न्यवेशयत् ।।
- महा०, आदि०, चैत्ररथ०, १७६ ।४७

(५) शुन:शेपोपाख्यान :—

रामायण और महाभारत में न्यूनाधिक रूप में विवेचित शुन:शेपोपाख्यान के सम्बन्ध में जो कुछ साम्य और वैषम्य उपलब्ध होता है वह इस प्रकार है ।

१- शुन: शेप महर्षि ऋचीक का पुत्र था, यह तथ्य रामायण और महाभारत दोनों महाप्रबन्धों में समान रूप से मिलता है ।

२- शुन: शेप को एक महान यज्ञ का यज्ञियपशु बनाये जाने और विश्वामित्र के द्वारा उसके मुक्त किये जाने का भी रामायण और महाभारत दोनों में समान रूप से उल्लेख मिलता है ।

३- रामायण और महाभारत दोनों में ही इस तथ्य का भी उल्लेख मिलता है कि शुन: शेप का विश्वामित्र के पुत्रों ने जब अपमान किया तो विश्वामित्र ने अपने उन मधुच्छन्द आदि पुत्रों को शाप दे दिया जिसके फलस्वरूप वे सभी चाण्डाल भाव को प्राप्त हो गये ।

रामायण और महाभारत के शुन: शेपोपाख्यान में कुछ वैषम्य भी है । वह यह कि जहां रामायण में यह बताया गया है कि शुन: शेप को राजर्षि अम्बरीष ने अपने महान यज्ञ का यज्ञियपशु के रूप में महर्षि ऋचीक से खरीदकर लाया था[१] वहां महाभारत में अम्बरीष के स्थान पर हरिश्चन्द्र का उल्लेख मिलता है ।[२] इस प्रकार कथावस्तु में यह परिवर्तन महाभारतकार की मौलिकता की ओर संकेत करता है।

महाभारत में यह भी बताया गया है कि विश्वामित्र ने जब शुन: शेप को महान यज्ञ से मुक्त कराया तो उन्हें अपने पुत्र के रूप में स्वीकार करके उनका नाम देवरात रखा ।[३] रामायण में शुन: शेप के इस नाम का उल्लेख नहीं मिलता । इस प्रकार शुन: शेप का 'देवरात' एक नवीन नामकरण व्यास की मौलिकता का प्रसव कहा जा सकता है ।

१- द्रष्टव्य, वा० रा० बालका० ६१ ।२१

२- द्रष्टव्य, महा०, अनुशा०, दान०, ३ ।७

३- द्रष्टव्य - महा०, अनुशासनपर्व, दानधर्म०, ३। ८

(६) परशुरामोपाख्यान :—

रामायण और महाभारत दोनों के परशुरामोपाख्यान के विषय में जो कुछ साम्य और वैषम्य उपलब्ध होता है उसका दिग्दर्शन इस प्रकार है —

(१) परशुराम भृगुवंशी जमदग्नि के पुत्र थे और वह स्वभावत: महान तपस्वी एवं महाबली थे यह तथ्य रामायण और महाभारत दोनों में समान रूप से प्राप्त होता है।

(२) परशुराम ने अपने पिता जमदग्नि के हन्ता कार्तवीर्य अर्जुन का संहार करने के साथ-साथ समस्त वसुन्धरा को अनेकों बार क्षत्रियों से नि:शून्य कर दिया था। इन तथ्यों का उल्लेख न्यूनाधिक रूप में रामायण और महाभारत दोनों में मिलता है।

(३) परशुराम ने सम्पूर्ण पृथवी को क्षत्रियों से छीनकर उसे महर्षि काश्यप को एक विशाल यज्ञ के अनुष्ठान के द्वारा दान में देकर स्वयं महेन्द्रपर्वत पर जीवन व्यापिनी तपस्या करने के लिए चले गये और वहां आश्रम बनाकर रहने लगे। इन तथ्यों का भी रामायण और महाभारत दोनों में न्यूनाधिक रूप में वर्णन किया गया है।

(४) रामायण में जो परशुराम और राम का संवाद निरूपित किया गया है। उसका महाभारत में भी अन्यत्र प्राय: उसी रूप में उल्लेख मिलता है जिसमें दाशरथिराम के कृष्ण का अवतार होने का स्पष्टत: प्रतिपादन मिलता है साथ ही राम के द्वारा परशुराम के पराजित होने और उनकी तप:

शक्ति के क्षीण किये जाने का भी उल्लेख हुआ है।[१]

रामायण और महाभारत में जहां वैषम्य है वे स्थल इस प्रकार हैं —

(१) महाभारत के परशुरामोपाख्यान में परशुराम की वंशपरम्परा का जो सविस्तार वर्णन किया गया है[२] उसका रामायण में वैसा उल्लेख नहीं हुआ है। इससे स्पष्ट है कि यह वर्णन व्यास की मौलिक प्रतिभा के द्वारा किया गया है।

(२) महाभारत के परशुरामोपाख्यान मे परशुराम के द्वारा जो उनकी माता रेणुका का शिरश्छेदन सविस्तार-वर्णित किया गया है।[३] उसका भी रामायण के परशुरामोपाख्यान में स्पष्टत: उल्लेख नहीं हुआ है। अतएव इस स्थल का वर्णन भी व्यास का मौलिक वर्णन कहा जा सकता है।

१- द्रष्टव्य, महा०, वनपर्व, तीर्थ० ६६-५४-७१

२- द्रष्टव्य, महा०, वनपर्व, तीर्थयात्रा, ११५-११६ अध्याय

३- जहीमां मातरं पापां मा च पुत्र व्यथां कृथा:।
तत आदाय परशुं रामो मातु: शिरोऽहरत् ।।

- महा०, वन०, तीर्थ०, ११५ । १४

(७) अगस्त्योपाख्यान :--

रामायण और महाभारत के अगस्त्योपाख्यान में उपलब्ध साम्य एवं वैषम्य का दिग्दर्शन क्रमशः इस प्रकार है :-

महर्षि अगस्त्य एक महान तपस्वी थे और उनके द्वारा वातापि, इल्वल, जैसे देवद्रोही महान राक्षसों का वध हुआ था इस तथ्य का रामायण और महाभारत दोनों में न्यूनाधिक रूप में समान रूप से वर्णन मिलता है।

परन्तु रामायण में अगस्त्य के द्वारा विन्ध्यपर्वत और अगस्त्य विषयक जिस अवान्तर कथा का उल्लेख हुआ है।[१] उसका महाभारत के अगस्त्योपाख्यान में स्पष्टतः उल्लेख नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त अगस्त्य के द्वारा राम को जो दिव्यास्त्र प्राप्त का वर्णन रामायण में किया गया है[२] उसका भी महाभारत के अगस्त्योपाख्यान में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं हुआ है।

महाभारत के अगस्त्योपाख्यान में जो यह बताया गया है कि महर्षि अगस्त्य ने पितरों के अनुरोध से वंशपरम्परा की रक्षा के लिए विदर्भ नरेश की पुत्री लोपामुद्रा के साथ विवाह करके उससे दृढच्यु नामक महान विद्वान पुत्र को जन्म दिया।[३] इस तथ्य का रामायण में स्पष्टतः उल्लेख नहीं किया गया है। इससे स्पष्ट है कि इस स्थल की योजना महाभारतकार ने अपनी मौलिक प्रतिभा के द्वारा की है।

१- द्रष्टव्य, वा० रा०, अरण्यका०, ११।७६

द्रष्टव्य, वा० रा०, अरण्यका०, ११।८६

२- द्रष्टव्य, वा० रा०, अरण्यका०, १२। ३२-३६

३- द्रष्टव्य, महा०, वन०, तीर्थ०, ९९। २५

(८) पुरूरवा-उर्वशी सन्दर्भ :—

रामायण और महाभारत दोनों के 'पुरूरवा-उर्वशी सन्दर्भ' में इस तथ्य का समान रूप से उल्लेख मिलता है कि उर्वशी का पुरूरवा के साथ सम्बन्ध था और इन दोनों से इनके आयु नामक पुत्र का जन्म हुआ था जिससे नहुष जैसे महाप्रतापी राजा पैदा हुए थे जिन्होंने लाखों वर्षों तक इन्द्र की अनुपस्थिति में उनके उत्तराधिकार का संचालन किया था ।

परन्तु रामायण में जो यह बताया गया है कि मित्र के शाप से अभिशप्त होकर उर्वशी को प्रतिष्ठानपुर के नरपति पुरूरवा के यहाँ जाना पड़ा ।[१] महाभारत में उसके स्थान पर यह बताया गया है कि पुरूरवा ने अपने बाहुबल से त्रिविध अग्नियों के सहित उर्वशी को गन्धर्व लोक से स्वयं प्राप्त किया था ।[२] महाभारत में पुरूरवा और उर्वशी से आयु के जन्म के साथ-साथ उनके धीमान, अमावसु, दृढ़ायु, वनायु और शतायु इन पांच अन्य पुत्रों का नामोल्लेख मिलता है ।[३] रामायण में धीमान आदि का नामोल्लेख नहीं मिलता । इस प्रकार स्पष्ट है कि यह सविस्तर वर्णन व्यास की मौलिकता से प्रसूत है ।

१- द्रष्टव्य, वा० रा०, उत्तरकाण्ड ५६ । २३-२६

२- द्रष्टव्य, महा०, आदि०, सम्भवपर्व, ७५ । २४

३- द्रष्टव्य, महा०, आदि०, सम्भवपर्व०, ७५ । २५-२६

(६) ययात्युपाख्यान :--

रामायण और महाभारत दोनों के ययात्युपाख्यान में इन तथ्यों का समान रूप से उल्लेख मिलता है --

(१) नहुष के पुत्र ययाति के दो पत्नियां थी एक शुक्राचार्य की रूपवती पुत्री देवयानी और दूसरी दैत्यराज वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा । देवयानी के दो पुत्र थे यदु और तुर्वसु । शर्मिष्ठा के तीन पुत्र थे - द्रुह्यु, अनु और पुरु । देवयानी और शर्मिष्ठा दोनों के मध्य सपत्नी विषयक कलह अपनी चरम सीमा पर था ।

(२) ययाति और शर्मिष्ठा से अपमानित देवयानी और उसके पुत्र यदु आदि ने जब अपनी स्थिति शुक्राचार्य से निवेदन किया तो पुत्री की व्यथा से व्यथित शुक्राचार्य ने ययाति को यथाशीघ्र वृद्ध हो जाने का शाप दे दिया । इस तथ्य का रामायण और महाभारत दोनों में समान रूप से उल्लेख मिलता है ।

(३) शुक्राचार्य के शाप से अभिशप्त ययाति में अपनी अतृप्त वासनाओं की तृप्ति के लिए यदु आदि प्रथम चारों पुत्रों से उनके यौवन की याचना की और कहा कि कुछ समय के लिए यदि उनमें से कोई अपना यौवन दे दे तो वे अपनी काम-पुरुषार्थ की सिद्धि करके उसे उसका यौवन पुन: लौटा देंगे और उससे अपनी जरावस्था पुन: वापस ले लेंगे । किन्तु उनके इस निवेदन को पुरु के अतिरिक्त किसी भी पुत्र ने स्वीकार नहीं किया । पुरु ने ययाति के निवेदन के अनुकूल उन्हें अपना यौवन देकर उनसे उनकी

जरावस्था को ले लिया । ययाति ने पुरू के यौवन से सहस्रों वर्षों में अपनी काम पुरुषार्थ की सिद्धि के करके उसे पुन: वापस लौटा दिया और अपनी जरावस्था स्वयं ले ली । इसके अतिरिक्त यदु आदि अन्य ज्येष्ठ पुत्रों के रहते हुए भी उन्होंने पितृभक्त पुरू का ही राज्याभिषेक किया । और तत्पश्चात भृगुतुङ्ग पर्वत पर तपस्या करने चले गये और वहां तपस्या करके स्वर्ग प्राप्त किया । इन समस्त तथ्यों का रामायण और महाभारत में न्यूनाधिक रूप में उल्लेख मिलता है ।

रामायण और महाभारत के 'ययात्युपाख्यान' के सन्दर्भ में अनेक बिन्दुओं पर वैषम्य भी दृष्टिगत होता है । जिनमें से कुछ इस प्रकार है ।

१- महाभारत के 'ययात्युपाख्यान' में देवयानी और शर्मिष्ठा के कलह के प्रसंग में शर्मिष्ठा के द्वारा जब देवयानी कुएं में गिरा दी गई थी तो उसको कुएं से निकालने का श्रेय ययाति को ही था।[१] रामायण के ययात्युपाख्यान में इस घटना का संकेत नहीं है । इस प्रकार इस स्थल की योजना को व्यास की मौलिक योजना कहा जा सकता है ।

२- महाभारत में देवयानी और शर्मिष्ठा का ययाति के साथ जिस प्रकार

१- तामथो ब्राह्मणीं राजा विज्ञाय नहुषात्मज: ।
गृहीत्वा दक्षिणे पाणावुज्जहार ततो वटात् ।।
उद्धृत्य चैनां तरसा तस्मात् कूपान्नराधिप: ।।
- महा०, आदि०, सम्भवपर्व, ७८ ।२२-२३

विवाह होने का वर्णन किया गया है।[१] उसका रामायण के ययात्युपाख्यान में कोई उल्लेख नहीं मिलता। फलत: यहां भी व्यास की मौलिक प्रतिभा का योग मावना कहा जा सकता है।

३- महाभारत के ययात्युपाख्यान में ऐसे अनेक तथ्यों की चर्चा की गई है जिनका रामायण के ययात्युपाख्यान में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। जैसे - इन्द्र के पूछने ययाति का अपने पुत्र पुरू को दिये गये उपदेश की चर्चा करना,[२] ययाति का स्वर्ग से पतन ; और अष्टक का उनसे प्रश्न करना,[३] ययाति और अष्टक का पारस्परिक संवाद,[४] ययाति द्वारा दूसरे के दिये हुए पुण्य दान को अस्वीकार करना, ययाति का वसुमान और शिवि के प्रतिग्रह को अस्वीकार करना तथा अष्टक आदि के साथ स्वर्ग को जाना इत्यादि।[५]

इस प्रकार यह समस्त वर्णन व्यास का मौलिक वर्णन कहा जा सकता है।

१- द्रष्टव्य, महा०, आदि०, सम्भवपर्व ८१। ६-३८

२- द्रष्टव्य, महा०, आदि०, सम्भवपर्व, ८७ अध्याय

३- द्रष्टव्य, महा०, आदि०, सम्भवप०, ८८ अध्याय

४- द्रष्टव्य, महा०, आदि० सम्भवपर्व, ८६ अध्याय

५- द्रष्टव्य, महा०, आदि०, सम्भव०, ६३ अध्याय

चतुर्थ अध्याय

उपाख्यानों में पात्र विवेचन

- पात्रों का शास्त्रीय वर्गीकरण । उपाख्यान - पात्रों का शास्त्रीय रूप निर्धारण, राजवर्गीय-पात्र, प्रजावर्गीय-पात्र, आर्ष-पात्र ।
- दिव्य, दिव्यादिव्य एवं अदिव्य (मर्त्य) पात्रों की विवेचना ।

१- रामोपाख्यान :-

वाल्मीकि रामायण में राम-कथा के मुख्य पात्र के रूप में दशरथ, राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, लव, कुश, जन, रोमपाद, अज, जनक, अंशुमान, अम्बरीष, त्रिशङ्कु, कुशध्वज, विराध, सुग्रीव, वालि, अङ्गद, जटायु, सम्पाति, अक्षकुमार, माली, सुमाली, शिवि, निमि, रावण, विभीषण, कुम्भकर्ण, मेघनाद, (इन्द्रजित्) खर, दूषण, पुरूरवा, ययाति, यदु, लवणासुर, कल्माषपाद, सुदास, वृत्रासुर, चन्द्रकेतु, मय, नलकूबर, युधाजित, सुमन्त्र, निषादराजगुह, मारीच, हनुमान, सुषेण, सुपार्श्व, जाम्बवान्, प्रहस्त, दुर्मुख, वज्रहनु, निकुम्भ, सारण, मैन्द, द्विविद, धूम्राक्ष, अकम्पन, नील, नल, नरान्तक, देवान्तक, प्रजङ्घ, कुम्भ, निकुम्भ, महोदर, शुक्राचार्य, शोणिताक्ष वसिष्ठ, विश्वामित्र, परशुराम, अगस्त्य, ब्रह्मा, शतानन्द, भरद्वाज, कपिल, कश्यप, ऋचीक, शुन: शेप, ऋष्यशृङ्ग, मारकन्डेय, जाबालि, अत्रि, शरभङ्गमुनि, सुतीक्ष्ण, माण्डकर्णि, मतङ्गमुनि, पुलस्त्य, विश्रवा, वैश्रवण, भृगु, च्यवन, दुर्वासा, इन्द्र, जयन्त, धनवन्तरि, नारद, कुबेर, यम, गरुड़ आदि मुख्य-पात्र हैं। स्त्री पात्रों में कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा, माण्डवी, उर्मिला, श्रुतकीर्ति, ताड़का, पार्वती, तारा, रुमा, मन्दोदरी, सुलोचना, प्रभावती, सुमति, शूर्पणखा, इला, उर्वशी, मन्थरा, शबरी, त्रिजटा, शान्ता, अहल्या, अनुसूया, दिति, अरुन्धती, वेदवती, पार्वती, मेनका, रम्भा आदि मुख्य हैं।[1]

महाभारत के 'रामोपाख्यान' में कबन्ध, अविन्ध्य, जैसे नये भी पुरुष-पात्रों के नाम आये हैं। इसी प्रकार रामोपाख्यान में पुष्पोत्कटा, राका, मालिनी, आदि नये स्त्री-पात्र के और नाम आये हैं।[2]

शास्त्रीय दृष्टिकोण से रामायण और रामोपाख्यान में आये हुए उपर्युक्त पात्रों को राजवर्गीय पात्र, प्रजावर्गीयपात्र, आर्षपात्र, और दिव्य-

---

१- सविस्तर द्रष्टव्य - वा० रा० (सम्पूर्ण)
२- सविस्तर द्रष्टव्य - महाभारत रामोपाख्यान ।

वर्गीयपात्र इन चार श्रेणियों में रखा जा सकता है । राजवर्गीय पात्रों में दशरथ से लेकर युधाजित तक के पुरुष-पात्र तथा कौशल्या से लेकर इला तक समस्त नारी-पात्र रखे जा सकते हैं । प्रजावर्गीय पात्रों की श्रेणी में सुमन्त्र से लेकर शोणिताक्ष तक के पुरुष-पात्र मन्थरा, शबरी, त्रिजटा आदि स्त्री-पात्र रखे जा सकते हैं । आर्ष-पात्र की श्रेणी में वसिष्ठ से दुर्वासा तक के पुरुष-पात्र तथा शान्ता, अहल्या, अनुसूया, दिति, अरुन्धती, वेदवती आदि स्त्री पात्र रखे जा सकते हैं । दिव्यवर्गीय पात्र की श्रेणी में इन्द्र, जयन्त, धन्वन्तरि, नारद, कुबेर, यम, गरुड, ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि पुरुष पात्र तथा पार्वती, मेनका, रम्भा, उर्वशी आदि स्त्री-पात्र रखे जा सकते हैं ।

२- ऋष्यशृङ्गोपाख्यान :—

वाल्मीकिरामायण के 'ऋष्यशृङ्गोपाख्यान' के पुरुष पात्रों में सुमन्त्र, दशरथ, जनक, रोमपाद, राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, वामदेव, जाबालि, वसिष्ठ, विभाण्डक, प्राजापत्य पुरुष ऋष्यशृङ्ग आदि तथा स्त्री पात्रों में शान्ता, कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा आदि के नाम मिलते हैं ।[१]

महाभारत के 'ऋष्यशृङ्गोपाख्यान' में विशेषरूप से लोमपाद, विभांडक[२] और ऋष्यशृङ्ग[३] तीन पुरुष पात्र तथा लोमपाद[४] की कन्या शान्ता[५]

१- द्रष्टव्य, वा० रा०, बालकाण्ड, सर्ग ८-१८

२- द्रष्टव्य - महा०, वन०, तीर्थ० ११० ।३२

३- द्रष्टव्य - महा०, तीर्थ०, ११०। ३८

४- द्रष्टव्य - महा०, वन०, तीर्थयात्रा, ११० । २५

५- स लोमपादः परिपूर्णकामः
 सुतां ददावृष्यशृङ्गाय शान्ताम् ।
 क्रोधप्रतीकारकरं च चक्रे
 गाश्चैव मार्गेषु च कर्षणानि ।।
 - महा०, वन०, तीर्थ०, ११३ ।११

स्त्री पात्र के रूप में उपलब्ध होते हैं ।

शास्त्रीय दृष्टिकोण से `ऋष्यशृङ्गोपाख्यान` के उक्त पात्रों में से रोमपाद (लोमपाद) दशरथ, जनक, राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा, आदि को राजवर्गीयपात्र की कोटि में रखा जा सकता है तथा सुमन्त्र को प्रजावर्गीय पात्र की कोटि में । इनके अतिरिक्त, वामदेव, जाबालि, वसिष्ठ, विभाण्डक, ऋष्यशृङ्ग और शान्ता (ऋष्यशृङ्ग की परिणीता धर्मपत्नी) को आर्ष-पात्र की कोटि में रखा जा सकता है । दिव्यवर्गीय पात्र की कोटि प्राजापत्य पुरुष को रखा जा सकता है ।

३- गङ्गावतरण-सन्दर्भ :—

वाल्मीकिरामायण के `गङ्गावतरणसन्दर्भ` में सगर, असमञ्ज, अंशुमान, कपिल, दिलीप, भगीरथ, राम, विश्वामित्र, गरुड़, ब्रह्मा, शङ्कर, जह्नु आदि पुरुष पात्र के रूप में आते हैं । इसके स्त्री पात्रों में मुख्य रूप से भगवती गङ्गा ही आती हैं ।[१] महाभारत के भी `गङ्गावतरण-सन्दर्भ` में प्राय: उक्त पात्र ही आते हैं ।[२]

शास्त्रीय दृष्टिकोण से `गङ्गावतरण सन्दर्भ` के उपर्युक्त पात्रों में से सगर, असमञ्ज, अंशुमान, दिलीप, भगीरथ आदि को राजवर्गीय पात्रों की कोटि में ; कपिल, जह्नु, विश्वामित्र आदि को आर्ष-पात्रों की कोटि में तथा गरुड़ ब्रह्मा, शङ्कर, और गङ्गा को दिव्यवर्गीय पात्रों की कोटि में रखा जा सकता है ।

१- द्रष्टव्य - वा० रा०, बालकाण्ड सर्ग ३८-४४

२- द्रष्टव्य - महा०, वन०, तीर्थ०, (१०६-९)

४- वसिष्ठ-विश्वामित्रसन्दर्भ :—

वाल्मीकि रामायण के 'वशिष्ठ-विश्वामित्रसन्दर्भ' में मुख्यत: वसिष्ठ[1], विश्वामित्र[2], शङ्कर[3] और कामधेनु की पुत्री नन्दिनी[4] का नाम मिलता है। महाभारत के वसिष्ठ-विश्वामित्र सन्दर्भ में रामायण के उक्त पात्रों के अतिरिक्त पुरुष पात्र में कल्माषपाद[5], अश्मक[6], शक्ति[7], पराशर[8], तथा स्त्री पात्र में अदृश्यन्ती[9]

१- द्रष्टव्य - वा० रा०, बाल०, ५३ ।२३

२- वसिष्ठेनैवमुक्तस्तु विश्वामित्रो ब्रवीत तदा ।
संरब्धतरमत्यर्थं वाक्यं वाक्यविशारद: ।।
- वा० रा०, बाल०, ५३ ।१६

३- द्रष्टव्य, वा० रा०, बाल०, ५३ ।२५

४- एवमुक्तस्तु देवेन विश्वामित्रो महातपा: ।
प्रणिपत्य महादेवं विश्वामित्रो ब्रवीदिदम् ।।
- वा० रा०, बालका०, ५५। १५

५- कल्माषपाद इत्येवं लोके राजा बभूव ह ।
इक्ष्वाकुवंशज: पार्थ तेजसासदृशो भुवि ।।
- महा०, आदि०, चैत्र०, १७५ ।१

६- ततो पि द्वादशे वर्षे स जज्ञे पुरुषर्षभ ।
अश्मको नाम राजर्षि: पौदन्यं यौन्यविशयत् ।।
- महा०, आदि०, चैत्र०, १७६।४७

७- शक्तिं नाम महाभागं वसिष्ठकुलवर्धनम् ।
ज्येष्ठं पुत्रं पुत्रशताद् वसिष्ठस्य महात्मन: ।।
- महा०, आदि०, चैत्र०, १७५ ।६

८- द्रष्टव्य, महा० आदि०, चैत्र०, १७७ ।३

९- आश्रमस्था तत: पुत्रमदृश्यन्ती व्यजायत ।
शक्ते: कुलकरं राजन् द्वितीयमिव शक्तिनम् ।।
- महा०, आदि०, चैत्र०, १७७।१

का नाम भी मिलता है ।

शास्त्रीय दृष्टि से वसिष्ठ-विश्वामित्र सन्दर्भ में आये हुए उपर्युक्त पात्रों में से, कल्माषपाद और अश्मक को राजवर्गीय पात्रों की कोटि में ; वसिष्ठ, विश्वामित्र, शक्ति, पराशर, अदृश्यन्ती को आर्ष पात्रों की कोटि में तथा शङ्कर एवं नन्दिनी को दिव्य कोटि के पात्रों की कोटि में रखा जा सकता है ।

५- शुन: शेपोपाख्यान :--

वाल्मीकि रामायण के 'शुन: शेपोपाख्यान' में अम्बरीष, ऋचीक,[1] शुनक, शुन: शेप, और मधुच्छन्द, विश्वामित्र इतने ही पात्र मिलते हैं।[2] परन्तु महाभारत के शुन: शेपोपाख्यान में अम्बरीष के स्थान पर हरिश्चन्द्र का उल्लेख मिलता है इसके अतिरिक्त रामायण के उक्त सभी पात्र ही आते हैं । यह भी ध्यातव्य है कि विश्वामित्र ने महासत्र से शुन: शेप को मुक्त कराने के पश्चात्[3] जब उन्हें अपने पुत्र के रूप में स्वीकार कर लिया तो उनका एक अन्य नाम देवरात व भी रख दिया था ।

शास्त्रीय दृष्टिकोण से वसिष्ठ विश्वामित्र सन्दर्भ में आये हुए उपर्युक्त पात्रों में से अम्बरीष अथवा हरिश्चन्द्र को राजवर्गीय पात्र की कोटि में ; तथा ऋचीक, अश्मक, शुन: शेप और विश्वामित्र को आर्ष-पात्रों की कोटि में रखा जा सकता है ।

६- परशुरामोपाख्यान :--

वाल्मीकि रामायण के 'परशुरामोपाख्यान' में दशरथ, राम, परशुराम,

१- द्रष्टव्य, वा० रा०, बालका०, सर्ग ६१-६२

२- द्रष्टव्य, महा०, अनु०, दान०, ३। ७

३- द्रष्टव्य, महा०, अनु०, दान०, ३।८

वसिष्ठ आदि के नाम उल्लेखनीय है।[१] महाभारत के परशुरामोपाख्यान में जमदाग्नि, परशुराम, रुमण्वान्, सुषेण, वसु,[२] विश्वावसु[३] और कार्तवीर्य अर्जुन आदि पुरुष पात्र तथा जमदग्नि की पत्नी रेणुका[४] स्त्री-पात्र के रूप में आती है।

शास्त्रीय दृष्टि से परशुरामोपाख्यान में आने वाले उपर्युक्त पात्रों में से दशरथ, राम और कार्तवीर्य अर्जुन को राजवर्गीय पात्रों की कोटि में तथा उनके अतिरिक्त शेष सभी को आर्ष-पात्र की कोटि में रखा जा सकता है।

७- अगस्त्योपाख्यान :-

वाल्मीकि रामायण के 'अगस्त्योपाख्यान' में इल्वल वातापि, अगस्त्य, राम, लक्ष्मण आदि पुरुष पात्र तथा सीता स्त्री पात्र के रूप में उल्लेखनीय है।[५] महाभारत के 'अगस्त्योपाख्यान' में अगस्त्य, श्रुतर्वा,[६] ब्रध्नश्व, त्रसदस्यु,[७] दृढस्यु,[८]

१- द्रष्टव्य, वा० रा०, बाल०, सर्ग ७४-७६

२- द्रष्टव्य, महा०, वन०, तीर्थ०, ११६ ।१०

३- स प्रसेनजितं राजन्नधिगम्य नराधिपम् ।
रेणुकां वरयामास स च तस्मै ददौ नृपः ।।
- महा० वन०, तीर्थ०, ११६ ।२

४- कदाचित् तु तथैवास्य विनिष्क्रान्ताः सुताः प्रभो ।
अथानूपपतिर्वीरः कार्तवीर्योऽभ्यवर्तत ।।
- महा०, वन०, तीर्थ०, ११६ ।१६

५- द्रष्टव्य, वा० रा०, अरण्य० सर्ग० ११-१३

६- स श्रुतर्वाणमादाय ब्रध्नश्वमगमत ततः ।
स च तौ विषयस्यान्ते प्रत्यगृह्णाद यथाविधि ।।
- महा०, वन०, तीर्थ०, ९८।७

७- त्रसदस्युस्तु तान् दृष्ट्वा प्रत्यगृह्णाद यथाविधि ।
अभिगम्य महाराज विषयान्ते महामनाः ।।
- महा०, वन०, तीर्थ०, ९८ ।१३

८- द्रष्टव्य - महा०, वन०, तीर्थ०, ९९। २५

इल्वल[1], वातापि, प्रभृति पुरुष-पात्रों के साथ-साथ लोपामुद्रा स्त्री-पात्र आते हैं ।

शास्त्रीय समीक्षा की दृष्टि से 'अगस्त्योपाख्यान' के अन्तर्गत आने वाले इन पात्रों में से राम, लक्ष्मण, सीता, वृघनश्च, त्रसदस्यु, दृढ़स्यु, इल्वक और वातापि को राजवर्गीय पात्र के रूप में तथा अगस्त्य और लोपामुद्रा[2] को आर्ष-पात्र के रूप में रखना उचित होगा ।

८- पुरुरवा-उर्वशी सन्दर्भ :-

वाल्मीकि रामायण के पुरुरवा-उर्वशी सन्दर्भ 'में मित्र, पुरुरवा, आयु, नहुष, पुरुष पात्र तथा स्त्री पात्र के रूप में उर्वशी का उल्लेख मिलता है[3]। महाभारत के पुरुरवा-उर्वशीसन्दर्भ में रामायण के उक्त पात्रों के अतिरिक्त इला[4], धीमान, अमावसु, दृढ़ायु, आयु, वनायु[5], शतायु का भी नामोल्लेख मिलता है ।

शास्त्रीय दृष्टि से इस उपाख्यान में आने वाले उपर्युक्त सभी पात्रों में से, इला, पुरुवा, आयु, धीमान, अमावसु, दृढायु, वनायु, शतायु और नहुष को राजवर्गीय पात्र की कोटि में तथा मित्र एवं उर्वशी को दिव्य पात्र की कोटि में रखना उचित होगा ।

६- ययात्युपाख्यान :—

वाल्मीकि रामायण के 'ययात्युपाख्यान' में नहुष, ययाति, वृषपर्वा, यदु, पुरु, शुक्राचार्य आदि पुरुष-पात्र तथा शर्मिष्ठा एवं देवयानी स्त्री-पात्र के रूप में मिलते हैं।[१] महाभारत के 'ययात्युपाख्यान' में रामायण के उक्त पात्रों के अतिरिक्त यति,[२] ययाति, संयाति, आयाति, अयति, ध्रुव, द्रुह्यु,[३] अनु, और तुर्वसु आदि पुरुष-पात्रों के नाम भी मिलते हैं ।

शास्त्रीय समीक्षा की दृष्टि से 'ययात्युपाख्यान' में आने वाले उपर्युक्त पात्रों में से शुक्राचार्य के अतिरिक्त सभी पात्रों को राजवर्गीय पात्र की कोटि में तथा स्वयं शुक्राचार्य को दिव्यकोटि के पात्र के रूप में रखा जा सकता है ।

शास्त्रीय समीक्षा की दृष्टि से उपर्युक्त उपाख्यानों में आने वाले पात्रों को पुन: दिव्य, दिव्यादिव्य और अदिव्य (मर्त्य) कोटि के पात्रों में भी विभाजित किया जा सकता है इस वर्गीकरण के आधार पर विभिन्न उपाख्यानों में आये हुए पात्रों का वर्गीकरण निम्नवत दिखाया जा सकता है ।

रामायण और रामोपाख्यान में आये हुए पात्रों में से इन्द्र, जयन्त,

---

१- द्रष्टव्य, वा० रा०, उत्तरका०, सर्ग ५८-५९

२- महा०, आदि०, सम्भवपर्व, ७५ ।३१

३- महा०, आदि०, संभवपर्व, ७५ ।३५

धनवन्तरि, नारद, कुबेर, यम, गरुड, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, पार्वती, मेनका, रम्भा, उर्वशी दिव्य-पात्र की कोटि में रखे जा सकते हैं । इनके पश्चात राम, सीता, वसिष्ठ, विश्वामित्र, परशुराम, अगस्त्य, ब्रह्मा, शतानन्द, भरद्वाज, कपिल, कश्यप, ऋचीक, शुन: शेप, ऋष्यशृङ्ग, मारकण्डेय, जाबालि, अत्रि, शरभङ्गमुनि, सुतीक्ष्ण, माण्डकर्णि, मतङ्गमुनि, पुलस्त्य, विश्रवा, वैश्रवण, भृगु च्यवन, दुर्वासा, शान्ता, अहल्या, अनुसूया, दिति, अरुन्धती, वेदवती, आदि दिव्यादिव्य पात्र की कोटि में आते हैं । इनके अतिरिक्त अन्य सभी पात्रों को मर्त्य पात्र की कोटि में रखा जा सकता है ।

रामायण और महाभारत के ऋष्यशृङ्गोपाख्यान में आये हुए पात्रों में से प्राजापत्य पुरुष को दिव्य-पात्र की कोटि में, विभाण्डक, ऋष्यशृङ्ग, जाबालि, वसिष्ठ, शान्ता को दिव्यादिव्य वर्गीय पात्र की कोटि में रखा जा सकता है । इनके अतिरिक्त शेष सभी पात्र मर्त्यवर्गीयपात्र की कोटि में रखे जा सकते हैं ।

गङ्गावतरण सन्दर्भ में आये हुए पात्रों में से गरुड, ब्रह्मा, शङ्कर, और गङ्गा को दिव्यवर्गीयपात्र की कोटि में रखा जा सकता है । कपिल, जह्नु, विश्वामित्र आदि दिव्यादिव्यवर्गीय पात्र की कोटि में आते हैं । इनके अतिरिक्त अन्य सभी मर्त्यवर्गीय पात्र की कोटि में आयेंगे ।

वशिष्ठ-विश्वामित्रसन्दर्भ में आने वाले पात्रों में से नन्दिनी को दिव्य-वर्गीय पात्र की कोटि में तथा वसिष्ठ, विश्वामित्र, शक्ति, अदृश्यन्ती, एवं पराशर को दिव्यादिव्यवर्गीय पात्र की कोटि में रखा जा सकता है । इनके अतिरिक्त कल्माषपाद और अश्मक मर्त्यवर्गीय पात्र की कोटि में आयेंगे ।

शुन: शेपोपाख्यान में आने वाले पात्रों में से ऋचीक, शुनक, शुन: शेप और विश्वामित्र दिव्यादिव्य वर्गीय पात्र की कोटि में तथा अम्बरीष अथवा हरिश्चन्द्र मर्त्यवर्गीय पात्र की कोटि में आते हैं ।

परशुरामोपाख्यान में जमदग्नि, परशुराम, वसिष्ठ, रुमण्वान्, सुषेण,

वसु, विश्वावसु, रेणुका, एवं राम दिव्यादिव्यवर्गीय पात्र की कोटि में तथा दशरथ, कार्तवीर्य अर्जुन आदि मर्त्यवर्गीयपात्र की कोटि में आते हैं ।

अगस्त्योपाख्यान में आने वाले पात्रों में से अगस्त्य, लोपामुद्रा, राम, और सीता दिव्यादिव्यवर्गीय पात्र की कोटि में आते हैं । इनके अतिरिक्त बृघनश्व, त्रदस्यु, द्रढ़स्य, इल्वल, वातापि आदि मर्त्यवर्गीय पात्र की कोटि में आते हैं ।

पुरुरवा-उर्वशी सन्दर्भ में मित्र और उर्वशी दिव्यवर्गीयपात्र की कोटि में रखे जा सकते हैं । इनके अतिरिक्त अन्य सभी पात्रों को मर्त्यवर्गीयपात्र की कोटि में रखा जा सकता है ।

ययात्युपाख्यान में दिव्यादिव्य वर्गीय पात्र की कोटि में शुक्राचार्य और शर्मिष्ठा आती हैं इनके अतिरिक्त नहुष आदि सभी मर्त्य वर्गीय पात्र की कोटि में आयेंगे ।

-0-

पंचम अध्याय

उपाख्यानों का काव्यशास्त्रीय विवेचन (रस-अलंकार-छन्द विवेचन)

- रस प्रक्रिया का शास्त्रीय स्वरूप । विभावादि विवेचन ।
- रामायण एवं महाभारत के अंगीरस का निर्धारण । विश्लेषण ।
- उपाख्यानों में रस-योजना ।
- अलंकारयोजना - शब्दालंकार, अर्थालंकार
- छन्द योजना - प्रमुख छन्दों की सोदाहरण व्याख्या
- उपसंहार

-०-

नीरस काव्य उसी प्रकार[1] रसिकों के लिए तुष्टिप्रद नहीं होता जैसे लवण रहित सुस्वाद भोज्य। इसीलिए रीति, गुण, अलंकार प्रभृति सभी साधन रस के अनुचर कहे गये हैं। यदि शरीर में आत्मा नहीं है तो स्वयं शरीर एवं उससे विविध भूषण कुछ भी नहीं है। इसी तथ्य को दृष्टि में रखते हुए आचार्यों ने रस को काव्य की आत्मा कहा है। आचार्य विश्वनाथ तो रसात्मक काव्य को ही काव्य मानते हैं।[2] इससे स्पष्ट होता है कि सुकवियों के व्यापार के मुख्य विषय रसादि हैं। उनके निबन्धन में उन सत्कवियों को सदैव प्रमादरहित (जागरूक) रहना चाहिए, क्योंकि कवि का जो नीरस काव्य है वह उसके लिए महान अपशब्द है।[3]

वासना रूप से मनुष्य के हृदय में वर्तमान, रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय एवं निर्वेद आदि भाव शास्त्रीय भाषा में स्थायिभाव कहे जाते हैं।[4] इनमें से किसी भाव को चर्वणा या आस्वाद की दशा में परिणत करने के लिए तादृश विभावों, अनुभावों एवं संचारी भावों का

१- स्वादुपाके प्यनास्वापं भोज्यं निर्लवणं यथा।
तथैव नीरसं काव्यं स्यान्नो रसिकतुष्टये ।।
- आमणक

२- वाक्यं रसात्मकं काव्यम् -
- साहि०, प्रथमपरिच्छेद, पृ० २४

३- मुख्या व्यापारविषया: सुकवीनां रसादय: ।
नीरस्तु प्रबन्धो य: सो पशब्दो महान कवे: ।।
- आमणक

४- रतिहासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा ।
जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायीभावा: प्रकीर्तिता: ।।
- नाट्यशास्त्र ६।१७

कवि संयोजन करता है । कारणभूत नायक, नायिकायें या प्रतिनायकादि पात्र तथा उद्दीपन के लिए अनुकूल वातावरणादि विभाव कहे जाते हैं । कार्यभूत भावोद्बोध का अनुभाव कराने वाली वाणी या अंगों की सात्विकादि चेष्टाएं अनुभाव कहलाती हैं । रह रहकर मन में आने वाली मन के आवेग, निर्वेद, दैन्य, प्रभृति भाव सहकारी होने से संचारिभाव अथवा व्यभिचारिभाव कहलाते हैं । इन सबके संयोग के साथ ही साथ अनिर्वचनीय रसचर्वणा होती है ।

रसनिष्पत्ति का सर्वप्रथम उल्लेख भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में किया है वही रससिद्धान्त की आधार भित्ति है ।

'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः ।'[१]

इसका आशय यह है कि विभाव, अनुभाव और संचारिभाव के संयोग से परिपुष्ट रत्यादि स्थायिभाव आस्वाद्य होकर रस कहलाते हैं । आपाततः भरतमुनि का यह रससूत्र सीधा-सा जान पड़ता है परन्तु वह बड़ा विवादास्पद है । अनेक आचार्यों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से भरत के इस सूत्र की व्याख्या की है । अभिनवगुप्त ने भरतनाट्यशास्त्र की 'अभिनवभारती' नामक अपनी व्याख्या में रसोत्पत्ति के विषय में अधिक विस्तार के साथ विचार किया है । उसमें उन्होंने भट्टलोल्लट[२] के उत्पत्तिवाद, शंकुक के अनुमितिवाद[३], तथा भट्टनायक[४] के भुक्तिवाद पर विचार करने के बाद अपने सिद्धान्त 'अभिव्यक्तिवाद'[५] का प्रतिपादन

१- द्रष्टव्य, नाट्यशास्त्र अध्याय ६, पृष्ठ ६२०

२- द्रष्टव्य, काव्यप्रकाश, अध्याय ४, पृष्ठ १२१

३- द्रष्टव्य, काव्यप्रकाश, ४, पृष्ठ १२२

४- द्रष्टव्य, काव्यप्रकाश, ४, पृष्ठ १२६,

५- द्रष्टव्य, काव्यप्रकाश, ४ । पृष्ठ १२६-३०

किया है । उनके सारे विवेचन का केन्द्र विन्दु सामाजिक की रसानुभूति रही है । इसी कसौटी पर उन्होंने दूसरे मतों की परीक्षा की है और इन मतों के विन्यास के पौर्वापर्य का निर्धारण भी उसी कसौटी पर किया है । जिस प्रकार भट्टलोल्लट ने उत्तरमीमांसा के, श्रीशंकुक ने न्याय के और भट्टनायक ने सांख्य के आधार पर, अपने मतों की स्थापना की है उसी प्रकार अभिनवगुप्त ने अपने पूर्ववर्ती आचार्य आनन्दवर्धन के ध्वनिसिद्धान्त के अनुकूल अपने अभिव्यक्तिवाद का प्रतिपादन किया है ।

अभिनवगुप्त ने भट्टलोल्लट, शंकुक तथा भट्टनायक के सिद्धान्तों का खण्डन करते हुए बताया कि भट्टलोल्लट के मत में सामाजिक के रसानुभूति की कोई चर्चा नहीं है । इसलिए खण्डन करने योग्य तथा अनुपादेयकता की दृष्टि से उसको सबसे पहले रखा । शंकुक के मत में यद्यपि सामाजिक के साथ रस का सम्बन्ध तो स्थापित किया गया है परन्तु अनुमिति रूप होने से वह साक्षात्कारात्मक नहीं है । इसलिए वह अधिक उपादेय नहीं है । भट्टनायक के तीसरे मत में रसानुभूति को सामाजिक साक्षात्कारात्मक अनुभव के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है इसलिए वह शेष दोनों मतों से अधिक उपादेय है । परन्तु भट्टनायक के मत में जो भावकत्व और भोजकत्व दो नये व्यापार माने गये हैं । उन्हें अभिनवगुप्त अनावश्यक और अप्रामाणिक मानते हैं । वे काव्य से व्यंजनाव्यापार द्वारा गुण अलंकार आदि के औचित्य रूप इति कर्तव्यता रूप में गुणलंकारादि औचित्य का अन्वयन होता है । इस प्रकार भावकत्व और भोजकत्व दोनों को व्यंजनारूप मानकर उस व्यंजना से सामाजिक में रस की अभिव्यक्ति मानते हैं । अत: उनका मत अभिव्यक्तिवाद है । परवर्ती प्राय: सभी आचार्यों ने अभिनवगुप्त सम्मत रसाभिव्यक्तिवाद को ही विशेष रूप से स्वीकार्य माना है जिनमें मम्मट, विश्वनाथ, आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं ।

स्थायिभाव :—

स्थायिभाव मन के भीतर स्थिर रूप से रहने वाला प्रसुप्त संस्कार है

जो अनुकूल आलम्बन तथा उद्दीपन रूप उद्बोधक सामग्री को प्राप्तकर अभिव्यक्त हो उठता है तथा हृदय में एक अपूर्व आनन्द का संचार करता है । इस स्थायिभाव की अभिव्यक्ति ही रसास्वादजनक या रस्यमान होने से रस शब्द से बोध्य होती है इसीलिए "व्यक्त: स तैर्विभावाद्यै: स्थायिभावो रस: स्मृत:"[1] ऐसा कहा गया है । व्यवहार में मनुष्य को जिस प्रकार की अनुभूति होती है उसको ध्यान में रखकर प्राय: नव प्रकार के स्थायिभाव साहित्यशास्त्र में माने गये हैं । जिनके नाम इस प्रकार हैं ।[2] रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय, निर्वेद ।[3]

विभाव :—

मानवीय हृदय में विद्यमान रत्यादि स्थायिभावों को उद्बुध करके उन्हें रस दशा की ओर ले जाने वाले भाव-विभाव कहलाते हैं ।[4] यह विभाव आलम्बन और उद्दीपन के भेद से दो प्रकार का होता है ।[5] इनमें आलम्बन विभाव[6]

१- द्रष्टव्य, काव्यप्रकाश ४। २८

२- द्रष्टव्य, नाट्यशास्त्र ६ ।१७

३- निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रस: ।

- काव्यप्रकाश ४। ४७

४- (क) रत्याद्युद्बोधका: लोके विभावा: काव्यनाट्ययो: ।

- साहि० ३। २९

(ख) विभाव: कारणं निमित्तं हेतुरिति पर्याया: । विभाव्यन्ते नेन वाङ्गसत्वाभिनया इत्यतो विभाव: । यथा विभावितं विज्ञात-मित्यनर्थान्तरम् ।

बहवोऽर्था विभाव्यन्ते वागङ्गाभिनयाश्रया: ।
अनेन यस्मात्तेनायं विभाव इति संज्ञित: ।।

- नाट्यशास्त्र, ७। ४, पृष्ठ ७९२

५- आलम्बनोद्दीपनाख्यौ तस्य भेदावुभौ स्मृतौ ।। - साहि० ३।२९

६- आलम्बनं नायकादिस्तमालम्ब्य रसोद्गमात् । - साहि० ३। २९

उसे कहते हैं जिसका आश्रय ले करके रत्यादि स्थायिभाव उद्‌बुध होते हैं। जैसे -- रामोपाख्यान में सीता को देख करके राम के हृदय में प्रसुप्त रति स्थायिभाव जागृत होता है और वह परिपुष्ट होकर रस दशा को पहुंचता है तो यहां सीता आलम्बन विभाव हुई। इसी प्रकार सीता के हृदय में विद्यमान रति स्थायिभाव को उद्‌बुध करके रस दशा तक पहुंचाने में राम भी आलम्बन विभाव हो सकते हैं। उद्‌दीपन विभाव उसे कहते हैं जो आलम्बन विभाव के माध्यम से उद्‌बुध रत्यादि स्थायिभावों को उद्‌दीप्त करके रस दशा की ओर ले जाता है। जैसे -- बसन्त, चन्द्रोदय, चांदनीरात, एकान्तता, सरित्तट, ऋतुमाल्य, गन्ध, अनुलेपन, आदि। रति नामक स्थायिभाव के उद्‌दीपन विभाव कहे जा सकते हैं।

अनुभाव :--

आलम्बन और उद्‌दीपन के द्वारा उद्‌बुध रत्यादि स्थायिभावों का जिनके द्वारा ज्ञान होता है अथवा जो उनकी पहचान कराते हैं। वे भाव, अनुभाव[1] कहलाते हैं। दूसरे शब्दों में मन के भीतर स्थायी रूप से विद्यमान रत्यादि स्थायिभावों आलम्बन तथा उद्‌दीपन विभावों से उद्‌बोधन होता है। इस प्रकार जब इनसे स्थायिभाव उद्‌बुध हो जाते हैं तो उनका प्रभाव बाहर दिखायी देने लगता है। मनोगत उद्‌बुध वासना के अनुसार ही मनुष्य की चेष्टा आकार, भंगी आदि में परिवर्तन दिखायी देने लगता है। इन सबका ज्ञान जिनके द्वारा होता है, उन्हीं भावों को शास्त्रीय भाषा में आचार्य लोग अनुभाव कहते हैं। इनके अनुभाव कहे जाने का भी अपना एक स्वारस्य है। वह यह कि विभाव तो स्थायिभाव के उद्‌बोध के कारण हैं और अनुभाव उनके कार्य हैं। इसलिए उन्हें 'अनु पश्चात् भवन्तीति अनुभावाः' अनुभाव कहते हैं। ये अनुभाव प्रत्येक स्थायिभाव के अनुसार अलग-अलग होते हैं। जिनकी सविस्तार विवेचना आचार्य भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में की है।

१- अनुभाव्यते नेन वागङ्गसत्वकृतो भिनय इति।

(शेष पादटिप्पणी अगले पृष्ठ पर कृपया देखें)....

सात्विक भाव :—

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र के अन्तर्गत बताया है कि सत्व मन से उत्पन्न होने वाली एक विशिष्ट अवस्था है। जो मन के एकाग्र होने पर उत्पन्न होती है। इस मन का सत्व यही है कि खिन्न एवं अत्यन्त प्रसन्न मन के कारण सहृदय के द्वारा अश्रु रोमांच आदि निकाले जाते हैं। इस सात्विक स्थिति से जो भाव उत्पन्न होते हैं उन्हें सात्विक[1] भाव कहते हैं। तथा उनसे उत्पन्न होने के कारण अश्रु आदि भी भाव ही कहे जाते हैं। दूसरी ओर अश्रु आदि दुःखादि भावों के सूचक विकार कार्य होने के कारण अनुभाव भी कहे जाते हैं। इस प्रकार इन अश्व आदि भावों की द्विरूपता है। अर्थात् ये सात्विक भाव तथा अनुभाव दोनों कहे जाते हैं। सात्विक भावों की संख्या सामान्यत: आठ[2] बतायी गई है। अनुभावों में इन आठ सात्विक भावों के प्रधान होने के कारण अलग से गिनाया गया है। स्तम्भ, स्वेद, रोमा च, स्वरभग, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय।

---

१ (क) वागङ्गाभिनयेनेह यतस्त्वर्थों नुभाव्यते।
शाखाङ्गोपाङ्गसंयुक्तस्त्वनुभावस्ततः स्मृतः ॥
- नाट्यशास्त्र ७।५ पृष्ठ ७९३

(ख) अनुभावो विकारस्तु भावसंसूचात्मकः।
- दशरूपक, ४।३, पृष्ठ २६१

१- पृथम्भावा भवन्त्यन्ये नुभावत्वे पि सात्विकाः।
सत्वादेव समुत्पत्तेस्तच्च तद्भावभावनम् ॥
- दशरूपक, ४।४, पृष्ठ २६४

२- स्तम्भप्रलयरोमा चाः स्वेदो वैवर्ण्यवेपथू।
अश्रुवैस्वर्यमित्यष्टौ, स्तम्भो स्मिन्निष्क्रियाङ्गता।
प्रलयो नष्टसंज्ञत्वम्, शेषाः सुव्यक्तलक्षणाः ॥
- दशरूपक, ४। ५-६, पृष्ठ २६६

व्यभिचारिभाव :--

जो भाव रत्यादि स्थायिभावों के अनुकूल उनके साथ संचरण करते हुए उन्हें रस दशा की ओर ले जाते हैं । उन भावों को संचारिभाव अथवा व्यभिचारिभाव[1] कहते हैं । व्यभिचारिभाव इन्हें इसलिए कहते हैं क्योंकि इनके सम्बन्ध में यह निश्चित नहीं रहता कि कौन से संचारिभाव किस स्थायिभाव के साथ नियत रूप से उपस्थित होंगे । प्राय: ऐसा देखा जाता है कि किसी स्थायिभाव के होने पर भी कोई संचारिभाव कभी होता है और कभी नहीं । एक ही संचारिभाव कभी किसी संचारिभाव के साथ आता है तो कभी दूसरे के साथ । इस प्रकार इनका सम्बन्ध किसी स्थायिभाव के साथ नियमेन सदैव नियत नहीं होता । इसी कारण किसी स्थायिभाव के साथ इनके नियत रूप से उपस्थित होने वाले नियम का व्यभिचार (अभाव) होने से इन्हें व्यभिचारिभाव कहते हैं । इस प्रकार स्पष्ट है कि इन व्यभिचारिभावों की संख्या कुल तैंतीस[2] मानी गई है जिनके नाम इस प्रकार हैं --

निर्वेद, ग्लानि, शंका, श्रम, धृति, जड़ता, हर्ष, दैन्य, उग्रता, चिन्ता, त्रास, ईर्ष्या, अमर्ष, गर्व, स्मृति, मरण, मद, सुप्त, निद्रा, विबोध, व्रीडा, अपस्मार, मोह, मति, आलस्य, आवेग, वितर्क, अवहित्था, व्याधि, उन्माद, विषाद, औत्सुक्य तथा चपलता ।

१- विविधाभिमुख्येन रसेषु चरन्तीति व्यभिचारिण: ।
वागङ्गसत्वोपेता: प्रयोगे रसान्नयन्तीति व्यभिचारिण: ।।
- नाट्यशास्त्र अध्याय ७, पृ० ८०२

२- निर्वेदग्लानिशङ्काश्रमधृतिजड़ताहर्षदैन्योग्र्यचिन्ता-
स्त्रासेर्ष्यामर्षगर्वा: स्मृतिमरणमदा: सुप्तनिद्राविबोधा: ।
व्रीडापस्मारमोहा: सुमतिरलसतावेगतर्कावहित्था
व्याध्युन्मादौ विषादोत्सुकचपलयुतास्त्रिंशदेते त्रयश्च ।।
- दशरूपक ४। ८ पृष्ठ २६८

मर्यादापुरुषोत्तम महाराघवराम और लीला पुरुषोत्तम योगेश्वर श्रीकृष्ण ये दोनों ही भारतीय संस्कृति के चरम विकास के ऐसे दो विन्दु हैं जिन्हें संक्षेप में उसका अथ और इति कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी । इन दोनों महापुरुषों के चरित को लेकर जाने कितने स्वनामधन्य महाकवियों ने अपनी सारस्वत समाराधना को सफल बनाया और साहित्य देवता के चरणों में महार्घ्य काव्यों की पुष्पांजलि अर्पित की । आज भी इन दोनों महापुरुषों के चरित वर्णन में क्रान्तिदर्शी परिणतप्रज्ञ महाकवियों की सिद्ध वाणी अघाती नहीं । इस परम्परा में लिखे गये संस्कृत साहित्य में दो ऐसे महाप्रबन्ध हैं जिनकी तुलना उनके अपने आप से ही की जा सकती है और जो परवर्ती प्राय: समस्त रामकथा एवं कृष्णकथा पर आश्रित समस्त काव्यों की उपजीव्यता का वहन करते हैं । वे दोनों महाप्रबन्ध हैं -- रामायण और महाभारत ।

आदिकवि ब्रह्मर्षि वाल्मीकि के करुणा विगलित प्रतिभा से प्रसूत रामायण और लोकनाथ कृष्णद्वैपायन वेदव्यास की लोकोत्तर प्रतिभा से प्रसूत महाभारत समस्त मानवीय व्यवहारों एवं ज्ञान-विज्ञान के साथ-साथ क्रमश: मर्यादापुरुषोत्तम राम और लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्ण की लीलाओं से ओतप्रोत महाप्रबन्ध हैं । इन दोनों महाप्रबन्धों में काव्य और शास्त्र का समुचित समन्वय मिलता है । शृंगारादि ऐसा कोई रस नहीं है जिसका इन दोनों महाप्रबन्धों में तत् तत् स्थलों पर समुचित चरम परिपाक न हुआ हो । इन दोनों महाप्रबन्धों में कहीं रसराज शृङ्गार के संयोग पक्ष का मादक प्रवाह है तो कहीं उसके विप्रलम्भ पक्ष का सम्वेदनशील सहृदय हृदय को परिद्रावित करने वाला असह्य विरह व्यथा का प्रसाद । कहीं हास्य रस का आबाल वृद्धव्यापी लोकरंजक विस्तार है तो कहीं लता वृक्ष पशुपक्षी प्रकृति जड़-चेतन को एक साथ रुला देने वाली करुणा का गगनचुम्बी ज्वार । कहीं विजय के अभिलाषी योद्धाओं के शस्त्रास्त्रों की झनझनाहट में रौद्र, वीर, वीभत्स रसों की युगपत् धारायें प्रवाहित हो रही है तो कहीं अद्भुत रस की धारा भी फूटकर बह चली । शान्तरस की धारा भी इनमें पीछे नहीं है । वह भी कहीं अन्त:सलिला के रूप में रिस रिस कर

वहना तो कहीं स्फुटत: परिव्यक्त उज्ज्वल धारा के रूप में बहती हुई दृष्टि-गोचर होती है ।

इस प्रकार रामायण और महाभारत इन दोनों महाप्रबन्धों में यथपि सभी रसों का यथास्थल समुचित परिपाक देखने को मिलता है किन्तु जब इन दोनों महाप्रबन्धों के अङ्गीरस के निर्धारण का प्रश्न आता है तो उस विषय में सभी विद्वान समालोचक एकमत नहीं दिखायी देते ।

जहां तक रामायण के अङ्गी रस का प्रश्न है उस विषय में अधिकांश विद्वान इसे करुण रस प्रधान मानते हैं । ध्वनिकार आनन्दवर्धन[1] इनके प्रख्यात टीकाकार महामाहेश्वर अभिनवगुप्त, दशरूपककार धनञ्जय के मत के सफल व्याख्याता उनके सहोदर धनिक[2], साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ[3], ध्वनिसिद्धान्त के अभिनव व्याख्याता, काव्यकार, मर्मज्ञ दीपशिखाकार[4],

----

१- 'रामायणे हि करुणोरस: स्वयमादिकविना सूत्रित: 'शोक: श्लोकत्व-मागत:' इत्येवं वादिना । निर्व्यूढश्च स एव सीता त्यन्तवियोगपर्यन्तमेव स्वप्रबन्धमुपरचयता ।

- आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक, ४।५ की वृत्ति

२- 'यदि च लौकिककरुणावद् दुखात्मकत्वमेवेहस्यात्तदा न कश्चिदत्र प्रवर्तेत, तत: करुणैकरसानां रामायणादिमहाप्रबन्धामुच्छेद एव भवेत् ।'

- दशरूपक, ४। ४४ की वृत्ति

३- किं च तेषु यदा दु:खं न को पि स्यात्तदुन्मुख: ।
तथा रामायणादीनां भविता दु:खहेतुता ।।

- आचार्य विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, ३।५

४- 'तं स्वप्रबन्धं रामायणं च सीतापरित्यागजन्यनिरवधिवियोगा वसानं निर्मिमाणेन तेन स एव करुणो रसो निर्व्यूढो निर्वाहं प्रापित: समाप्तिं नीत इत्यर्थ: ।'

- ध्वन्यालोक, दीपशिखा, ४। ५ कारिका की वृत्ति

आचार्य चण्डिका प्रसाद शुक्ल जैसे ख्यातनामा आचार्यों ने रामायण को करुणारस प्रधान ही स्वीकार किया है। इन आचार्यों की समस्त धारणाओं का निर्गलितार्थ यह है कि रामायण की रचना का आरम्भ करुणारस से होता है, और इसका अवसान भी करुणारस में ही होता है। इसका आरम्भ उस हृदयविदारक परम-कारुणीक श्लोक से होता है जिसमें यह बताया गया है कि क्रौ ञ्च के जोड़े में से एक का व्याध के द्वारा वध हो जाने से, दूसरे के करुण-क्रन्दन को सुनकर और उसे देखकर जब वाल्मीकि का करुणार्द्र हृदय भावावेग की सर्वोच्च कक्षा में पहुंच गया तो उनके मुख से सहसा अनुष्टुप् छन्द के रूप में काव्यधारा फूट पड़ी।[१] इसी प्रकार पर्यवसान भी लोकापवाद के कारण राम के द्वारा गर्भभार से अलसायी सीता के निर्वासन जैसे सहृदयहृदयविदारक कारुणीक दृश्य में होता है।[२] यही नहीं इन दोनों बिन्दुओं के मध्य भी करुणारस की धारा सतत प्रवाहमान मिलती है। रामायण का ऐसा कोई काण्ड नहीं है जिसमें करुणारस का सफलपरिपाक न्यूनाधिक रूप में न मिलता हो। इस प्रकार रामायण के मुख और निर्वहण दोनों सन्धियों में तो करुण रस का सफल परिपाक हुआ ही है इसके साथ ही साथ इसकी मध्यवर्ती प्रतिमुख, गर्भ और अवमर्श सन्धियों में भी करुण रस विद्यमान है। फलत: रामायण को करुण-रस प्रधान ही मानना चाहिए और जो इसमें शृंगार, वीर आदि अन्य रसों का मध्ये-मध्ये परिपाक हुआ है उन सबको इसी प्रधानभूत करुणारस का पोषक स्वीकार करना चाहिए।

१- मां निषाद प्रतिष्ठां त्वमगम: शाश्वती: समा:।
यत् क्रौ ञ्चमिथुनादेकमवधी: काममोहितम्॥
- वा० रा०, बाल०, २।१५

२- श्रुत्वा परिषदो मध्ये ह्यपवादं सुदारुणम्।
पुरे जनपदे चैव त्वत्कृते जनकात्मजे ॥
राम: संतप्तहृदयो मां निवेद्य गृहं गत:।
- वा० रा०, उत्तरका० ४७।११-१२

कतिपय विद्वान रामायण को युद्धकाण्ड पर्यन्त मानकर इसका पर्यवसान वीर-रस में मानते हैं और इस आधार पर वे रामायण को वीर-रस प्रधान महाकाव्य माने जाने का परामर्श देते हैं। परन्तु यदि केवल इस आधार पर रामायण को वीर रस प्रधान महाकाव्य मानने का परामर्श दिया जाय कि इसमें वाल्मीकि के द्वारा विरचित अंश मात्र बालकाण्ड से लेकर युद्धकाण्ड तक की है और इसका उत्तरकाण्ड बाद में जोड़ा गया है तो यह परामर्श रामायण के अन्त: साक्ष्यों से ही समुचित नहीं लगता क्योंकि रामायण में ऐसे अनेक स्थल हैं जहां इस तथ्य का स्पष्टत: उल्लेख किया गया है कि वाल्मीकि ने रामायण की रचना क्रौञ्चद्वन्द्व वियोग जन्य शोक से समुद्भूत श्लोक से लेकर राम और सीता के आत्यन्तिक वियोग पर्यन्त (राम के द्वारा गर्भवती सीता के निर्वासन पर्यन्त) अर्थात बालकाण्ड से लेकर उत्तरकाण्ड पर्यन्त की है।[1] फलत: ऐसी स्थिति में रामायण को करुण रस प्रधान ही मानना उचित प्रतीत होता है।

१- (क) रामाभिषेकाभ्युदयं सर्वसैन्यविसर्जनम् ।
स्वराष्ट्ररञ्जनं चैव वैदेह्याश्च विसर्जनम् ।।
अनागतं च यत् किंचिद् रामस्य वसुधातले ।
तच्चकारोत्तरे काव्ये वाल्मीकिर्भगवानृषि: ।।
- वा० रा०, बाल०, ३।३८-३९

(ख) चतुर्विंशत्सहस्राणि श्लोकानामुक्तवानृषि: ।
तथा सर्गशतान् पञ्च षट्काण्डानि तथोत्तरम् ।।
कृत्वा तु तन्महाप्राज्ञ: सभविष्यं सहोत्तरम् ।
चिन्तयामास को न्वेतत् प्रयुञ्जीयादिति प्रभु: ।।
- वा० रा०, बाल०, ४। २-३

जहाँ तक महाभारत के अङ्गीरस के निर्णय का प्रश्न है उस सम्बन्ध में भी सभी विद्वान एक मत नहीं हैं किन्तु फिर भी अधिकांश विद्वान समालोचक इसे शान्तरस प्रधान महाप्रबन्ध माने जाने का परामर्श देते हैं। ध्वनिकार आनन्दवर्धन[1] इनके टीकाकार अभिनवगुप्त[2], आचार्य चण्डिकाप्रसाद शुक्ल[3] आदि ने क्रमश:

----

१ (क) 'महाभारते पि शास्त्ररूपे काव्यच्छायान्वयिनि वृष्णि पाण्डवविरसावसान-वैमनस्यदायिनीं समाप्तिमुपनिबध्नता महामुनिना वैराग्यजननतात्पर्यं प्राधान्येन स्वप्रबन्धस्य दर्शयता मोक्षलक्षण: पुरुषार्थ: शान्तोरसश्च मुख्यया विवक्षाविषयत्वेन सूचित: । एतच्चांशेन विवृतमन्यैर्व्याख्या-विधायिभि: ।'

- आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक, ४।५ कारिका की वृत्ति

(ख) 'ननु महाभारते यावान् विवक्षाविषय: सो नुक्रमण्यां सर्व एवानुक्रान्तो न चैतत्तत्र दृश्यते, प्रत्युत सर्वपुरुषार्थप्रबोधहेतुत्वं सर्वरसगर्भत्वं च महाभारतस्य तस्मिन्नुद्देशे स्वशब्दनिवेदितत्वेन प्रतीयते सत्यं शान्तस्यैव रसस्याङ्गित्वं महाभारते मोक्षस्य च सर्वपुरुषार्थेभ्य: प्राधान्यमित्येतन्न स्वशब्दाभिधेयत्वेनानुक्रमण्यां दर्शितम्' ।

- आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक, ४।५ कारिका की वृत्ति ।

२- सविस्तार - द्रष्टव्य, ध्वन्यालोक ४।५ की लोचन टीका ।

३- 'महाभारतस्य प्राधान्येन मुख्यतया वैराग्यजननमेव तात्पर्यं परमप्रयोजनभूतमर्थं दर्शयता प्रकटयता मोक्षोलक्षणं यस्य मोक्षरूप: पुरुषार्थ: तन्मूल: शान्तश्च रसो मुख्यतया सर्वप्राधान्येन अङ्गित्वेन विवक्षाविषयरूपेण सूचित: प्रकाशित: अन्यैर्व्याख्याकारैरेतत्पूर्वोक्तं मतमेव अंशेन न तु साकल्येन विवृतम् ।'

- ध्वन्यालोक,, दीपशिखा, ४।५ कारिका की वृत्ति ।

३- 'तेनरसान्तरैर्वीरादीभी रसैस्तदुपसर्जनत्वेन शान्ताङ्गतया तेषां गुणीभावेन अतएव तैरनुगम्यमानो नुश्रियमाण: पोष्यमाण इति यावत् शान्तो रसो-ङ्गित्वेन प्रधानत्वेन पुरुषार्थान्तरैर्धर्मार्थकामै: यदुपसर्जनत्वेन मोक्षोपकार

(पाद टिप्पणी अगले पृष्ठ पर देखें)

ध्वन्यालोक और उसकी लोचन नामक टीका में महाभारत को शान्तरस प्रधान बताया है । इन दोनों आचार्यों ने इस सम्बन्ध में सविस्तर यौक्तिक विचार करते हुए अन्तत: यही सिद्ध किया है कि यह महाप्रबन्ध तत्व निर्णय की दृष्टि से यदि एक और शास्त्र का कार्य करता है तो दूसरी ओर चमत्कारोत्पादन एवं रसचर्वणा की दिशा में यह महाकाव्य का भी कार्य करता है । इस महाप्रबन्ध का पर्यवसान वृष्णि वंश के सर्वनाश में होता है यही नहीं इस वंश के युग पुरुष लीलापुरुषोत्तम भगवान कृष्ण का भी अन्त एक व्याध के द्वारा होता है । जो कि आज भी अपने अनिर्वचनीय प्रभाव के कारण भगवत् रूप में ही लोक के द्वारा पूज्य माने जाते हैं । इस प्रकार इन सभी का विनाश नीरसता की चरम सीमा में होता है । इसी नीरसता की चरमसीमा में ही इस महाभारत जैसे महाप्रबन्ध का उपसंहार भी होता है । सम्भव है कि महामुनि व्यास वृष्ण पाण्डव और कृष्ण का उत्कर्ष दिखाने के साथ-साथ अन्त में ऐसा उपसंहार दिखाकर यह सिद्ध करना चाहते रहे हों जब ऐसे लोकोत्तर महापुरुषों का ऐसा नीरस अन्त हो सकता है तो जनसामान्य की क्या गणना । इन सब से ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि महामुनि कवि वेधा महाभारतकार का तात्पर्य वैराग्य जनन ही है । साथ ही यह भी स्पष्ट है कि यदि इस महाप्रबन्ध का काव्य के रूप में परिशीलन किया जाय तो वैराग्य जनक परिस्थितियां विभावादि होकर तृष्णा क्षयजन्यसुख में पर्यवसित होगी

कतया तेषां गुणी भावेन अतएव तैरनुगम्यमानो नुस्त्रियमाणो मोक्षरूप: पुरुषार्थश्चाङ्गित्वेन प्रधानत्वेन विवक्षाविषया: प्रतिपाद्य इति महाभारतस्य तात्पर्यं प्रयोजनं सुव्यक्तं सुस्पष्टं अवभासते प्रतीयते प्रबन्धेषु रसानामङ्गाङ्गिभावो शान्तस्याङ्गित्वम् अन्येषां वीरादिरसानां चाङ्गत्वमत्रनिर्विवादमेव ।"

- ध्वन्यालोक, दीपशिखा, ४।५ कारिका की वृत्ति ।

और सम्पूर्ण काव्य का अङ्‌गी रस शान्त रस ही सिद्ध होगा । तथा च यदि शास्त्र की दृष्टि से इसकी पर्यालोचना की जाय तो धर्म, अर्थ और काम ये तीनों पुरुषार्थ गौण रूप में सिद्ध होंगे और परमपुरुषार्थ मोक्ष ही मुख्य पुरुषार्थ के रूप में सिद्ध होगा ।

इसके विपरीत कतिपय विद्वान इसे वीर रस प्रधान महाप्रबन्ध मानने पर बल देते हैं । यद्यपि यह सत्य है कि इस महाप्रबन्ध में शृङ्‌गार वीर आदि अन्य रसों का भी अत्यन्त विस्तार के साथ प्रसार मिलता है और यह भी सत्य है कि महाभारत की अनुक्रमणी में भी ऐसा कोई प्रकरण या श्लोक अधिक स्पष्टतः नहीं है कि उसके बल पर शान्तरस को इसका अङ्‌गीरस अथवा परमपुरुषार्थ मोक्ष को इसका प्रतिपाद्य अङ्‌गी पुरुषार्थ सिद्ध किया जा सके किन्तु फिर भी उसी प्रकरण में कई ऐसे[१] सूत्रात्मक वाक्य हैं जिनके परिशीलन से यह स्पष्टतः परिज्ञात होता है कि महाभारतकार का अभिप्राय शान्तरस को ही अङ्‌गीरस

१- यथा यथा विपर्यैति लोकतन्त्रमसारवत् ।
तथा तथा विरागोऽत्र जायते नात्र संशयः ।।

भगवान वासुदेवश्च कीर्त्यते ऽत्र सनातनः ।
सहि सत्यमृतं चैव पवित्रं पुण्यमेव च ।।
शाश्वतं परमं ब्रह्म ध्रुवं ज्योतिः सनातनम् ।
यस्य दिव्यानि कर्माणि कथयन्ति मनीषिणः ।।

- ध्वन्यालोक ४।५

मानना है । इससे यही सिद्ध होता है कि महाभारत में वीर, करुण आदि अन्य जितने भी रस आये हैं वे सब के सब शान्त रस के ही पोषक हैं और शान्त रस के ही अंग हैं । अतएव इसका अङ्गीरस मुख्यत: शान्त रस ही है । इसी प्रकार धर्मार्थ आदि जो त्रिवर्ग रूप पुरुषार्थ प्रतिपादित किये गये हैं वे सभी मोक्ष रूप परमपुरुषार्थ के ही अंग हैं और उसी के पोषक हैं । अतएव मोक्ष नामक परम पुरुषार्थ ही इसका प्रतिपाद्य पुरुषार्थ है ।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि महाभारतकार का अभिप्राय इसे शान्त रस प्रधान महापबन्ध प्रतिपादित करना रहा है । अतएव महाभारत को शान्त रस प्रधान महाप्रबन्ध स्वीकार करना चाहिए ।

-0-

रामोपाख्यान

आदिकवि ब्रह्मर्षि वाल्मीकि द्वारा प्रणीत रामायण के अन्तर्गत शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, भयानक आदि सभी रसों का न केवल नाम्ना उल्लेख हुआ है प्रत्युत इन सभी रसों का तत् तत् स्थलों पर समुचित परिपाक भी हुआ है। कुशनाभ की कन्याओं के साथ वायु की छेड़खानी,[1] ब्रह्मदत्त के साथ कुशनाभ की कन्याओं का विवाह,[2] राम और सीता का विदेश की वनिका में प्रथम दर्शन और एक दूसरे के लिए उत्कण्ठित होना, सीता स्वयंवर, राम आदि चारों भाइयों का सीता आदि के साथ विवाह,[3] रामादि का विवाहित होकर अयोध्या में आना, रामादि के विवाह में कौशल्या आदि का हर्षविभोर होकर वर-वधूओं की पारस्परिक प्रीति का सम्बर्धन करना, राम आदि चारों भाइयों का सीता आदि का पारस्परिक शृंगारिक वातावरण,[4] मनोविनोद, सीताहरण के पश्चात राम का उनके वियोग में व्यथित होकर पशु-पक्षी, लता-कुञ्ज गिरि गह्वर आदि में खोजते और भटकते हुए सीता के लिए उनका विलाप[5] करना,

---

१- तां सर्वा गुणसम्पन्ना रूपयौवनसंयुता: ।
दृष्ट्वा सर्वात्मको वायुरिदं वचनमब्रवीत् ।।
अहं व: कामये सर्वा भार्या मम भविष्यथ ।
मानुषस्त्यज्यतां भावो दीर्घमायुरवाप्स्यथ ।।
चलं हि यौवनं नित्यं मानुषेषु विशेषत: ।
अक्षयं यौवनं प्राप्ता अमर्यश्च भविष्यथ ।।
- वा० रा०, बालका०, ३२।१५-१७

२- द्रष्टव्य, वा० रा०,बाल० काण्ड, सर्ग ३७

३- द्रष्टव्य, वा० रा०, बा० का०, ७३ । २६-३६

४- द्रष्टव्य, वा० रा०, बा० का०, ७७। ६-१३

५- द्रष्टव्य, वा० रा०, अरण्यका०, सर्ग ६०-६३

तारा और सुग्रीव का पुनर्मिलन[१], सीता के अन्वेषण के प्रसंग में राम का हनुमान को सीता के लिए नामाङ्कित अंगूठी देना[२], लंका में सीता का राम के वियोग में एक एक दिन असह्य दु:ख के साथ बिताना, रावण का सीता को लुभाने का प्रयास[३] करना, सीता का हनुमान के द्वारा राम को सन्देश भेजना[४], राम का सीता को प्राप्त करने के लिए लंका जाना, राम और सीता का पुनर्मिलन[५] इत्यादि स्थल शृङ्गाररस के दोनों पक्षों को यथास्थान उजागर करते हैं।

गौतम के शाप से अभिशप्त अन्डकोशरहित इन्द्र का अपने अन्डकोश-राहित्य पर शोक करना, तदर्थ देवताओं से निवेदन करना और पुन: मेढ़े के

१- द्रष्टव्य, वा० रा०, किष्किन्धाका०, सर्ग ३३

२- ददौ तस्य तत: प्रीत: स्वनामाङ्कोपशोभितम् ।
अङ्गुलीयमभिज्ञानं राजपुत्र्या: परंतप: ।।
अनेन त्वां हरिश्रेष्ठ चिह्नेन जनकात्मजा ।
मत्सकाशादनुप्राप्तमनुद्विग्नानपश्यति ।।

- किष्किन्धा०, ४४। १२-१३

३- द्रष्टव्य, वा० रा०, सुन्दरकाण्ड, सर्ग २०

४- द्रष्टव्य, वा० रा०, सुन्दरकाण्ड, सर्ग ३६

५- (क) विस्मयाच्च प्रहर्षाच्च स्नेहाच्च पतिदेवता ।
उदैक्षत मुखं भर्तु: सौम्यं सौम्यतरानना ।।

(ख) अथपनुदन्मन: क्लमं सा
सुचिरमदृष्टमुदीक्ष्य वै प्रियस्य ।
वदनमुदितपूर्णचन्द्रकान्तं
विमलशशाङ्कनिभानना तदा सीत् ।।

- वा० रा०, युद्धका०, ११४।३५-३६

अंडकोश से युक्त होना,[1] मन्थरा का राम के विरोध में कैकेयी को उकसाने के लिए उनके पास जाना किन्तु कैकेयी का राम के राज्याभिषेक के उपलक्ष्य में मन्थरा को वस्त्राभूषण से पुरस्कृत करना,[2] शत्रुघ्न के द्वारा रामवनगमन के मूलकारणभूत कुब्जा को बारम्बार घसीटा जाना,[3] शूर्पणखा अपने को विश्व सुन्दरी बताकर महाराघव राम से प्रणय निवेदन करना, राम का परिहासपूर्वक शूर्पणखा को लक्ष्मण के पास भेज देना, लक्ष्मण के द्वारा परिहासपूर्वक तथाकथित विश्वसुन्दरी शूर्पणखा को पुन: राम के पास भेजना, शूर्पणखा का इस पर क्रुद्ध होना तथा च रामानुज के द्वारा उसका विरूपीकरण[4] इत्यादि ऐसे अनेक स्थल हैं जो रामायण के पाठक को हास्य रस की भरपूर चर्वणा करा सकते हैं ।

१- द्रष्टव्य, वा० रा०, बा० का०, ४६ । १-१०

२- द्रष्टव्य, वा० रा०, अयोध्या० सर्ग ८

३- तीव्रमुत्पादितं दु:खं भ्रातृणां मे तथा पितु: ।
यथा सेयं नृशंसस्य कर्मण: फलमश्नुताम् ।।
एवमुक्त्वा च तेनाशु सखीजनसमावृता ।
गृहीता बलवद् कुब्जा सा तद् गृहमनादयत् ।।
- वा० रा०, अयो०, ७८ । ११-१२

४- द्रष्टव्य, वा० रा०, अरण्यका०, १८। १-२२
इत्युक्तो लक्ष्मणस्तस्या: क्रुद्धो रामस्य पश्यत: ।
उद्धृत्य खड्गं चिच्छेद कर्णनासे महाबल: ।।
निकृत्तकर्णनासा तु विस्वरं सा विनद्य च ।
यथागतं प्रदुद्राव घोरा शूर्पणखा वनम् ।।
- वा० रा०, अरण्यका० १८ । २१-२२

रामायण में करुण-रस का विस्तार सबसे अधिक परिलक्षित होता है । क्रौंच[1] युगल में से एक का बध देखकर और विलाप करते हुए दूसरे का करुण क्रन्दन सुनकर महर्षि वाल्मीकि के शोक का श्लोक रूप में परिणत होकर छन्दोमयी वाणी में प्रस्फुटित होना ; नारद के कथनानुसार उसी कारुणीक मनोव्यथा को लेकर रामायण की रचना करने के लिए प्रवृत्त होना, दिग्विजय करने के लिए निकले हुए अपने पुत्रों के महर्षि कपिल की शापाग्नि में भस्म हो जाने पर अवधनरेश सगर का करुणा के सागर में डूब जाना,[2] यज्ञ की पूर्ति न होने पर शोकाकुल बने रहना, कैकेयी का दशरथ से राम के वनवास जाने का वर मांगना,[3] सीता लक्ष्मण सहित राम का वनगमन,[4] साकेत वासियों का राम के लिए विलाप,[5] दशरथ का राम के वियोग में प्राण-परित्याग,[6] कौशल्या आदि रानियों का

१- मां निषाद प्रतिष्ठां त्वमगम: शाश्वती: समा: ।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधी: काममोहितम् ।।
- वा० रा०, बालका० २। १५

२- द्रष्टव्य, वा० रा०, बालका०, सर्ग ४०-४४

३- एष मे परम: कामो दत्तमेव वरं वृणे ।
अद्य चैव हि पश्येयं प्रयान्तं राघवं वने ।।
- वा० रा०, अयो०, ११। २८

४- द्रष्टव्य, वा० रा० अयो० ४० । ३६-५१

५- द्रष्टव्य, वा० रा०, अयोका०, सर्ग ४१-४३

६- द्रष्टव्य, वा० रा०, अयोका०, ७८ । ५३-७८

दशरथ के लिए फूटफूट कर विलाप करना,[१] दशरथ के मित्र जटायु का रावण के द्वारा बध देखकर राम का जटायु के लिए शोक करना, तथा जटायु का अपने हाथों से अन्त्येष्टि करना,[२] वालि की मृत्यु पर तारा का विलाप,[३] अक्षकुमार का बध सुनकर रावण का शोकाकुल होना, राम के सैनिकों के द्वारा अपनी सेना का संहार देखकर रावण का शोकमग्न होना, कुम्भकर्ण आदि भाइयों की मृत्यु पर रावण के शोक के पारावार का लहराना,[४] लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर सम्पूर्ण राम की सेना का शोक के सागर में डूब जाना, राम का अपने अनुज के लिए फूट-फूट कर विलाप करना,[५] मेघनाद की मृत्यु पर सुलोचना, मन्दोदरी, रावण आदि का विलाप करना,[६] रावण की मृत्यु के पश्चात विभीषण का शोकमग्न होना और अपने ही हाथों रावण का अन्त्येष्टि संस्कार करना,[७] राम का लोकापवाद के कारण सीता का परित्याग एवं

१- कौसल्या च सुमित्रा च दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च पार्थिवम् ।
हा नाथेति परिक्रुश्य पेततुर्धरणीतले ।।
सा कौसलेन्द्रदुहिता चेष्टमाना महीतले ।
न भ्राजते रजोध्वस्ता तारेव गगनच्युता ।।
नृपेशान्तगुणे जाते कौसल्यां पतितां भुवि ।
अपश्यंस्ताः स्त्रियः सर्वा हतां नागवधूमिव ।।

- वा० रा०, अयो०, ६५ ।२२-२४

२- द्रष्टव्य, वा० रा०, अरण्यका०, सर्ग ६७-६८

३- द्रष्टव्य, वा० रा०, किष्कि०, सर्ग २३

४- द्रष्टव्य, वा० रा०, युद्धका०, सर्ग ६८

५- द्रष्टव्य, वा० रा०, युद्धका०, सर्ग १११

६- द्रष्टव्य, वा० रा०, युद्धका०, सर्ग ६४

७- द्रष्टव्य, वा० रा०, युद्धका०, सर्ग १०६

निर्वासन[१], सीता का लक्ष्मण के द्वारा राम को हृदयविदारक सन्देश[२], राम का चारों भाइयों के सहित जलसमाधि लेना[३] इत्यादि रामायण के अधिकांश स्थल करुणारस से ही सराबोर मिलते हैं । इससे यह भी स्पष्ट है कि रामायण का प्रारम्भ और अवसान करुण-रस में हुआ ही है साथ ही साथ इसका मध्यवर्ती कलेवर भी करुणा के ही पारावार में डूबा डूबा सा दिखायी देता है । यही कारण है कि अधिकांश समालोचक रामायण को करुण रस प्रधान मानते हैं । रामायण में रौद्र वीर एवं वीभत्स रसों का सर्वोत्तम निदर्शन एक साथ ही उसके युद्धकाण्ड में मिलता है जहां समराङ्गण में उतरे हुए राम और रावण दोनों पक्ष की सेनाओं के तुमुल युद्ध में घोर संग्राम में रत वीरों के शस्त्रास्त्रों की खनखनाहट में क्रोध मिश्रित उत्साह का चरम परिपाक एक ओर दिखायी देता है वहीं दूसरी ओर विजगीष योद्धाओं के परस्पर आघात-प्रतिघात में छिन्न-भिन्न होकर रणस्थल में गिरे हुए योद्धाओं के शरीर से बहते हुए रक्त आदि तथा उनका पान करते हुए गृद्ध आदि की परस्पर नोंक झोंक जुगुप्सा स्थायिभावमूलक वीभत्स रस की सृष्टि करते हैं । भयानक रस की भी स्थिति इसी युद्धकाण्ड में उस समय अपने चरम रूप में देखने को मिलती है जब कुम्भकर्ण[४], इन्द्रजित् और रावण अपनी सेना के साथ युद्ध करने के लिए क्रमशः प्रस्थान करते हैं और उनके मायावी युद्ध को देखकर भयभीत हुई राम की सेना चीत्कार करती हुई रणस्थल से पलायन कर जाती है । इसी प्रकार भयानक, रौद्र, वीर, और वीभत्स रस की स्थितियां रामायण के अन्य काण्डों में भी अन्वेषित की जा सकती हैं ।

अब जहां तक रामायण में अद्भुत और शान्त रस की स्थिति का

१- द्रष्टव्य, वा० रा०, उत्तरका०, सर्ग ४७

२- द्रष्टव्य, वा० रा०, उत्तरका०, ४८। १०-१६

३- द्रष्टव्य, वा० रा०, उत्तरका०, सर्ग ११०

४- द्रष्टव्य, वा० रा०, युद्धका०, सर्ग ६० एवं ६६

प्रश्न है तो वह भी बहुत कुछ स्पष्ट है । परशुराम के द्वारा चुनौती दिये जाने पर राम का वैष्णव धनुष को चढ़ाकर परशुराम को आश्चर्यचकित करना,[1] राम स्वयं ही विष्णु के साक्षात अवतार हैं यह समझकर परशुराम का आश्चर्यान्वित होना,[2] राम के द्वारा अहल्या का उद्धार होना,[3] अरण्यकाण्ड में राम का सुतीक्ष्ण आदि विभिन्न ऋषियों के आश्रम में जाकर उन्हें अपने भागवत स्वरूप का दर्शन देना,[4] लंका काण्ड में मेघनाद रावण के मायामय युद्ध राम के द्वारा उनके मायामय युद्ध का निवारण इत्यादि अनेक स्थल ऐसे मिलते हैं जहां अद्भुत रस का सफल परिपाक देखा जा सकता है । शान्तरस रामायण के सम्पूर्ण कलेवर में प्रच्छन्न रूप में बहता हुआ सा दिखायी देता है । फिर भी इस शान्त रस का चरम उत्कर्ष अरण्य काण्ड के उस प्रसंग में मिलता है जहां राम विभिन्न तपस्वियों के आश्रम में जा जाकर उनसे वार्तालाप करते हैं ।[5] शास्त्रीय चर्चाएं करते हैं । और प्रत्येक ऋषि के आश्रम पर कुछ कुछ समय के लिए रहरहकर पुन: आगे बढ़ते चले जाते हैं । इसके अतिरिक्त रामायण के अन्य काण्डों में भी यत्र-तत्र शान्तरस की स्थिति न्यूनाधिक रूप में देखने को मिलती है ।

१- द्रष्टव्य, बा० का०, ७६ । ३-११

२- अक्षय्यं मधुहन्तारं जानामि त्वां सुरेश्वरम् ।
   धनुषो स्य परामर्शात् स्वस्ति ते स्तु परंतप ।।
   - वा० रा०, बा० का० ७६ ।१७

३- द्रष्टव्य, वा० रा०, बा० का०, ४९ ।१०-२२

४- द्रष्टव्य, वा० रा०, अरण्यका० ७। ६-७

५- द्रष्टव्य, वा० रा०, अरण्यकाण्ड सर्ग १-१३

अस्तु उपर्युक्त विवेचन से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि रामायण में शृङ्गारादि सभी रसों का न्यूनाधिक रूप में तत् तत् स्थलों पर सफल परिपाक हुआ है और सभी रसों को रामायण के विस्तृत धरातल पर प्रवाहित करने में आदिकवि वाल्मीकि की रसप्रसविनी सारस्वति लेखनी ने अपूर्व कौशल दिखाया है। किन्तु फिर भी उसने करुणा की जैसी धारा सर्वातिशायिनी धारा बहायी है वह सब कुछ उसी के लिए सम्भव है।

महाभारत के 'रामोपाख्यान' में शृङ्गारादि सभी रसों का न्यूनाधिक रूप में यथास्थल परिपाक हुआ है। किन्तु जिनमें करुणारस का विस्तार सबसे अधिक प्रतीत होता है। वस्तुत: रामोपाख्यान का आरम्भ और पर्यवसान विशेष रूप से करुण-रस में ही उपलब्ध होता है। अपनी दुर्व्यवस्था से शोकाकुल युधिष्ठिर का महर्षि मारकन्डेय से[1] 'अस्ति नूनं मया कश्चिदल्पभाग्यतरो नर:' कहकर प्रश्न करना महर्षिमारकन्डेय का शोकाकुल युधिष्ठिर को धैर्य धारण करने के लिए रामोपाख्यान सुनाना, रामोपाख्यान के रामायण के उपर्युक्त रूप से वर्णित समस्त कारुणिक स्थल रामोपाख्यान के अन्त में मारकन्डेय का शोकाकुल युधिष्ठिर को पुन: आश्वासन देना इत्यादि सभी स्थल करुणारस से ही भरे पड़े हैं। शृङ्गारादि अन्य सभी रसों के सम्बन्ध में भी महाभारत के रामोपाख्यान की भी न्यूनाधिक रूप में वही स्थिति है जो रामायण की है। फलत: यह स्पष्ट है कि रामोपाख्यान में भी सारे रसों का परिपाक होते हुए भी करुण रस की स्थिति अधिक व्यापक है।

१- द्रष्टव्य, महा०, वनपर्व, रामोपा०, २७३ ।१२

२- द्रष्टव्य, महा०, वनपर्व, रामोपा०, २९२ । अध्याय

ऋष्यशृङ्गोपाख्यान

रामायण के ऋष्यशृङ्गोपाख्यान का अङ्गीरस शान्तरस है । रामायण के ऋष्यशृङ्गोपाख्यान में आदि से अन्त तक शान्तरस का प्राधान्य दृष्टिगोचर होता है । दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ को सम्पन्न कराने के निमित्त ऋष्यशृङ्ग को कोसल नरेश दशरथ के यहाँ लाया जाता है । वसिष्ठ आदि कुलपुरोहित तथा अन्यान्य याज्ञिकों के माध्यम से दशरथ का यज्ञ ऋष्यशृङ्ग की अध्यक्षता में सम्पन्न होता है।[1] अन्त में प्राजापत्यपुरुष[2] प्रकट होकर दशरथ की रानियों के लिए पायस देता है जिसको खाकर कौशल्या आदि अपने उदर में रघुवंश का तेज धारण करती हैं और रामादि को जन्म देती हैं।[3] इस प्रकार रामायण के ऋष्यशृङ्गोपाख्यान के अधिकांश स्थल शान्त रस से आप्लावित परिलक्षित होते हैं । इसके अतिरिक्त अङ्गीरस के रूप में शृङ्गाररस की भी स्थिति देखने को मिलती है । रोमपाद के द्वारा ऋष्यशृङ्ग को लाने के लिए भेजी गई वेश्याओं और ऋष्यशृङ्ग के पारस्परिक वार्तालाप एवं तदनुकूल कायिक,

---

१- द्रष्टव्य, वा० रा०, बालका०, ११। १७
द्रष्टव्य, वा० रा०, बालका० ११। २७-२८

२- ततो वै यजमानस्य पावकादतुलप्रभम् ।
प्रादुर्भूतं महद्भूतं महावीर्यं महाबलम् ।।
- वा० रा०, बालका० १६ ।११

३- अथो पुनरिदं वाक्यं प्राजापत्यो नरोऽब्रवीत् ।
राजन्नर्चयता देवानद्य प्राप्तमिदं त्वया ।।
इदं तु नृपशार्दूल पायसं देवनिर्मितम् ।
प्रजाकरं गृहाण त्वं धन्यमारोग्यवर्धनम् ।।
भार्याणामनुरूपाणामश्नीतेति प्रयच्छ वै ।
तासु त्वं लप्स्यसे पुत्रान् यदर्थं यजसे नृप ।।
- वा० रा०, बाल०, १६। १८-२०

वाचिक, सात्विक एवं आहार्य अभिनयों में शृङ्गार रस[1] का उद्रेक भी पर्याप्त रूप में देखने को मिलता है। इस प्रकार रामायण के 'ऋष्यशृङ्गोपाख्यान' में शान्तरस अङ्गीरस के रूप में और शृङ्गाररस उसके अङ्गभूत रस के रूप में स्वीकार्य किया जा सकता है।

महाभारत के ऋष्यशृङ्गोपाख्यान मे शृङ्गार रस अङ्गीरस के रूप में उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त यहां रौद्र और शान्त की भी स्थिति देखने को मिलती है किन्तु वह तदङ्गभूत रस के रूप में ही। महाभारत के ऋष्यशृङ्गोपाख्यान में ऋष्यशृङ्ग को लाने के लिए रोमपाद के द्वारा भेजी गई कामकला-विदग्ध वेश्याओं और तरुणतपस्वी ऋष्यशृङ्ग के मध्य जो वार्तालाप हुआ है वह सारा का सारा शृङ्गार रस से परिप्लावित मिलता है।[2] रोमपाद के द्वारा भेजी गई वेश्याओं ने ऋष्यशृङ्ग के पास पहुँचकर पारस्परिक अभिनन्दन

१- अस्माकमपि मुख्यानि फलानीमानि है द्विज।
गृहाण विप्र भद्रं ते भक्षयस्व च मा चिरम्।।
ततस्तास्तं समालिङ्गय सर्वा हर्षसमन्विता:।
मोदकान् प्रददुस्तस्मै भक्ष्यांश्च विविधा शुभान्।।
- वा० रा०, बाल०, १०। १९-२०

२- (क) ददौ च माल्यानि सुगन्धवन्ति
चित्राणि वासांसि च भानुमन्ति।
पेयानि चाग्र्याणि ततो मुमोद
चिक्रीड चैव प्रजहास चैव।।
- महा०, वन०, तीर्थयात्रा०, १११।१५

(ख) सा कन्दुकेनारमतास्य मूले,
विभज्यमाना फलिता लतेव।
गात्रैश्च गात्राणि निषेवमाणा-
समाश्लिषच्चासकृदृष्यशृङ्गम्।।
- महा०, वन०, तीर्थ०, १११।१६

(ग) द्रष्टव्य, महा०, वन०, तीर्थ, १११।१७-२०

एवं वार्तालाप के उपक्रम में नायक एवं नायिका के समुदाचार के अनुकूल उनसे भेंट की साथ ही सुगन्धित मालायें एवं विचित्र और चमकीले वस्त्र प्रदान किये इतना ही नहीं उन्होंने मुनिकुमार को अच्छे पेय पिलाये इससे वे अत्यन्त ही प्रसन्न हुए और उनके साथ हास-परिहास में लीन हो गये । उनमें से कोई वेश्या गेंद खेलने लगी, कोई हास-परिहास करने लगी तो कोई अपने अंगों को मोड़ती और फलों के भार से लदी हुई लतिका के समान झुक जाती और ऋष्यशृङ्•ग को वारम्बार अपने अंकों में भर लेती । उनके आश्रम में साल,अशोक और तिलक के वृक्ष अत्यन्त फूले फले थे । वे सब के सब शृङ्•गार रस के अनुकूल उद्दीपन विभाव का कार्य कर रहे थे । उनकी डालियों को झुकाकर कामकला विदग्धा मनोन्मत्ता वेश्यायें लज्जा का नाट्य सा करती हुई ऋष्यशृङ्•ग को लुभाकर अपने अनुकूल करने के लिए प्रयत्न करने लगीं । तरुण ऋष्यशृङ्•ग की आकृति में मनोनुकूल किंचित् विकार देखकर वेश्या ने बारम्बार उनके शरीर को आलिंगन के द्वारा निपीडित किया और विभाण्डक मुनि के आने का समय जानकर अग्नि-होत्र का बहाना बनाकर वहां से चलने लगी । उस समय ऋष्यशृङ्•ग अपलक नेत्रों से देखते रहे । उसके चले जाने पर उसके अनुराग से उन्मत्त तरुण मुनिकुमार ऋष्य-शृङ्•ग मदनव्यथा से व्याकुल होकर अचेत से हो गये और उनकी मनोवृत्ति उसी में लगी रही । वे लम्बी लम्बी सांसें खींचते हुए मदनव्यथा से व्यथित पड़े रहे । तदनन्तर अग्निहोत्र के समय जब विभाण्डक मुनि आये और उन्होंने उनके वर्तमान दशा के सम्बन्ध में पूछा तब उस समय उन्होंने उनसे जो उस वेश्या का जैसा स्वरूप और रूपमाधुर्य निरूपित किया साथ ही साथ अपनी कामव्यथा के सम्बन्ध में जो कुछ बताया वह सब का सब शृङ्•गार रस से ही परिप्लावित है ।[१] वह स्पष्ट कहते हैं कि उससे वियुक्त होने के कारण ही मैं अचेत हो गया हूं । मेरा सारा शरीर जलता सा जान पड़ता है । मैं चाहता हूं कि शीघ्र उसके पास चला जाऊं

१- द्रष्टव्य, महा०, वन०, तीर्थयात्रा० ११२ । १-१६

अथवा वही यहां नित्य मेरे पास रहे ।[१] पुनश्च जब उनके पिता विमाण्डक मुनि नियमित रूप से फल लेने के लिए आश्रम से बाहर-वन में चले गये तब वह वेश्या पुन: उनके पास आयी । उसे देखते ही ऋष्यशृङ्ग हर्ष विभोर हो उठे । और मिलने की उत्कण्ठा से दौड़ पड़े । उसके निकट जाकर वे स्वयं कहते हैं कि जब तक मेरे पिता लौटकर नहीं आते तब तक हम दोनों आपके आश्रम की ओर चल दें । इस प्रकार ऋष्यशृङ्ग और वेश्या का वार्तालाप तो शृङ्गार रस से लबालब भरा ही हुआ है इसके साथ ही साथ जब वह वेश्याओं के द्वारा लुभा करके रोमपाद (लोमपाद) के यहां लाये जाते हैं । तो उनका राजकुमारी शान्ता के साथ विवाह भी हो जाता है । अतएव यह स्पष्ट है कि महाभारत के ऋष्यशृङ्गोपाख्यान में आदि से लेकर अन्त तक रसराज शृङ्गार का ही प्रभुत्व है । इसके अतिरिक्त आश्रम से ऋष्यशृङ्ग को न पाकर क्रुद्ध हुए विमाण्डक मुनि का रोमपाद के यहां पहुंचना किन्तु उनके आतिथ्य और ऋष्यशृङ्ग को सपत्नीक एवं राजकीय वैभव से सम्पन्न देखकर सन्तुष्ट हो जाना इत्यादि स्थल क्रमश: रौद्र[२] और शान्त[३] रस की सृष्टि करते हुए दिखायी देते हैं ।

१- गतेन तेनास्मि कृतो विचेता
गात्रं च मे सम्परिदह्यतीव ।
इच्छामि तस्यान्तिकमाशु गन्तुं
तं चेह नित्यं परिवर्तमानम् ।। - महा०,वन०,तीर्थ०, ११२ ।१७

२-(क) अथोपायात् स मुनिश्चण्डकोप:
स्वमाश्रमं मूलफलं गृहीत्वा ।
अन्वेषणामाश्च न तत्र पुत्रं
ददर्श चुक्रोध ततो भृशं स: ।।

(ख) तत: स कोपेन विदीर्यमाण
आशङ्कमानो नृपतेर्विधानम् ।
अन्वेषणामाश्च न तत्र पुत्रं
स्तमङ्गराजं सपुरं सराष्ट्रम् ।।-महा०,वन०,तीर्थ०,११३। १४-१५

३- देशेषु देशेषु स पूज्यमान । स्तांश्चैव शृण्वन् मधुरान् प्रलापान् ।
प्रशान्तभूयिष्ठरजा: प्रहृष्ट: । समाससादाङ्गपतिं पुरस्थम् ।।
- महा०, वन०, तीर्थ०, ११३ ।१८

गङ्गावतरण-सन्दर्भ

वाल्मीकि रामायण के 'गङ्गावतरण-सन्दर्भ' में शान्तरस की स्थिति अङ्गीरस के रूप में देखी जाती है । गङ्गा को पृथवी पर उतारने के लिए अंशुमान[1] और दिलीप का प्रयत्न, भगीरथ की गोकर्णतीर्थ में कठोरतम तपश्चर्या, उनकी तपश्चर्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा का उन्हें दर्शन देना और गङ्गा को उन्हें प्रदान करने के लिए वचन देना, भगीरथ का गङ्गा को संभालने के लिए शिव की समाराधना करना,[2] शिव का तदर्थ उन्हें वचन देना,[3] भगीरथ का गङ्गा को पृथवी पर लाना, गङ्गा के पुनीत जल से पितरों का तर्पण करना[4] इत्यादि सभी स्थल भक्ति से अनुगत, शान्त रस से भरे पड़े हैं । इसके अतिरिक्त गङ्गा का शिव से मिलने[5] विषयक स्थल, शृङ्गाररस की पुष्टि[6] भी करता है । पुनश्च राजा जह्नु क्रुद्ध होकरके गङ्गा को आत्मसात्

१- द्रष्टव्य, वा० रा०, बालका०, ४२ । १-९

२- द्रष्टव्य, वा० रा०, बालकाण्ड, ४२ । १०-२५

३- प्रीतस्ते हं नरश्रेष्ठ करिष्यामि तव प्रियम् ।
शिरसा धारयिष्यामि शैलराजसुतामहम् ।।
- वा० रा०, बालका०, ४३ ।३

४- भगीरथो पि राजर्षिगङ्गामादाय यत्नत: ।
पितामहान भस्मकृतानपश्यद् गतचेतन: ।।
अथ तद्भस्मनां राशिं गङ्गासलिलमुत्तमम् ।
प्लावयत् पूतपाप्मान: स्वर्गं प्राप्ता रघूत्तम ।।
- वा० रा०, बाल का०, ४३ । ४०-४१

५- द्रष्टव्य, वा० रा०, वा० का०, ४३ । ५-११

६- द्रष्टव्य, वा० रा०, वा० का०, ४३ । ३५-३८

करना -- यह स्थल रौद्र रस की सृष्टि भी करता है । इस प्रकार रामायण के `गङ्गावतरण सन्दर्भ` में शान्तरस की अङ्गिता तथा शृङ्गार और रौद्र की गौड़ स्थिति परिलक्षित होती है ।

महाभारत के `गङ्गावतरण सन्दर्भ` में राजा जह्नु की घटना का उल्लेख नहीं है । ऐसी स्थिति में वहां रौद्र रस के अतिरिक्त रामायण के गङ्गावतरण सन्दर्भ से सम्बद्ध शान्त, शृङ्गार और भक्तिरस भी परिस्फुट रूप से मिलते हैं । जिनमें शान्त और भक्ति की अपेक्षा शृङ्गार का स्वर अधिक मुखर नहीं है । शान्त और भक्ति यही दो रस आदि से अन्त तक परिव्याप्त मिलते हैं । शृङ्गार की स्थिति शिव की जटा से होकर उतरती हुई गङ्गा को अभिसारिका रूप में देखने को मिलता है[1] यहां वह प्रमदा रमणी के समान कहीं सर्प की भांति कुटिल गति से बहती हुई दिखायी देती है तो कहीं ऊंचे से नीचे गिरकर चट्टानों से टकरा जाती है । कहीं श्वेत वस्तुओं के समान प्रतीत होने वाले घने फेन पुञ्जों से आच्छन्न दिखायी देती है तो कहीं जल की कल-कल नाद से मनोहर संगीत का गायन करती हुई सी दृष्टिगोचर होती है ।

इस प्रकार रामायण और महाभारत दोनों के `गंगावतरणसन्दर्भ` में शृंगार की अपेक्षा क्रमशः भक्ति एवं शान्तरस का स्वर अधिक मुखर प्रतीत होता है ।

१- फेनपुञ्जाकुलजला हंसानामिव पङ्क्तयः ।
क्वचिदाभोगकुटिला प्रस्खलन्ती क्वचित् क्वचित् ।
सा फेनपटसंवीता मत्तेव प्रमदाव्रजत् ।
क्वचिद् सा तोयनिनदैर्नदन्ती नादमुत्तमम् ।।

- महा०, वनपर्व०, तीर्थ०, १०६ ।११-१२

वसिष्ठ-विश्वामित्र सन्दर्भ

रामायण के `वसिष्ठ-विश्वामित्र सन्दर्भ` में अद्भुत, वीर, रौद्र और करुण रस की स्थिति दिखायी देती है। वसिष्ठ का कामधेनु की सहायता से सेनासहित विश्वामित्र का अपूर्व सत्कार करना,[1] नन्दिनी के शरीर से शक, यवन, हूण, पह्लव, आदि जाति के वीरों की उत्पत्ति,[2] वसिष्ठ के एक ही ब्रह्मदण्ड[3] से विश्वामित्र के समस्त दिव्यास्त्रों की पराजय इत्यादि स्थल अद्भुत रस की सृष्टि करते हैं। वसिष्ठ विश्वामित्र-सन्दर्भ में वीर रस की स्थिति सबसे अधिक व्यापक है। वसिष्ठ का विश्वामित्र को नन्दिनी को देने से बलपूर्वक अस्वीकार करना,[4] विश्वामित्र का वसिष्ठ की प्राणाभिमित्र प्रिय गौ नन्दिनी को बलपूर्वक ले जाना,[5] नन्दिनी का रुष्ट होकर भागते हुए वसिष्ठ के पास आना और उनकी आज्ञा से क्रुद्ध होकर शक, एवं पह्लव आदि वीरों की[6] सृष्टि करके विश्वामित्र की दुर्दमनीय सेना का संहार करना, विश्वामित्र द्वारा

१- द्रष्टव्य, वा० रा०, बालका०, सर्ग ५२

२- द्रष्टव्य, वा० रा०, बाल० सर्ग ५४ । १८-२३

३- वसिष्ठे जपतां श्रेष्ठे तद्दद्भुतमिवाभवत् ।
तानि सर्वाणि दण्डेन ग्रसते ब्रह्मण: सुत: ।।
- वा० रा०, बालका०, ५६ ।१३

४- द्रष्टव्य, वा० रा०, बालका०, ५३ ।२२-२५

५- कामधेनुं वसिष्ठो पि यदा न त्यजते मुनि: ।
तदास्य शबलां राम विश्वामित्रो न्वकर्षत ।।
- वा० रा०, बा० का०, ५४ ।१

६- द्रष्टव्य, वा० रा०, बालका०, ५४ ।५-२३

अपने तप: प्राप्त दिव्यास्त्रों का वसिष्ठ पर क्रुद्ध होकर प्रयोग करना,[1] उनके आश्रम को छिन्न-भिन्न करना, वसिष्ठ का विश्वामित्र के समक्ष ब्रह्मदण्ड लेकर[2] युद्ध के लिए प्रस्तुत होना, इत्यादि सारे स्थल रौद्रस से अनुगत वीररस से भरे पड़े हुए हैं । नन्दिनी के शरीर से वीरों के द्वारा विश्वामित्र के सौ पुत्रों के मारे जाने से विश्वामित्र को पुत्रों के आत्यन्तिक वियोग जन्य शोक[3] करुण रस की सृष्टि करता है । इस प्रकार वाल्मीकि रामायण के वसिष्ठ विश्वामित्र सन्दर्भ में वीर रस की अङ्गिगता तथा अद्भुत, रौद्र और करुण की गौणता परिलक्षित होती है ।

महाभारत के वशिष्ठविश्वामित्र सन्दर्भ में रामायण के `वसिष्ठ-विश्वामित्र सन्दर्भ` में पाये जाने वाले उपर्युक्त सभी रसों की स्थिति तो पूर्ववत मिलती ही है साथ ही यहां शृङ्गार की भी स्थिति उपलब्ध होती है । वसिष्ठ के पुत्र शक्ति और[4] अदृश्यन्ती के संयोग में तथा वसिष्ठ और कल्माषपाद की पट्टमहिषी[5] मदयन्ती के संयोग में सम्भोग शृंगार की स्थिति देखने को मिलती है । इसके अतिरिक्त शक्ति की मृत्यु के पश्चात अदृश्यन्ती[6] का उनसे आत्यान्तिक वियोग होना, इष्ट नाश जन्य शोक को परिपुष्ट करता है । फलत: यहां शोक स्थायिभावमूलक करुणरस की भी स्थिति मानी जा सकती है ।

१- द्रष्टव्य, वा० रा०, वालका०, ५६ ।१४-१५

२- द्रष्टव्य, वा० रा०, वालका०, ५६ ।१३

३- द्रष्टव्य, वा० रा०, वालका०, ५५ ।७-१०

४- द्रष्टव्य, महा०, आदिपर्व०, चैत्ररथ १७६ ।१५-१६

५- तत: प्रविष्टे राजर्षौ तस्मिंस्तत् पुरमुत्तमम् ।
राज्ञस्तस्याज्ञया देवी वसिष्ठमुपचक्रमे ।।
ऋतावथ महर्षि: स सम्बभूव तया सह ।
देव्या दिव्येन विधिना वसिष्ठ: श्रेष्ठभाग्मुनि: ।।
- महा० आदि०,चैत्ररथ, १७६।४३-४४

६- एवमुक्त्वा तत: सद्यस्तं प्राणैर्विप्रयुज्य च ।
शक्तिनं भक्षयामास व्याघ्र: पशुमिवोप्सितम् ।।
- महा०, आदि, चैत०, १७५।४०

शुन: शेपोपाख्यान

रामायण के शुन: शेपोपाख्यान में शान्त और रौद्र रसों की स्थिति दिखायी देती है । इनमें शान्तरस की स्थिति अधिक व्यापक है अपेक्षाकृत रौद्र के । अम्बरीष का अपने यज्ञ के सम्पादन के लिए महर्षि ऋचीक से उनके पुत्र शुन: शेप को खरीदना, शुन: शेप का तदर्थ सहर्ष उनके साथ पुष्कर तीर्थ में जाना । पुष्करतीर्थ में तपोरत विश्वामित्र से शुन: शेप का अपना वृत्तान्त सुनाकर उनसे आत्मरक्षा की याचना करना,[1] विश्वामित्र के द्वारा अपने तपो बल से शुन: शेप की रक्षा करना[2] साथ ही अम्बरीष के यज्ञ को भी पूर्ण करवाना इत्यादि सभी स्थल शान्त रस की सृष्टि करने में सहायक हैं । रौद्र की स्थिति इस उपाख्यान में उस स्थल पर देखने को मिलती है जब विश्वामित्र शुन: शेप की रक्षा के लिए अपने पुत्र मधुच्छन्द आदि के समक्ष इसका प्रस्ताव रखते हैं । और मधुच्छन्द आदि के द्वारा उनका प्रस्ताव अस्वीकृत रह जाता है फलत: वे क्रुद्ध होकर अपने मधुच्छन्द आदि पुत्रों को चाण्डाल[3] हो जाने का शाप दे देते हैं ।

महाभारत के शुन:शेपोपाख्यान की भी प्राय: यही स्थिति है । यहां भी शान्तरस का अङ्गित्व तथा रौद्र की तदङ्गता ही परिलक्षित होती है ।

१- द्रष्टव्य, वा० रा०, वालका०, सर्ग ६१

२- द्रष्टव्य, वा० रा०, वालका०, सर्ग ६२

३- द्रष्टव्य, वा० रा०, वालका०, ६२ ।९-१७

परशुरामोपाख्यान

वाल्मीकि रामायण के 'परशुरामोपाख्यान' में वीर और शान्त रसों की स्थिति देखने को मिलती है जिनमें वीररस की स्थिति अपेक्षाकृत अधिक व्यापक है। दशरथ की बात अनसुनी करके परशुराम का महाराघवराम को वैष्णव धनुष पर वाण चढ़ाने के लिए ललकारना,[1] और राम के द्वारा वैसा कर दिये जाने पर उनसे द्वन्द युद्ध करने के लिए चुनौती देना, महाराघवराम का क्रुद्ध होकर रघुवंश की प्रतिष्ठा के अनुकूल परशुराम की चुनौती को स्वीकार करना और वैष्णव धनुष को चढ़ाकर परशुराम के तप: प्राप्त पुण्यलोकों का विनाश[2] करना इत्यादि स्थल रौद्र रस से अनुगत वीररस से भरे पड़े हैं। इस उपाख्यान में शान्त रस की स्थिति उस समय देखने को मिलती है जब परशुराम राम को विष्णु का अवतार समझ लेते हैं[3] और फिर उनकी बन्दना करके पुन: महेन्द्रपर्वत पर तपस्या करने के लिए प्रस्थान करते हैं।

महाभारत के 'परशुरामोपाख्यान' में भी वीररस की ही अङ्गिता

१- द्रष्टव्य, वा० रा०, बा० का०, सर्ग ७५

२- द्रष्टव्य, वा० रा०, बा० का०, सर्ग ७६

३- तामिमां मद्गतिं वीर हन्तुं नार्हसि राघव ।
मनोजवं गमिष्यामि महेन्द्रं पर्वतोत्तमम् ।।
लोकास्त्वप्रतिमा राम निर्जितास्तपसा मया ।
जहि तान्शरमुख्येन मा भूत कालस्य पर्ययः ।।
अक्षय्यं मधुहन्तारं जानामि त्वां सुरेश्वरम् ।
धनुषोऽस्य परामर्शात् स्वस्ति तेऽस्तु परंतप ।।

- वा० रा०, बालका०, ७६।१५-१७

है । इसके अतिरिक्त इसमें करुण और शान्त रस ही परिलक्षित होते हैं किन्तु गौण रूप से । कार्तवीर्य अर्जुन के द्वारा जमदग्नि के यज्ञ धेनु का बलपूर्वक अपहरण किया जाना, परशुराम का पितृ दु:ख के निवारणार्थ कार्तवीर्य अर्जुन से घोर संग्राम करना और उसी संग्राम में सहस्रबाहु की सहस्रों भुजाओं का उच्छेदन करके उनका वध करना, सहस्रबाहु के पुत्रों के द्वारा जमदग्नि का मारा जाना,[1] पुन: परशुराम के द्वारा कार्तवीर्य अर्जुन के पुत्रों का विनाश करना,[2] तथा सम्पूर्ण वसुन्धरा को इक्कीस बार क्षत्रियों से शून्य करके उनके राज्य को स्वायत्त कर लेना[3] । ये सारे के सारे स्थल वीररस से भरे पड़े हुए हैं । कार्तवीर्य अर्जुन के पुत्रों के द्वारा जमदग्नि के मारे जाने पर पितृभक्त परशुराम[4] का शोक विह्वल होकर पिता के लिए फूट-फूट कर रोना करुण-रस की चरम अभि-व्यक्ति करता है । इस उपाख्यान में शान्त रस की स्थिति उस समय दिखायी देती है । जब परशुराम सम्पूर्ण पृथिवी को[5] क्षत्रियों से छीनकर उसे एक विशाल यज्ञ के अनुष्ठान के द्वारा महर्षि कश्यप को दान में देकर स्वयं परम् शान्त की उपासना करने के लिए महेन्द्रपर्वत पर चले जाते हैं ।

१- द्रष्टव्य, महा०, वन०, तीर्थ०, ११६ ।१६-२६

२- संक्रुद्धो तिबल: संख्ये शस्त्रमादाय वीर्यवान् ।
जघ्निवान् कार्तवीर्यस्य सुतानेकौ न्तकोपम: ।।
- महा०, वन०, तीर्थ०, ११७।७

३- तेषां चानुगता ये च क्षत्रिया: क्षत्रियर्षभ ।
तांश्च सर्वानवामृदाद राम: प्रहरतां वर: ।।
त्रिसप्तकृत्व: पृथिवीं कृत्वा नि:क्षत्रिया: प्रभु: ।
समन्तप चके प च चकार रुधिर ह्रदान् ।।
- महा०, वन०, तीर्थ०, ११७।८-६

४- द्रष्टव्य, महा०, वन०, तीर्थ० ११७ ।१-५

५- स प्रदाय महीं तस्मै कश्यपाय महात्मने ।
अस्मिन् महेन्द्रे शैलेन्द्रे वसत्यमितविक्रम: ।।
- महा०, वन०, तीर्थ०, ११७ ।१४

अगस्त्योपाख्यान

वाल्मीकिरामायण के `अगस्त्योपाख्यान` में शान्त और वीर रस की स्थिति मिलती है । जिनमें शान्त रस की स्थिति अधिक व्यापक है । लक्ष्मण और वैदेही के सहित मर्यादापुरुषोत्तम राम का महर्षि अगस्त्य के आश्रम[1] में प्रवेश, उनके आश्रम का प्रशान्त वातावरण, अगस्त्य के द्वारा राम का आतिथ्य, अगस्त्य और राम का पारस्परिक वार्तालाप, ऋषियों की रक्षा एवं लोक में शान्ति की स्थापना के लिए अगस्त्य का राम को दिव्यास्त्र प्रदान करना,[2] राम के पूछने पर उन्हें पञ्चवटी में आश्रम बनाकर,[3] रहने का परामर्श देना इत्यादि सभी स्थल शान्तरस की सृष्टि करते हैं । इल्वल और वातापि के द्वारा ऋषियों के ऊपर अपना शौर्य प्रदर्शन करना, अगस्त्य के द्वारा इल्वल और वातापि[4] का मारा जाना, राम का अगस्त्य से राक्षसों का संहार करने के लिए दिव्यास्त्रों को स्वीकार करना[5] इत्यादि स्थल वीररस से परिपूर्ण मिलते हैं । इस प्रकार रामायण के `अगस्त्योपाख्यान` में शान्तरस की अङ्गिता और वीर रस की गौणता परिलक्षित होती है ।

महाभारत के `अगस्त्योपाख्यान` में शृङ्गार, वीर और शान्तरस की स्थिति उपलब्ध होती है । जिनमें शृङ्गार रस की स्थिति अधिक व्यापक है । महर्षि अगस्त्य का विदर्भराज की रूपवती कन्या लोपामुद्रा के साथ

१- द्रष्टव्य, वा० रा०, अरण्यका०, सर्ग ११,

२- द्रष्टव्य, वा० रा०, अरण्यका०, सर्ग १२। ३२-३६

३- द्रष्टव्य, वा० रा०, अरण्यका०, सर्ग १३

४- द्रष्टव्य, वा० रा०, अरण्यका० ११। ५५-६६

५- द्रष्टव्य, वा० रा०, अरण्यका०, १२। ३२-३६

विवाह,[1] अगस्त्य का लोपामुद्रा को रमण करने के लिए निमन्त्रण देना, अगस्त्य और लोपामुद्रा का तदर्थ सम्वाद।[2] लोपामुद्रा की आकांक्षाओं की परितृप्ति के लिए अगस्त्य का धनार्जन और उसके द्वारा[3] लोपामुद्रा की समस्त आकांक्षाओं की पूर्ति करके उसके साथ यथेच्छ रमण करना, इत्यादि स्थल शृङ्गार से लबालब भरे हुए हैं। इस उपाख्यान में अगस्त्य के द्वारा अर्थोपार्जन के प्रसंग में निकले हुए अगस्त्य के द्वारा वातापि और[4] इल्वल का मारा जाना वीर रस का उद्रेक करता है। अगस्त्य ने पितरों के अनुरोध वश सन्तानोत्पत्ति के लिए विवाह करा स्वीकार करके लोपामुद्रा के साथ पाणिग्रहण संस्कार किया और उससे दृढस्यु नामक पुत्र को जन्म दिया[5] जिससे कि उनके पितरों श्राद्ध और तर्पण उपलब्ध हो सके। फलत: इस दृश्य से इस उपाख्यान के अंक में शान्त रस की स्थिति भी स्वीकार की जा सकती है।

१- दुहितुर्वचनाद् राजा सो गस्त्याय महात्मने।
लोपमुद्रां तत: प्रादाद् विधिपूर्वं विशाम्पते।।
- महा०, वनपर्व०, तीर्थ० ६७।७

२- द्रष्टव्य, महा०, वन०, तीर्थ०, ६७। १३-२५

३- द्रष्टव्य, महा०, वन०, तीर्थ, अध्याय ६८

४- द्रष्टव्य, महा०, वन०, तीर्थ०, ६८।२-१८

५- द्रष्टव्य, महा०, वन०, तीर्थ ६६।२५

पुरूरवा-उर्वशी सन्दर्भ

वाल्मीकि रामायण के 'पुरूरवा-उर्वशी-सन्दर्भ' में शृङ्गाररस के साथ-साथ रौद्ररस की भी स्थिति देखने को मिलती है। वरूणा में आसक्त उर्वशी को क्रुद्ध हुए मित्र का मर्त्यलोक में पुरूरवा के साथ विहार करने के लिए अभिशाप देना,[1] रौद्र के स्थायिभाव क्रोध को परिपुष्ट करता है। फलत: इस स्थल में रौद्र रस की स्थिति स्वीकार की जा सकती है। उर्वशी का पुरूरवा के साथ रहकर यथेच्छ रमण करना, आयु[2] आदि पुत्रों को जन्म देना इत्यादि स्थल शृङ्गार रस के सर्वोत्तम उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इसके अतिरिक्त पुरूरवा और उर्वशी के आत्यन्तिक वियोग की स्थिति में यदि शोक का परिपोष माना जाय तो शोक स्थायिभाव मूलक करुण रस की भी स्थिति स्वीकार की जा सकती है।

महाभारत के 'पुरूरवा उर्वशी सन्दर्भ' में भी यही स्थिति देखने को मिलती है।

१- द्रष्टव्य, वा० रा०, उत्तरकाण्ड, ५६ । २२-२५

२- द्रष्टव्य, वा० रा०, उत्तरका०, ५६ । २६-२७

ययात्युपाख्यान

वाल्मीकि रामायण और महाभारत दोनों के 'ययात्युपाख्यान' में शृङ्गार, रौद्र और शान्तरस की स्थिति उपलब्ध होती है । शर्मिष्ठा के द्वारा कुएं में गिराई गई शुक्राचार्य की रूपशी दुहिता देवयानी को ययाति के द्वारा निकाला जाना,[1] ययाति के पौरुषस्य, शौर्य, रूप, ऐश्वर्य आदि पर मुग्ध होकर देवयानी का उनसे प्रणय निवेदन करना ययाति के द्वारा अपने को राजर्षि बताकर पवित्र ब्रह्मर्षि कुल की कन्या देवयानी से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए अपने को अयोग्य सा बताना देवयानी का अन्तत: उस योग्यता का अपलाप करके ययाति से ही प्रणय सम्बन्ध स्थापित करने के लिए निश्चय करना,[2] और तदर्थ अपने पितृचरण शुक्राचार्य से भी सानुरोध निवेदन करना, चैत्ररथवन में शर्मिष्ठा आदि दासियों के साथ विहार करते हुए देवयानी से ययाति का पुर्नमिलन परस्पर प्रणयविषयक वार्तालाप, शुक्राचार्य के द्वारा शर्मिष्ठा आदि दासियों सहित देवयानी का राजर्षि ययाति के साथ विवाह,[3] देवयानी और शर्मिष्ठ का ययाति के प्रणायिनी के रूप में उनके यहां जाना, ययाति देवयानी का विहार, ययाति और शर्मिष्ठा का विहार तथा उनसे यदु आदि पुत्रों की उत्पत्ति,शर्मिष्ठ के साथ एकान्त में ययाति का मिलन तथा उससे द्रुहयु आदि पुत्रों की उत्पत्ति,[4] शुक्राचार्य के शाप से अभिशप्त ययाति[5] का

१- द्रष्टव्य, महा०, आदि०, सम्भवपर्व ७८ अध्याय

२- द्रष्टव्य, महा० आदि०, सम्भव०, अध्याय ८१

३- द्रष्टव्य महा०, आदि०, संभव, अध्याय ८१

४- द्रष्टव्य, महा०, आदि०, संभव, अध्याय ८२ एवं ८४

५- (क) द्रष्टव्य, वा० रा०, उत्तरका०, ५८-५६ सर्ग

(ख) ,, महा०, आदि०, सम्भव, अध्याय ८४

वृद्ध हो जाने पर अपनी अतृप्त कामवासनाओं की परितृप्ति के लिए पुरू से उसके यौवन को लेना और सहस्रों वर्षों तक कामोपभोग करना, इत्यादि सभी स्थल उद्दाम शृङ्गार रस से भरे हुए मिलते हैं । ऋतुस्नान के पश्चात एकान्त में शर्मिष्ठा के द्वारा ययाति से प्रणय निवेदन किये जाने पर ययाति का उसके साथ रमण करना, और द्रुह्यु आदि पुत्रों को जन्म देना इत्यादि तथ्यों को जानकर देवयानी का तदर्थ ययाति शर्मिष्ठा और उसके पुत्रों पर क्रुद्ध होना, पुनश्च इस वृत्तान्त को अपने पिता शुक्राचार्य से निवेदित करना और शुक्राचार्य का ययाति के ऊपर क्रोध करना और उन्हें अभिशप्त करना[1] इत्यादि सभी स्थल क्रोध स्थायिभाव मूलक रौद्ररस से आप्लावित देखे जा सकते हैं ।

पुरु के यौवन को लेकर सहस्रों वर्षों तक पुन: कामोपभोग करने के पश्चात भी सांसारिक भोगों की पौन: पुन्येन उद्घोष पूर्वक अनित्यता प्रतिपादित करना, परमपुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति के लिए पितृभक्त पुरू को

१- न मां त्वमवजानीषे दु:खितामवमानिताम् ।
वृत्तस्यावज्ञया ब्रह्मरिञ्छन्ती वृत्तजीविन: ।।
अवज्ञया च राजर्षि: परिभूय च भार्गव ।
मय्ययवज्ञां प्रयुङ्क्ते हि न च मां बहु मन्यते ।।
तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा कोपेनाभिपरीवृत: ।
व्याहर्तुमुपचक्राम भार्गवो नहुषात्मजम् ।।
यस्मान्मामवजानीषे नाहुष त्वं दुरात्मवान् ।
वयसा जरया जीर्ण: शैथिल्यमुपयास्यसि ।।

- वा० रा०, उत्तरका०, ५८ ।२०-२३

राज्य देकर स्वयं वाणप्रस्थ आश्रम का वर्णन करना,[1] कठोरतम तप करके स्वर्गलोक प्राप्त करना,[2] इन्द्र के पूछने पर ययाति का अपने पुत्र पुरु को दिये गये उपदेश की चर्चा करना,[3] पुण्य क्षीण होने पर ययाति का स्वर्ग से पतन, ययाति अष्टक-संवाद,[4] ययाति का वसुमान और शिवि के प्रतिग्रह को अस्वीकार करना, अष्टक आदि के साथ पुन: स्वर्ग में जाना[5] इत्यादि सभी स्थल शान्तरस से परिप्लावित देखे जा सकते हैं। इस प्रकार उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि वाल्मीकि रामायण और महामति कृष्णद्वैपायन वेदव्यास प्रणीत महाभारत इन दोनों महाप्रबन्धों के ययात्युपाख्यान में शृङ्गाररस का अङ्गीत्व तथा रौद्र एवं शान्त रसों की गौणता है।

१- द्रष्टव्य, महा०, आदि०, सम्भव०, अध्याय ८५

२- द्रष्टव्य, महा०, आदि०, सम्भव, अध्याय ८६

३- द्रष्टव्य, महा०, आदि०, सम्भव०, अध्याय ८७

४- द्रष्टव्य, महा०, आदि०, संभव०, अध्याय ८८-८९

५- द्रष्टव्य, महा०, आदि०, सम्भव०, अध्याय ९३

यद्यपि रामायण और महाभारत इन दोनों महाप्रबन्धों में परवर्ती काव्यशास्त्रों द्वारा स्वीकृत ऐसा कोई अलंकार नहीं है जिसके अनेकों प्रशस्य उदाहरण न मिल जायं तथापि इनमें अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास, विभावना, विशेषोक्ति, विरोधाभास, स्वभावोक्ति, काव्यलिङ्ग आदि अलंकारों का प्रयोग सर्वाधिक उपलब्ध होता है । चूंकि अनुसन्धाता के शोध का विषय विशेष रूप से रामायण और महाभारत में समान रूप से उपलब्ध उपाख्यानों तक ही परिसीमित है अतएव रामायण और महाभारत में अतिसंख्य रूप से पाये जाने वाले अनुप्रास आदि उक्त अलंकारों का उपर्युक्त उपाख्यानों के विशेष सन्दर्भ में संक्षिप्ततः सोदाहरण विवेचन कर देना भी शोध-प्रबन्ध की आवश्यक कड़ी प्रतीत होती है । फलतः अनुप्रास आदि उक्त अलंकारों का सोदाहरण विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है ।

अनुप्रास --

स्वर विषयक वैषम्य होने पर भी जहां शब्द (पद अथवा पदांश) का साम्य पाया जाय वहां 'अनुप्रास' की स्थिति मानी जाती है ।[१] दूसरे शब्दों में स्वरों की समानता चाहे हो अथवा न हो परन्तु एक ही सरीखे अनेक व्यंजन जहां उपलब्ध मिल रहे हों वहां 'अनुप्रास' अलंकार होता है ।

इस अनुप्रास के भी काव्यशास्त्रियों ने छेकानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास,

---

१- (क) अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत् ।
- साहित्यदर्पण १०।३ पूर्वार्द्ध

(ख) वर्णसाम्यमनुप्रासः ।
- काव्यप्रकाश, ९। सू० १०४

लाटानुप्रास, जैसे अनेक भेद बताये हैं । इनमें अनेक व्यंजनों की सकृत आवृत्ति छेकानुप्रास,[1] एक या अनेक व्यंजनों की असकृद आवृत्ति वृत्यनुप्रास,[2] तथा पद अथवा पद समूहात्मक पाद का अन्वयमात्र के भेद से आवृत्ति होने पर लाटानुप्रास[3] कहलाता है ।

उदाहरणार्थ --

प्रयत: प्रणतोभूत्वा गङ्गा समनुचिन्तयत् ।
तत: पुण्यजला रम्या राज्ञा समनुचिन्तिता ।।
- महा०, वन०, तीर्थ०, १०९ ।६

उपर्युक्त उदाहरण के "प्रयत: प्रणतो" इस अंश में प्, र् जैसे अनेक व्यंजनों की एकबार आवृत्ति हुई है अतएव यहां छेकानुप्रास की स्थिति मानी जानी चाहिए ।

१- (क) छेको व्यंजनसङ्घस्य सकृत्साम्यमनेकधा ।।
- साहि०, १० ।३

(ख) सो नेकस्य सकृत्पूर्व: ।
- काव्यप्रकाश, ९। सू० १०६

२- (क) अनेकस्यैकधा साम्यमसकृद्वाप्यनेकधा ।
एकस्य सकृदप्येष वृत्यनुप्रास उच्यते ।।
- साहि०, १०।४

(ख) एकस्याप्यसकृत्पर: ।
- काव्यप्रकाश, ९। सू० १०७

३- (क) शब्दार्थयो: पौनरुक्त्यं भेदे तात्पर्यमात्रत: ।
- साहि०, १० ।७ पूर्वार्द्ध

(ख) शाब्दस्तु लाटानुप्रासो भेदे तात्पर्यमात्रत: ।
- काव्यप्रकाश, ९ । सू० ११२

इसी प्रकार वृत्यनुप्रास का उदाहरण प्रस्तुत है --

तत: सुम लस्त्वरितं गत्वा त्वरितविक्रम: ।
समानयत् स तान् सर्वान् समन्तान् वेदपारगान् ।।
- वा० रा०, बा० का०, १२।६

स्पष्ट है कि यहां स् म्, त्, न आदि अनेक व्यंजनों की असकृद आवृत्ति हुई है अतएव यहां वृत्यनुप्रास की स्थिति मानी जानी चाहिए ।

उपमा --

जहां एक ही वाक्य में दो पदार्थों के वैधर्म्य रहित तथा वाच्य सादृश्य का उपनिबन्धन हो वहां उपमालंकार[१] की स्थिति मानी जाती है ।

उपमेय, उपमान, साधारणधर्म और वाचक शब्द ये चार उपमा के प्रमुख अंग माने गये हैं । इनमें उपमेय उसे कहते हैं जिसका साम्य प्रस्तुत किया जाता है । अथवा जो सादृश्य का अनुयोगी होता है । उपमान उसे कहते हैं जिसके द्वारा उपमेय की समता बतायी जाती है अथवा जो सादृश्य का प्रतियोगी होता है । उपमान और उपमेय के संगत-धर्म को साधारण-धर्म कहा जाता है जिसके आधार पर दोनों की तुलना की जाती है । औपम्य को प्रकट करने वाले 'इव' आदि शब्द ही वाचक शब्द कहलाते हैं । जिस उपमा में उपमेय

१- (क) साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयो: ।
- साहि० १०।१४

(ख) साधर्म्यमुपमाभेदे ।

- काव्यप्रकाश, १०। पृ० १२५

आदि चारों अंग शब्दोपात्त होते हैं वह पूर्णोपमा[१] कहलाती है किन्तु इसके विपरीत यदि उनमें से कोई एक भी अंग जहां शब्दोपात्त नहीं होता वहां लुप्तोपमा[२] की स्थिति मानी जाती है । आचार्य उद्भट ने उपमा के कुल १७ भेद, इनके टीकाकार राजानक तिलक ने २१ भेद, मम्मट ने २५ भेद, विश्वनाथ ने २७ भेद और पण्डितराज जगन्नाथ ने प्रथमत: २५ अथवा ३२ पुनश्च इनमें से प्रत्येक के पांच-पांच भेद बताकर कुल १२५ अथवा १६० भेद बताये हैं ।

उदाहरणार्थ --

इयं तु भवतोभार्या दोषरैतौर्विवर्जिता ।
श्लाघ्यां च व्यपदेश्या च यथादेवी ह्यरुन्धती ।।
- वा० रा०, अरण्यका०, १३।७

यहां `सीता` उपमेय, अरुन्धती `उपमान` नारीसुलभ दोषों का राहित्य साधारणधर्म तथा `इव` औपम्य वाचक शब्द के रूप में उपलब्ध है । इस प्रकार यहां उपमेय आदि उपमा के चारों अंग शब्दोपात्त हैं फलत: यहां पूर्णोपमा की स्थिति स्पष्ट है ।

२- (क) सा पूर्णा, यदि सामान्यधर्म औपम्यवाचि च ।
उपमेयं चोपमानं भवेद्वाच्यम् -
- साहि० १०।१५

(ख) पूर्णा लुप्ता च ।
उपमानोपमेयसाधारणधर्मोपमाप्रतिपादकानामुपादाने पूर्णा ;
एकस्य द्वयोस्त्रयाणां वा लोपे लुप्ता ।
- काव्यप्रकाश, १० । सू० १२६

३- लुप्ता सामान्यधर्मादेरेकस्य यदि वा द्वयो: ।
- साहि०, १० ।१७

इसी प्रकार यहां एक अन्य उदाहरण भी प्रस्तुत है -

स धन्वी बद्धतूणीर: खड्गगोधाङ्गुलित्रवान् ।
अन्वधावन्मृगं रामो रुद्रस्तारामृगं यथा ।।
- महा० वन०, रामो०, २७८ ।१६

यहां महाराघवराम और मृग उपमेय स्थानी, रुद्र और तारा उपमान स्थानी, अनुधावन् साधारण-धर्म तथा 'यथा' औपम्य का वाचक शब्द है । इस प्रकार यहां भी उपमेय आदि उपमा के चारों अंग शब्दोपात्त हैं । फलत: इसे भी पूर्णोपमा का उदाहरण मानना चाहिए ।

रूपक --

अपह्नव रहित विषय (उपमेय) में रूपित के आरोप को 'रूपक' कहा जाता है[1] दूसरे शब्दों में उपमेय और उपमान का जहां अभेदपूर्वक उपनिबन्ध हो वहां रूपक की स्थिति मानी जाती है ।

काव्यशास्त्रियों ने रूपक के भी साङ्ग[2], निरङ्ग[3] तथा

१- (क) रूपकं रूपितारोपो विषये निरपह्नवे ।।
- साहि०, १०।२८

(ख) तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययो: ।
- काव्यप्रकाश, १० । सू० १३६

२-(क) अङ्गिनो यदि साङ्गस्य रूपणं साङ्गमेव तत् ।
- साहि० १०।३०

(ख) समस्तवस्तुविषयं श्रौता आरोपिता यदा । -काव्यप्रकाश १०।सू०१४०

३- (क) निरङ्गं केवलस्यैव रूपणं तदपि द्विधा ।
- साहि० १०।३२

(ख) निरङ्गन्तु शुद्धम्
- काव्य०, १०।१४३ सूक्त

परम्परित[1] और इन तीनों के भी अनेक प्रभेदों का निरूपण किया है ।

उदाहरणार्थ --

वाक्यसायका वदनान्निष्पतन्ति
    यैराहत: शोचति रात्र्यहानि ।
शनैर्दुखं शस्त्रविषाग्निजातं
    तान् पण्डितो नावसृजेत् परेषु ॥।
        - महा० आदि०, सम्भव, ० ७६ प्रक्षिप्त

यहां `वाक्सायका:` पद में कटुवचन उपमेय पर सायक उपमान का अभेदपूर्वक आरोप किया गया है । अतएव यहां रूपक की स्थिति स्पष्ट है । पुनश्च यह भी अवधेय है कि यहां रूपक के समस्त अंगों का शब्दत: उपनिबन्धन नहीं है अतएव यह उदाहरण `केवल निरङ्ग रूपक` का कहा जा सकता है ।

इसी प्रकार दूसरा उदाहरण भी प्रस्तुत है —

कस्त्वं युवा वासवतुल्यरूप,
    स्वतेजसा दीप्यमानो यथाग्नि: ।
पतस्युदीर्णाम्बुधरान्धकारात्
    खात् खेचराणां प्रवरो यथार्क: ।।
        - महा०,आदि०, संभव ८७।११

१- (क) यत्र कश्चिदारोप: परारोपणकारणम् ।
    तत्परम्परितं श्लिष्टाश्लिष्टशब्दनिबन्धनम् ।।
        - साहि०, १०।२६

(ख) नियतारोपणोपाय: स्यादारोप: परस्य य: ।
    तत्परम्परितं श्लिष्टे वाच्ये भेदभाजि वा ।।
        - काव्य०, १०। १४५ सू०

यहां `उदीर्णाम्बुधरान्धकारात` इस पद में अम्बुधर (जलधर) पर अन्धकार के आरोप की बात कही गई है फलत: यहां भी `केवल निरङ्गरूपक` की स्थिति मानी जानी चाहिए ।

उत्प्रेक्षा -

उपमेय की उपमान के रूप में सम्भावना करना उत्प्रेक्षा नामक अलंकार कहलाती है।[१] आचार्यों ने उत्प्रेक्षा के भी अनेक भेदोपभेदों की चर्चा की है और इनके उत्प्रेक्षा वाचक शब्दों की ओर भी संकेत किया ।

उदाहरणार्थ -

इति कथयति रामे चन्द्रतुल्याननेन
प्रविरलतरतारं व्योम जज्ञे तदानीम् ।
अरुणकिरणरक्ता दिग् बभौ चैव पूर्वा
कुसुमरसविमुक्तं वस्त्रमागुण्ठितेव ।।
- वा० रा०, उत्तरका० ५६ ।२३

स्पष्ट है कि यहां `अरुणकिरण` उपमेय में `कुसुम रंग से रंगे हुए वस्त्र रूप उपमान की संभावना की गई है तथा `इव` उत्प्रेक्षा वाचक - शब्द के रूप में प्रस्तुत है । अतएव यहां उत्प्रेक्षालंकार की स्थिति स्पष्ट मानी जा सकती है ।

१- (क) भवेत् सम्भावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना ।
- साहि०, १०।४०

(ख) सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत् ।
- काव्यप्रकाश, १० । सू० १३७

इसी प्रकार उत्प्रेक्षा का एक अन्य उदाहरण भी प्रस्तुत है ।

तच्चाभिहत्य परिवर्तते सौ
वातेरितौ वृक्ष इवावा घूर्णन् ।
तं प्रेक्षत: पुत्रमिवामरणां
प्रीति: परा तात् रतिश्च जाता ।।

- महा०, वन०, तीर्थ० ११२ ।११

यहां असौ पद के वाच्य उपमेय स्थानी वेश्या में उपमान स्थानी वृक्ष की सम्भावना की गई है तथा उत्प्रेक्षा वाचक शब्द के रूप में 'इव' का उपादान किया गया है फलत: यहां भी उत्प्रेक्षा की स्थिति अधिक स्पष्ट है ।

व्यतिरेक -

साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ[1] के अनुसार उपमान की अपेक्षा उपमेय की अधिकता अथवा न्यूनता का वर्णन ही 'व्यतिरेकलंकार' है, परन्तु आचार्य मम्मट[2] उपमान से उपमेय के व्यतिरेक अर्थात आधिक्य मात्र को ही व्यतिरेकालंकार मानते हैं ।

१- आधिक्यमुपमेयस्योपमानान्न्यूनता थवा । व्यतिरेक: ।

- साहित्यदर्पण १० । ५२

२- उपमानाधदन्यस्य व्यतिरेक: स एव स: ।

- काव्यप्रकाश १० । सू० १५६

उदाहरणार्थ -

संरोहति शरैर्विद्धं वनं परशुना हतम् ।
वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम् ।।
- महा०, आदि० संभव० ८१ ।२५

यहां उपमान स्थानी शर (वाण) एवं परशु के द्वारा किये गये आघात की अपेक्षा उपमेय स्थानीय कटुवचन के द्वारा किये गये आघात के आधिक्य का वर्णन किया गया है फलत: यह श्लोक व्यतिरेकालंकार का उदाहरण बन जा रहा है ।

दृष्टान्त -

दो वाक्यों में धर्म सहित वस्तु अर्थात उपमान एवं उपमेय के प्रतिबिम्बन को `दृष्टान्त` कहते हैं ।[१] दूसरे शब्दों में जहां उपमेय वाक्य और उपमान वाक्य दोनों का बिम्बप्रतिबिम्बभाव वर्णित हो वहां दृष्टान्त संज्ञक अलंकार होता है ।

उदाहरणार्थ -

ज्ञाति: सुहृद स्वजनो वा यथेह
क्षीणं विवर्जं त्यज्यते मानवैर्हि ।
तथा तत्र क्षीणपुण्यं मनुष्यं
त्यजन्ति सद्य: सेश्वरा देवसङ्घा: ।।
- महा०, आदि०, सम्भव० ६०।२

१- (क) दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुन: प्रतिबिम्बनम् ।
- साहि० १०।५०

(ख) दृष्टान्त: पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बनम् ।
- काव्यप्रकाश १० । सू० १५५

यहां प्रथम दो चरण उपमान-वाक्य तथा अन्तिम दो चरण उपमेय-वाक्य से सम्बद्ध है और इन दोनों वाक्यों में बिम्बप्रतिबिम्बभाव भी है । जिसे इस रूप में भी स्पष्ट किया जा सकता है --

उपमान-वाक्य	उपमेयवाक्य
यथा	तथा
इह	तत्र
मानवै:	सेश्वरा: देवसङ्घा:
क्षीणवित्त	(क्षीणपुण्ये)
	क्षीणपुण्यं मनुष्यं
ज्ञाति: सुहृद: स्वजनोवा	सव:
हि	त्यजन्ति
त्यज्यते	

इस प्रकार यहां उपमान-वाक्य और उपमेय वाक्य दोनों में बिम्ब-प्रतिबिम्बभाव होने के कारण दृष्टान्त अलंकार की स्थिति अत्यन्त सुस्पष्ट हो जाती है ।

अर्थान्तरन्यास :-

जहां विशेष द्वारा सामान्य का अथवा सामान्य द्वारा विशेष का,[१]

१- (क) सामान्यं वा विशेषस्तेन वा यदि ।
कार्यं च कारणेनेदं कार्येण च समर्थ्यते ।
साधर्म्येणेतरेणार्थान्तरन्यासो ऽष्टधा मत: ।।
- साहि०, १०। ६१

(ख) सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते ।
यत्तु सो ऽर्थान्तरन्यास: साधर्म्येणेतरेण वा ।।
- काव्यप्रकाश, १० । सू० १६५

कारण द्वारा कार्य का अथवा कार्य द्वारा कारण का, साधर्म्य अथवा वैधर्म्य के माध्यम से समर्थन किया जाता है वहां 'अर्थान्तरन्यास' अलंकार होता है।

उदाहरणार्थ --

न मां त्वमवजानीषे दुखिततामवमानिताम् ।
वृक्षस्यावज्ञया वृक्षमश्छिद्यन्ते वृक्षजीविनः ।।
- वा० रा०, उत्तरका०, ५८ ।२०

यहां ययाति और शर्मिष्ठा के द्वारा अपमानित देवयानी अपने पितृचरण कविपुत्र शुक्राचार्य से निवेदन कर रही है कि क्या तुम नहीं जानते हो कि मैं कितनी दुखित एवं अपमानित हूं। भगवन्। वृक्ष के प्रति अवज्ञा होने के कारण वृक्षजीवी पत्र-पुष्प आदि काट दिये जाते हैं। (अर्थात् आपके प्रति ययाति शर्मिष्ठा का अवज्ञा भाव होने के कारण मैं यहां दुःखित एवं अपमानित हूं। क्योंकि वृक्ष के प्रति अवज्ञा होने के कारण लोग उसके आश्रित रहने वाले पत्र पुष्प शाखा आदि को ही काटते हैं।

इस प्रकार यहां स्पष्ट है कि विशेष का सामान्य के द्वारा साधर्म्य के माध्यम से समर्थन किया गया है। अतएव यहां साधर्म्य के द्वारा सामान्य से विशेष का समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास अलंकार माना जाना चाहिए।

इसी प्रकार इसका दूसरा उदाहरण भी प्रस्तुत है --

येन केनचिदार्तानां ज्ञातीनां सुखमावहेत् ।
अतस्त्वामनुयास्यामि यत्र दास्यति ते पिता ।।
- महा०, आदि०, संभव०, ८०। २४

यहां अपने पिता वृषपर्वा के द्वारा देवयानी के पास भेजी हुई उसकी पुत्री शर्मिष्ठा, देवदानी से निवेदन कर रही है- चूंकि प्रत्येक जाति के व्यक्ति को प्रायः वही करना चाहिए जिससे कि उसकी जाति के दुःखी लोगों को सुख

मिले इसलिए अपनी जाति की रक्षा के लिए मैं भी तुम्हारी दासी होना स्वीकार करती हूं । तुम्हारे पिता शुक्राचार्य जहां भी तुम्हें देंगे । मैं भी तुम्हारा अनुसरण करती हुई तुम्हारे साथ वहीं जाऊंगी ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि यहां साधर्म्य के माध्यम से सामान्य के द्वारा विशेष का समर्थन किया गया है अतएव यहां साधर्म्य के द्वारा सामान्य से विशेष का समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास अलंकार होगा ।

विभावना :-

कारण के अभाव में भी यदि कार्योत्पत्ति का वर्णन किया जाता है तो उसे 'विभावना' अलंकार[१] कहते हैं । काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट क्रिया[२] के प्रतिषेध होने पर भी फलाभिव्यक्ति होने को विभावनालंकार मानते हैं ।

उदाहरणार्थ -

परमापद्गतस्यापि नाधर्मे मे मतिर्भवेत् ।
अशिक्षितं च भगवन् ब्रह्मास्त्रं प्रतिभातु मे ।।
- महा०,वन०, रामो० २७५।३०

यद्यपि ब्रह्मास्त्र के प्रयोग और उपसंहार की विधि के सहसा स्फुरण का

१- विभावना विना हेतुं कार्योत्पत्तिर्यदुच्यते ।
उक्तानुक्तनिमित्तत्वाद् द्विधा सा परिकीर्तिता ।।
- साहि०, १० । ६६

२- क्रियाया: प्रतिषेधे पि फलव्यक्तिर्विभावना ।
- काव्यप्रकाश १० । सू० १६२

कारण उसका प्रशिक्षण होता है परन्तु यहां बिना प्रशिक्षण के ही ब्रह्मास्त्र के प्रयोग एवं उपसंहार की विधि के स्फुरण की बात कही गई है इस प्रकार यहां बिना कारण के ही कार्य के उत्पत्ति की विभावना (प्रकल्पना) होने से विभावना अलंकार माना जाना चाहिए ।

विशेषोक्ति :-

कारण (हेतु) के होते हुए भी फलाभिव्यक्ति न होने पर 'विशेषोक्ति' अलंकार होता है[1]।

उदाहरणार्थ -

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ।।
- महा०, आदि०, सम्भव०, ७५।५०

यद्यपि आकण्ठ विषयोभोग करने के पश्चात तद्विषयक इच्छा की शान्ति होनी चाहिए किन्तु यहां विषयों को भोगने के पश्चात भी तद्-विषयक इच्छा की अशान्ति का प्रतिपादन किया गया है । इस प्रकार यहां विषयोभोग रूप कारण के होने पर भी तद् विषयक आकांक्षा की शान्ति रूप कार्य का वर्णन न होने से विशेषोक्ति अलंकार मानना चाहिए ।

विरोधाभास :-

जहां जाति का जाति, गुण, क्रिया एवं द्रव्य इन चारों के

१- (क) सति हेतौ फलाभावे विशेषोक्तिस्तथा द्विधा ।
- साहि०, १०। ६७ पूर्वार्द्ध

(ख) विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावचः ।
- काव्यप्रकाश १० । सू० १६३

साथ ; गुण का गुण क्रिया एवं द्रव्य इन तीनों के साथ, क्रिया का क्रिया एवं द्रव्य इन दोनों के साथ तथा द्रव्य का द्रव्य के साथ विरुद्ध-सा वर्णन प्रतीत हो वहां विरोध अथवा विरोधाभास[1] अलंकार की स्थिति मानी जाती है । इस प्रकार विरोधाभास के दस भेद माने गये हैं । यथा -

१- जाति-जाति

२- जाति-गुण

३- जाति-क्रिया

४- जाति-द्रव्य

५- गुण-गुण

६- गुण-क्रिया

७- गुण-द्रव्य

८- क्रिया-क्रिया

९- क्रिया-द्रव्य

१०- द्रव्य-द्रव्य में विरोधाभास होना ।

उदाहरणार्थ -

तं तदा सुसमिद्धो पि न ददाह हुताशन: ।
दीप्यमानो प्यमित्रघ्न शीतो ग्निरभवत् तत: ।।
- महा०, आदि०, चैत्र० १७५ ।४७

१- (क) जातिश्चतुर्भिर्जात्याद्यैर्गुणो गुणादिभिस्त्रिभि: ।
क्रिया क्रियाद्रव्याभ्यां यद् द्रव्यं द्रव्येण वा मिथ: ।
विरुद्धमेव भासेत विरोधो सौ दशाकृति: ।।
- साहित्यदर्पण १० ।६७-६८

(ख) विरोध : सो विरोधो पि विरुद्धत्वेन यद्वच: ।
- काव्यप्रकाश, १० । १६६ सू०

यहां बताया गया है कि ब्रह्मर्षि वसिष्ठ आत्महत्या करने के उद्देश्य से जलती हुई अग्नि में कूदे किन्तु वह जलती हुई अग्नि भी उनके लिए शीतल बनी रही और उन्हें जलायी नहीं ।

यद्यपि दाहकता अग्नि का सहज धर्म है किन्तु यहां उसका शीतल होना वर्णित है । इस प्रकार यहां गुण का गुण के साथ आपाततः विरोध सा वर्णित किया गया है । परन्तु इसमें वसिष्ठ की तपस्या के प्रभाव को कारण के रूप में स्वीकार कर लेने पर उक्त विरोध का परिहार हो जाता है । अतएव यहां गुण के साथ गुण का विरोध रूप विरोधाभास नामक अलंकार माना जाना चाहिए ।

स्वभावोक्ति :-

प्रतिभासम्पन्न कवि और सहृदय के द्वारा जानने योग्य डिम्भ आदि (बच्चों तथा पशुओं आदि) की स्वाभाविक क्रियाओं तथा उनके स्वरूपों का वर्णन स्वभावोक्ति अलंकार कहलाता है ।[1]

उदाहरणार्थ -

मण्डूकनेत्रां स्वकारां पीनोधसमनिन्दिताम् ।
सुवालधिं शङ्कुकर्णां चारुशृङ्गां मनोरमाम् ।।
पुष्टायतशिरोग्रीवां विस्मितः सोऽभिवीक्ष्यताम् ।
अभिनन्द्य स तां राजा नन्दिनीं गाधिनन्दनः ।।

- महा०, आदि०, चैत्र० १७४ ।१४-१५

स्पष्ट है कि उपर्युक्त श्लोकों में वसिष्ठ की होमधेनु नन्दिनी के

१- (क) स्वभावोक्तिर्दुरुहार्थस्वक्रियारूपवर्णनम् ।
- साहि०, १०।९२

(ख) स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादेः स्वक्रियारूपवर्णनम् ।
- काव्यप्रकाश, १०। १६८ सू०

स्वरूप का वर्णन किया गया है । अतएव यहां लक्षणानुसार स्वभावोक्ति अलंकार माना जाना चाहिए ।

काव्यलिङ्ग -

जहां कोई वाक्यार्थ अथवा पदार्थ किसी काव्योक्ति का हेतु(लिङ्ग) बने वहां काव्यलिंग[१] अलंकार होता है ।

उदाहरणार्थ -

धिग् बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजो बलं बलम् ।
एकेन ब्रह्मदण्डेन सर्वास्त्राणि हतानि मे ।।
- वा० रा०, बा० का० ५६ ।२३

यहां क्षत्रिय बल को धिक्कारने का कारण वसिष्ठ के एक ही ब्रह्मदण्ड के द्वारा विश्वामित्र के समस्त अस्त्रों का पराजित होना है । इस प्रकार यहां द्वितीय वाक्यार्थ हेतु के रूप में उपन्यस्त किया गया है अतएव यहां काव्यलिंग अलंकार होगा ।

न गजं न रथं नाश्वं जीर्णा भुङ्क्ते न च स्त्रियाम् ।
वाक्यसङ्गश्चास्य भवति तां जरां नाभिकामये ।।
- महा०, आदि०, संभव, ८४ ।१६

स्पष्ट है कि यहां जरा कि अनाभिकामना के हेतु के रूप में हम तीन चरण उपन्यस्त है । अतएव यहां भी काव्यलिंग अलंकार ही होगा ।

१- (क) हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्ग निगद्यते ।।
- साहि०, १० ।६२

(ख) काव्यलिङ्ग हेतोर्वाक्यपदार्थता ।
- काव्यप्रकाश १० ।१७४

वाल्मीकिरामायण में अधिकांशत: अनुष्टुप् छन्द का ही प्रयोग हुआ है । इसके अतिरिक्त सर्गान्त में इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, वंशस्थ,आदि का भी प्रयोग उपलब्ध होता है । महाभारत के `रामोपाख्यान` में केवल अनुष्टुभ् छन्द का प्रयोग किया गया है ।

बाल्मीकिरामायण के `ऋष्यशृङ्गोपाख्यान ( वा० का० ६-१५ ) में अनुष्टुभ् उपेन्द्रवज्रा और वंशस्थ तीन छन्दों का प्रयोग हुआ है । इनमें उपेन्द्रवज्रा का प्रयोग चौदहवें सर्ग के अन्तिम श्लोक में तथा वंशस्थ का प्रयोग १५ वें सर्ग के अन्तिम दो श्लोकों में हुआ है । महाभारत के `ऋष्यशृङ्गोपाख्यान` जिसका वर्णन वनपर्व के `तीर्थयात्रापर्व के चार (११०-१३) अध्यायों में है, में अनुष्टुभ्, उपजाति, इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा आदि का प्रयोग हुआ है ।

वाल्मीकिरामायण के `गंगावतरण सन्दर्भ ` में केवल अनुष्टुभ् छन्द का प्रयोग मिलता है । इसी प्रकार महाभारत के भी `गंगावतरण सन्दर्भ` में अनुष्टुभ् छन्द का ही प्रयोग किया गया है ।

वाल्मीकि रामायण के `वसिष्ठ-विश्वामित्र` सन्दर्भ में अनुष्टुभ् छन्द का ही प्रयोग हुआ है । इसी प्रकार महाभारत के भी `वसिष्ठ विश्वामित्र सन्दर्भ ` में अनुष्टुभ् छन्द का ही प्रयोग किया गया है ।

वाल्मीकि रामायण के `शुन: शेपोपाख्यान` जिसका वर्णन बालकाण्ड के ६१ वें एवं ६२ वें सर्ग में मिलता है, में केवल अनुष्टुभ् छन्द का प्रयोग हुआ है । इसी प्रकार महाभारत के `शुन: शेपोपाख्यान` जिसकी चर्चा अनुशासनपर्व के तृतीय अध्याय के तीन श्लोकों (६-८) में मिलती है में भी मात्र अनुष्टुभ् छन्द का ही प्रयोग किया गया है ।

वाल्मीकि रामायण के `परशुरामोपाख्यान` जिसका वर्णन बालकाण्ड के तीन (७४-६) सर्गों में मिलता है, में अनुष्टुभ् छन्द का प्रयोग हुआ है । इसी प्रकार महाभारत के `परशुरामोपाख्यान` जिसका वर्णन वनपर्व के

'तीर्थयात्रापर्व' के (११५-१७) अध्यायों में है, में भी केवल अनुष्टुभ् छन्द का प्रयोग किया गया है ।

वाल्मीकि रामायण के 'अगस्त्योपाख्यान' जिसका वर्णन अरण्यकाण्ड के तीन (११-१३) सर्गों में है, में अनुष्टुभ् और वंशस्थ दो छन्दों का प्रयोग हुआ है । इनमें वंशस्थ का प्रयोग १३ वें सर्ग के अन्तिम श्लोक में ही है । महाभारत के 'अगस्त्योपाख्यान' जिसका वर्णन वनपर्व के 'तीर्थयात्रापर्व' के चार (९६-९९) अध्यायों में मिलता है, में केवल अनुष्टुभ् छन्द का प्रयोग हुआ है ।

वाल्मीकि रामायण के 'पुरूरवा-उर्वशी सन्दर्भ' जिसका वर्णन उत्तरकाण्ड के ५६ वें सर्ग में है, में अनुष्टुभ् और उपजाति दो छन्दों का प्रयोग हुआ है इनमें उपजाति का प्रयोग सर्ग के अन्तिम श्लोक में ही है । महाभारत के पुरूरवा-उर्वशीसन्दर्भ (आदिपर्व-सम्भवपर्व) में केवल अनुष्टुभ् छन्द का प्रयोग किया गया है ।

वाल्मीकि रामायण के 'ययात्युपाख्यान' जिसका वर्णन उत्तरकाण्ड के दो (५८-९) सर्गों में है, में अनुष्टुभ्, उपजाति और मालिनी तीन छन्दों का प्रयोग मिलता है । इनमें उपजाति और मालिनी का प्रयोग क्रमश: ५८ वें एवं ५९वें सर्ग के अन्तिम श्लोक में हुआ है । महाभारत के ययात्युपाख्यान जिसका वर्णन आदिपर्व के सम्भवपर्व के उन्नीस (७५-९३) अध्यायों में है, में अनुष्टुभ्, इन्द्रवज्रा, उपजाति आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है ।

उपर्युक्त विवेचन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि रामायण और महाभारत के उक्त उपाख्यानों में मुख्य-रूप से अनुष्टुभ्, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, वंशस्थ और मालिनी का प्रयोग हुआ है । फलत: उक्त उपाख्यानों में विशेष रूप से प्रयुक्त इन छन्दों की सोदाहरण विवेचना भी आवश्यक प्रतीत होती है अतएव अब इन छन्दों की क्रमश: विवेचना भी प्रस्तुत की जा रही है ।

अनुष्टुप्—

जिस छन्द में प चम अक्षर प्रत्येक चरण में लघु हों परन्तु सप्तम अक्षर केवल दूसरे तथा चौथे चरण में लघु हों । षष्ठ अक्षर प्रत्येक चरण में गुरु हो, वह `अनुष्टुप्' छन्द कहलाता है ।

उदाहरणार्थ -

दिलीपस्तु महातेजा यज्ञैर्बहुभिरिष्टवान् ।
त्रिंशद्वर्षसहस्राणि राजा राज्यमकारयत् ।।
- वा० रा०, बाल० का० ४२ ।८
अथवा

रामस्य जामदग्न्यस्य चरितं देवसम्मितम् ।
हैहयाधिपतेश्चैव कार्तवीर्यस्य भारत ।।

स्पष्ट है कि उपर्युक्त दोनों छन्दों के प्रत्येक चरण में पंचम अक्षर लघु तथा षष्ठ गुरु एवं द्वितीय और चतुर्थ चरण में सप्तम अक्षर लघु है । फलत: दोनों छन्द अनुष्टुप् के उदाहरण बन जा रहे हैं ।

इन्द्रवज्रा -

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में दो तगण एक जगण तथा दो गुरुवर्ण क्रमश: हों, उन्हें इन्द्रवज्रा कहते हैं । यति-चरणान्त में होती है ।

उदाहरणार्थ -

चन्द्रोऽपि साचिव्यमिवास्य कुर्वं

स्तारागणैर्मध्यगतो विराजन् ।

ज्योत्स्नावितानेन वितस्य लोका
नुत्तिष्ठते नैकसहस्र रश्मिः ॥

- वा० रा०, सु० का० २। ५७

अथवा

वक्त्रं च तस्याद्भुतदर्शनीयं
प्रव्याहृतं ह्लादयतीव चेतः ।
पुंस्कोकिलस्येव च तस्य वाणी
तां शृण्वतो मे व्यथितोन्तरात्मा ॥

- महा०, वन०, तीर्थयात्रा० ११२ ।७

स्पष्ट है कि उपर्युक्त दोनों छन्दों के प्रत्येक चरण में क्रमशः दो तगण, एक जगण तथा दो गुरुवर्ण हैं । अतएव ये दोनों छन्द इन्द्रवज्रा के उदाहरण हैं ।

उपेन्द्रवज्रा -

जिस छन्द में क्रमशः जगण, तगण, जगण और उसके बाद दो गुरुवर्ण आयें उन्हें उपेन्द्रवज्रा कहते हैं । इस छन्द में यति चरणान्त में होती है ।

उदाहरणार्थ -

स तस्य वाक्यं मधुरं निशम्य
प्रणम्य तस्मै प्रयतो नृपेन्द्रः ।

जगाम हर्षं परमं महात्मा

तमृष्यशृङ्गं पुनरप्युवाच ।।

- वा० रा०, वाल० का०, १४ ।६०

स्पष्ट है कि इन छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमश: जगण, तगण, जगण, और उसके बाद दो गुरुवर्ण आये हैं । अतएव यह उपेन्द्रवज्रा का उदाहरण होगा ।

उपजाति

जिस छन्द के दो चरण 'इन्द्रवज्रा' और उपेन्द्रवज्रा के लक्षण से युक्त हों उन्हें उपजाति कहते हैं । दूसरे शब्दों में जिस छन्द में इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा का मिश्रण हो ।उन्हें उपजाति कहते हैं ।

उदाहरणार्थ -

स एव मुक्त्वा द्विजपुङ्गवाग्य:

सुतां समाश्वास्य च देवयानीम् ।

पुनर्ययौ सूर्यसमान तेजा

दत्त्वा च शापं नहुषात्मजाय ।।

- वा० रा०, उत्तरका० ५८ । २५

अथवा

सा कन्दुकेनारमतास्य मूले

विभज्यमाना फलिता लतेव ।

गात्रैश्च गात्राणि निषेवमाणा

समाक्लिषच्चासकृदृश्यशृङ्गम् ।।

स्पष्ट है कि उपर्युक्त दोनों छन्दों में इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा का मिश्रण है । अतएव ये दोनों छन्द उपजाति के उदाहरण होंगे । इनमें प्रथम जाया उपजाति का उदाहरण और द्वितीय भद्रा उपजाति का उदाहरण ।

वंशस्थ

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः जगण, तगण, जगण और रगण आये उसे वंशस्थ कहा जाता है । इस छन्द में यति चरणान्त में होती है ।

उदाहरणार्थ -

तमुद्धतं रावणमुग्रतेजसं

प्रवृद्धदर्पं त्रिदशेश्वरद्विषम् ।

विरावणं साधुतपस्विकण्टकं

तपस्विनामुद्धरं तं भयावहम् ।।

- वा० रा०, बा० का० १५ । ३३

स्पष्ट है कि इस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः जगण, तगण, जगण, और रगण आये हैं अतएव यह छन्द वंशस्थ का उदाहरण बन जा रहा है ।

मालिनी

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः नगण, नगण, मगण, यगण तथा यगण आयें साथ ही साथ भोगी या नाग (= ८) और लोक (= ८) संख्यक अक्षरों पर यति हो उसे मालिनी कहते हैं ।

उदाहरणार्थ -

> इति कथयति रामे चन्द्रतुल्याननेन
>
> प्रविरलतरतार व्योम जज्ञे तदानीम् ।
>
> अरुणकिरणरक्ता दिग् बभौ चैव पूर्वा
>
> कुसुम रस विमुक्तं वस्त्रमागुण्ठितेव ॥
>
> - वा० रा०, उत्तरका०, ५६ ।२३

स्पष्ट है कि इस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः नगण, मगण, यगण तथा यगण आये और आठ एवं सात वर्णों पर यति है । फलतः यह छन्द मालिनी का उदाहरण होगा ।

इस प्रकार करुणानिधि ब्रह्मर्षि वाल्मीकि द्वारा प्रणीत आदि-काव्य 'रामायण' एवं महामति कवि वेधा कृष्णद्वैपायन- वेदव्यास द्वारा विरचित 'महाभारत' इन दोनों महाप्रबन्धों में समान रूप से पाये जाने वाले, रामोपाख्यान, ऋष्यशृङ्गोपाख्यान, गंगावतरण-सन्दर्भ, वसिष्ठ-विश्वामित्र-सन्दर्भ, शुनः शेपोपाख्यान, परशुरामोपाख्यान, अगस्त्योपाख्यान ; पुरूरवा-उर्वशी-सन्दर्भ और ययात्युपाख्यान के काव्यशास्त्रीय विवेचन के परिपेक्ष्य में रस-विवेचन, अलंकार-विवेचन एवं छन्दो विवेचन के साथ-साथ प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध अपनी उपसंहारावस्था को प्राप्त हो रहा है ।

-0-

सहायक-ग्रन्थ-सूची

सहायक-ग्रन्थ-सूची

संस्कृत-ग्रन्थ

१- अग्निपुराण : आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज पूना, सन् १६०० ई० पंचानन तर्करत्न द्वारा सम्पादित, वंगवासी प्रेस, कलकत्ता ।

२- ऐतरेयब्राह्मण : सत्यव्रत सामश्रमी, कलकत्ता १६००

३- ऋग्वेद भाषा-भाष्य : दोनों भाग दयानन्द संस्थान यन्त्रालय, नई दिल्ली-५

४- ऋग्वेद भाष्य : आचार्य सायण, वैदिक संशोधन मण्डल, पूना, १६७६

५- ऋग्वेद भाष्य : स्वामीदयानन्द, वैदिक पुस्तकालय, अजमेर १६७२

६- कठोपनिषद : शांकरभाष्य सहित, गीताप्रेस गोरखपुर चतुर्थ-संस्करण

७- काव्यप्रकाश : आचार्यमम्मट, सा० डा० निवास मिश्र साहित्य भण्डार शिक्षा साहित्य प्रकाशक सुभाषनगर मेरठ, नवम् संस्करण १६८५

८- काव्यप्रकाश : आचार्यमम्मट सा० आचार्य विश्वेश्वर १६६८

६- कूर्मपुराण : पंचानन तर्करत्न द्वारा सम्पादित, वंगवासी प्रेस कलकत्ता । बं० स० १३३२

१०- केनोपनिषद : शाकरभाष्यसहित, गीताप्रेस गोरखपुर

११- कौषीतकि-उपनिषद : विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर के पुस्तकालय में उपलब्ध

१२- गरुडपुराण : पंचानन तर्करत्न द्वारा सम्पादित वंगवासी प्रेस कलकत्ता, वं० स० १३१४

१३- छन्दो लङ्कार सौरभम् : डा० राजेन्द्र मिश्र, अक्षयवट प्रकाशन इलाहाबाद, तृतीय संस्करण १९८५

१४- छान्दोग्योपनिषद : स० घनश्यामदास जालान गीताप्रेस गोरखपुर स० २०११ द्वितीय संस्करण

१५- जैमिनीयब्राह्मण : डी० ए० वी० कालेज लाहौर, १९२७

१६- ताण्ड्य ब्राह्मण : सायणभाष्य के साथ चौखम्भा काशी से प्रकाशित

१७- तैत्तिरीय ब्राह्मण : एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल कलकत्ता, १८५९ ।

१८- तैत्तिरीय संहिता : सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, सतारा १९४५

१९- तैत्तिरीय-संहिता-भाष्य : आचार्य सायण, कलकत्ता, १८६०-१८९९

२०- दशरूपक : धनंजय, स० डा० श्रीनिवासशास्त्री
साहित्य भण्डार शिक्षा साहित्य प्रकाशक
सुभाषनगर मेरठ पंचम संस्करण, १९८३

२१- दशरूपक : धनंजय, स० डा० भोलाशंकर व्यास, १९६७

२२- देवीभागवतपुराण : पंचानन तर्करत्न द्वारा सम्पादित,
वंगवासी प्रेस, कलकत्ता ।

२३- ध्वन्यालोक (दीपशिखा टीका) : डा० चण्डिकाप्रसाद शुक्ल,
विश्वविद्यालय प्रकाशन,
वाराणसी प्रथम संस्करण १९८३ ।

२४- ध्वन्यालोक (लोचन) : डा० रामसागर त्रिपाठी,
मोतीलाल बनारसीदास,
प्रथम संस्करण १९६३

२५- नाट्यशास्त्र भरतमुनि : स० साहित्याचार्य मधुसूदन शास्त्री
आर० के० बेरी महाशयेन
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय प्रेस, वाराणसी,
वि० स० २०२८

२६- निरुक्त : आचार्य यास्क, मोतीलाल बनारसीदास,
१९६७।

२७- निरुक्त : आचार्य यास्क, स० वैजनाथ काशिनाथ राजवाडे
भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट
पूना १९४० ।

२८- पद्मपुराण : वी० एन० माण्डलीक द्वारा सम्पादित, आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना भाग १-४; सन् १८९३-९४ ई० ।

२९- श्रीमद्भागवतपुराण : श्रीधरस्वामी, स० जगदीशलाल शास्त्री, १९८३, मोतीलाल बनारसीदास

३०- महाभारत (सम्पूर्ण) सम्बत २०१२ से स० २०१५ तक

कृष्णद्वैपायन वेदव्यास, सम्पादक मुद्रक तथा प्रकाशक हनुमानप्रसादपोद्दार टीकाकार प० रामनारायण शास्त्री पान्डे (राम) गीताप्रेस गोरखपुर

३१- महाभारत-कोश (भाग १, २) : डा० रामकुमार राय

३२- मारकन्डेयपुराण : पंचानन तर्करत्न द्वारा सम्पादित, बंगवासी प्रेस कलकत्ता बं० स० १३१६

३३- वराहपुराण : पंचानन तर्करत्न, बंगवासी प्रेस कलकत्ता, बं० स० १३१३

३४- वामनपुराण : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

३५- वायुपुराण : हरिनारायण आप्टे द्वारा आनन्दाश्रम, संस्कृत सीरीज, पूना से प्रकाशित, सन् १९०५ ई० ।

३६- वाल्मीकीयरामायण : (सम्पूर्ण) -हिन्दी अनुवाद सहित, गीताप्रेस, गोरखपुर, सम्बत २०२३, तृतीय संस्करण।

३७- वाल्मीकीरामायण : निर्णयसागर बम्बई

३८- वाल्मीकिरामायण कोश : रामकुमारराय, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी, १९६५

३९- विष्णुपुराण : ओल्ड सीरीज कलकत्ता

४०- वृत्तरत्नाकर, भट्टकेदार : स० श्रीधरानन्द शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, द्वितीय संस्करण १९७५

४१- साहित्यदर्पण : विश्वनाथ, स० आचार्य शेषराज शर्मा 'रेग्मी' कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, १९८५

४२- संस्कृत हिन्दी कोश : वामन शिवराम आप्टे मोतीलाल बनारसीदास, द्वितीय सं० १९६६

४३- हरिवंशपुराण : पंचानन तर्करत्न द्वारा नीलकण्ठ की टीका के साथ सम्पादित, वंगवासी प्रेस कलकत्ता, वं० स० १३१२ ।

हिन्दी-ग्रन्थ

१-	भारतीय अनुशीलन	:	डा० मणिलाल पटेल
२-	वैदिक आख्यान	:	डा० गंगासागर राय, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी प्र० वि० स० २०२०।
३-	वैदिक साहित्य और संस्कृति	:	वाचस्पति गैरोला, संवर्तिका प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र० स० १९६९ ।
४-	वैदिक साहित्य और संस्कृति	:	बलदेव उपाध्याय, शारदामन्दिर २९।१७ गणेशदीक्षित काशी द्वितीय सं० १९५८
५-	वैदिक साहित्य का इतिहास	:	डा० राजकिशोर सिंह, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा, छठा संस्करण १९७६
६-	संस्कृत साहित्य का इतिहास	:	पं० बलदेव उपाध्याय १९६८
७-	संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास	:	डा० कपिलदेव द्विवेदी, संस्कृत साहित्य संस्थान, ३७ कचहरी रोड, इलाहाबाद ।
८-	संस्कृत साहित्य का सरल सुबोध इतिहास	:	जितेन्द्र चन्द्र भारतीय शास्त्री उ० प्र० हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ, प्रथम सं० १९७७ ।
९-	संस्कृत साहित्य की रूपरेखा	:	पं० चन्द्रशेखरपाण्डे, डा० व्यास, १९६७ ।

<u>अंग्रेजी-ग्रंथ</u>

(1) A Dictionary of Literary Terms : J.A. Cuddon p.233
Andre Dentsch Limited G.R.S. London.

(2) Everyman's Encyclopeadia Vol. IV p.648
J.M. Dent & Sons Ltd. London Melbourne
Toronto 1978.

(3) Wedster's Third Internation Dictionary
Merriam, Webster INC 1961.